॥ श्री ॥

वैदिकधर्मसत्यार्थप्रकाश

ॐ

-: तेलुगुभाषा में ग्रन्थकर्ता :-

डा. चिर्रावूरि शिवरामकृष्णशर्मा

९९६३४५५५८४

⁂

-: हिन्दीभाषा में अनुवादकर्ता :-

डा. वि. ए. कुमारस्वामी

०४०-६५३५३५८४

॥ श्री ॥

वैदिकधर्मसत्यार्थप्रकाश

प्रथममुद्रण सेप्तेंबर २०१५

-: तेलुगुभाषा में ग्रन्थकर्ता :-

डा. चिर्‌रावूरि शिवरामकृष्णशर्मा

-: हिन्दीभाषा में अनुवादकर्ता :-

डा. वि. ए. कुमारस्वामी

-: डि.टि.पि. :-

श्री शारदादेवि डि.टि.पि.

१२-१२-७८, रवीन्द्रनगर, सीताफलमण्डी, सिकिन्द्राबाद-६१

दूरवाणी : 8985759057

मूल्य : १५०

व्याकरणवेदान्तविशारद
पौराणिकशिरोमणि
भागवतार्थप्रतिपादक
भक्तश्रीशुक
गीताव्याख्यातृचक्रवर्ती
दिव्यश्री चिर्रावूरि अनन्तपद्मनाभशास्त्रीजी के
शततम जयन्तीसमारोह के संदर्भ में समर्पित

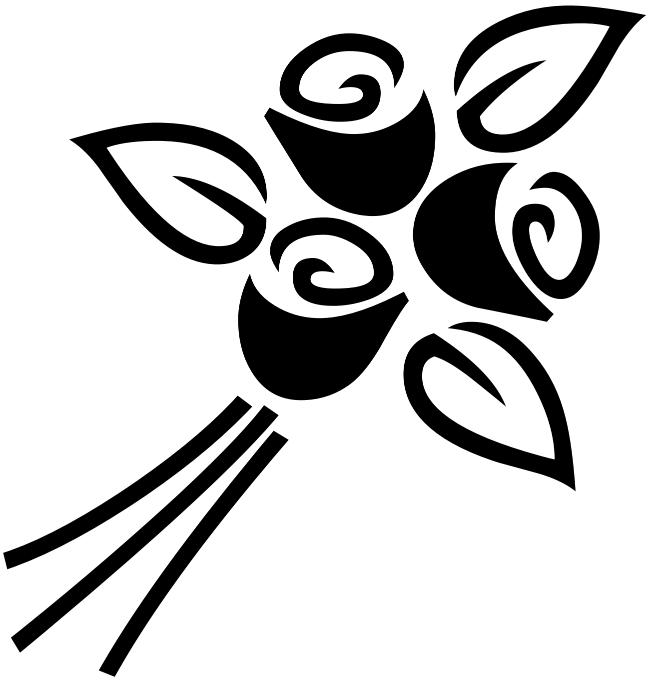

विषयों की सूची

१. नम्रनिवेदन
२. प्रस्तावना
३. आशीर्वाद और अभिप्राय
४. विग्रहाराधनदूषण - परिशीलन
५. नामसंकीर्तन से कोई फायदा नहीं - एक परिशीलन
६. मन्त्रजाप
७. अवतार - कल्पित हैं - एक परिशीलन
८. वेदों में मूर्तिपूजा निषिद्ध है - एक परिशीलन
९. मूर्तिपूजा से संकट मोल लेना है - एक परिशीलन
१०. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिकामें मूर्तिपूजा खण्डित है - परिशीलन
११. मनुस्मृतिमें मूर्तिपूजा और मन्दिरनिर्माण
१२. मूर्तिपूजा से देवतानुग्रह - योगियों के उपदेश
१३. पितृकार्यों का विमर्श - परिशीलन
१४. शिवपुराणविमर्श - परिशीलन
१५. पुराणविमर्श - परिशीलन
१६. कूर्मपुराणमें हरिहराभेद
१७. मार्कण्डेयपुराण विमर्श - परिशीलन
१८. शिवलिंगपूजा की निन्दापरिशीलन
१९. संजीवनीविमर्श शिव, मार्कण्डेयपुराण

२०. महाभारत में ९०% आधुनिक **-** एक परिशीलन

२१. ज्योतिर्लिंग, तीर्थक्षेत्रविमर्श - परिशीलन

२२. भागवतविमर्श - एक परिशीलन

२३. सृष्टि घट्ट विमर्श - एक परिशीलन

२४. बोपदेव भागवतकर्ता - एक परिशीलन

२५. भागवतपुराणमें दोष - परिशीलन

२६. श्रीकृष्णचरितविमर्श - परिशीलन

२७. गुरुभक्तिविमर्श - परिशीलन

२८. तिलकधारणविमर्श - परिशीलन

२९. उपवासविमर्श - परिशीलन

३०. एकादशीव्रतविमर्श - परिशीलन

३१. ज्योतिषविमर्श - परिशीलन

३२. पीठ, यतिविमर्श - परिशीलन

३३. सायणभाष्यनिन्दा - निराकरण

३४. शारीरकमीमांसासूत्रोंमें अद्वैतसिद्धान्त नहीं है - परिशीलन

३५. अद्वैतखण्डन - परिशीलन

३६. प्रमाणग्रन्थों का विवरण

३७. ग्रन्धकर्ता की ओर से प्रार्थना

३८. उपयुक्तग्रन्थों की सूची

३९. अनुबन्ध

नम्रनिवेदन

मेरे बचपन में आर्यसमाज के, करपत्रों में एक वेदवाक्य ''न तस्य प्रतिमा अस्ति'' का उल्लेख लेकर मूर्तिपूजाखण्डन जो किया गया, उसको पढकर मेरा दिल दुखने लगा। इसमें सत्य है या नहीं उनदिनें में मालूम नहीं हुआ। इतना ही मालूम था कि वह अपने संप्रदाय के खिलाफ था, क्यों कि हमारे घर में प्रतिदिन पंचायतनपूजन होता रहा।

हम अपने बच्चों के साथ महामहोपाध्याय श्री शिवानन्दमूर्ति के दर्शन किया करते थे, जब कभी वे हैदराबाद पधारते थे। बातचीत होते समय हमने उनसे कहा था कि हम अपने बच्चों को उपनिषद्भाष्य पढा रहे थे। ''श्रुतिसौरभ'' नामक मेरी रचना को सद्गुरुशिवानन्दमूर्तिजी के हाथमें हमने सौंपा। और मेरी दूसरी रचना 'ऋग्वेद का राहुलग्रहण' जो है उस के बारे में उन्होने अपना आशीर्वादपूर्वक सन्देश दिया।

उन्होंने एकदफा हमसे कहाँ, ''श्रीदयानन्द सरस्वतीस्वामीजी कहते हैं कि वेद का सायणाचार्यभाष्य ठीक नहीं है। अगर दूसरे धर्मवाले ऐसी बात कहते हैं तो वह बात अलग है। आर्यसमाज के प्रवर्तक जो वेद का प्रामाण्य मानते हैं, वे जब सायणभाष्य का खण्डन करते हैं, वह बात तो सोचने लायक है। उसका परिशीलन करना जरूरी है।''

हमने उनके सामने नतमस्तक होकर नम्रनिवेदन किया कि श्रीकरपात्रीस्वामीजी ने अपने वेदार्थपारिजात नामक ग्रन्थ में दयानन्द स्वामीजी के भाष्यों का खण्डन किया।

सद्गुरुशिवानन्दमूर्तीजी ने कहा ''श्री करपात्रीजी महाराज उसबात को मेरे सामने कह रहे थे। लेकिन वेदार्थपारिजातग्रन्थ हिन्दीमें है, उसको

आंध्रप्रदेश के लोग कैसे समझें ?'' तब हम सोचने लगे ।

श्रीकरपात्रीमहाराजजीने 'वेदार्थपारिजात' नामक अपने ग्रन्थ के प्रथमखण्डमें ३०५ पृष्ठों में, दयानन्दमतखण्डन किया । द्वितीय खण्ड में ५७६ पृष्ठ लिखे हैं । श्रीकरपात्रीस्वामीजी अनेक शास्त्रों के प्रकाण्डविद्वान रहें, और उनकी शास्त्रशैली को आमतौर जनता के सामने लाने में दिक्कत होती है, और वह काम एक दो सालों में निपटने का नहीं है ।

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी से विरचित ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में सायणाचार्यभाष्यखण्डन (३३६, ३३७ पृष्ठ) ठीक से पढकर हमने 'सायणभाष्यनिन्दानिराकरण' नामक निबन्ध लिखकर श्रीसद्गुरुशिवानन्दमूर्तिजी के सामने पेशकिया । उन्होंने हमको ***सत्यार्थप्रकाश*** के ग्यारहवे उल्लास पढकर समझने केलिए आदेश दिया । उसमें आर्यावर्त प्रांत के मतों का खण्डन है । सबको पढने के बाद शारीरकसूत्रों में अद्वैताभावनिराकरण अद्वैतखण्डनपरिशीलन नाम के, दो निबन्धों को रचकर श्रीशृङ्गेरीपीठाधिपति श्रीश्रीभारतीतीर्थमहास्वामीजी के सामने प्रस्तुत किया । स्वामीजी ने अपना आशीर्वाद दिया ।

आर्यावर्तमें जितने भी धर्म निकले थे श्रीदयानन्दसरस्वतीजी ने उन सबका खण्डन किया । इनकी रचनाएँ जो पढते हैं उनका विश्वास उन संप्रदायों पर टिक नहीं सकता ।

इन्होंने वेदों के प्राचीन आचार्यों के भाष्यों का खण्डन किया और अपने नये भाष्यों को प्रस्तुत किया । इन के भाष्यों को पढकर समझने के बिना, इन से दिखाया हुआ नया रास्ता अपनाने केलिए सुगम नहीं है । इनका दियाहुआ वेदार्थ जो है, वह अध्याहार और लक्ष्यार्थों से ज्यादा जकडा हुआ है । अगर इनके भाष्यों पर विश्वास करें तो सायणभाष्य पढकर इनका भाष्य भी पढकर सारांश निकालना है । परिपूर्णज्ञानी के

रूपमें सर्वप्रसिद्ध श्रीकरपात्रीस्वामीजी ने अपने वेदार्थपारिजात में दयानन्दसरस्वती के भाष्य का खण्डन किया। अगर श्रीदयानन्दसरस्वती के लेखन सही है तो उनके पहले जितने धर्मग्रन्ध थे वे सब गलत हो जाते हैं। दयानन्दसरस्वती के भाष्य के आने तक, भगवान संसार को अन्धेरे में क्यों रखते हैं ? यह सब कुछ सोचने से इनके विचारों को भी परखने की आवश्यकता है - ऐसा प्रतीत होता है ।

श्रीदयानन्दसरस्वती के सत्यार्थप्रकाश के ५४३, ५४४ तम पृष्ठों में बारहवे उल्लास में ***नास्तिकमतखण्डन*** नामक शीर्षक के आरम्भमें इसप्रकार लिखा हुआ है :-

''सिर्फ सत्य और असत्य निर्णय केलिए इनके मतविषय लिखे हुए हैं, लेकिन इनके विरोध में नहीं, हानि पहुचाने केलिए बिलकुल नहीं। हमने जो लिखा उसको बौद्ध,जैन और दूसरे धर्मवाले जब देखेंगे, तभी सत्य या असत्य निर्धारण करने में सोचने की और लिखने की ताकत बढेगी, तभी ज्ञान भी बढेगा, जब प्रतिपक्षके लोग विवाद उठायेंगे तभी प्यार के साथ चर्चा करेंगे देखेंगे, तभी सत्यासत्य निर्णय हो सकता है । विद्वान् लोग जबतक सत्यासत्यनिर्णय नहीं करपाते हैं तबतक मामूली आमतौर जनता की भलाई हो नहीं पाती। इसीलिए सत्य की जय केलिए और असत्य की हार केलिए मैत्री के साथ वाद-विवाद करना और लिखना हर एक आदमी का मुख्य कर्तव्य है।''

इसके अनुसार सत्यार्थप्रकाश के एकादश उल्लास में जो मतखण्डन हैं उन में से कुछ विषयों का परिशीलन करके हम सत्यनिर्णयकरने की चेष्टा करेंगे । ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में सायणभाष्य का दयानन्दसरस्वती ने जो खण्डन किया इसमें उसका भी परिशीलन करेंगे ।

हम, इस रचना में हमारे अपरिचित धर्मों का खण्डनप्रस्ताव बिलकुल

नहीं रखेंगे। विवेकी विद्वान् पक्षपात के बिना हमारी रचना में गुणों का ग्रहण जरूर करेंगे। इस आशा के साथ हम वादा करते हैं कि यह मेरी रचना स्वतन्त्र है, न किसी ग्रन्थ का अनुवाद या अनुसरण है ही नहीं। श्रीदयानन्दसरस्वतीजी की जो ***सत्यार्थप्रकाश*** है उसमें २२ वे उल्लास में कुछ विषयों का परिशीलन हमने प्रस्तुतकिया।

श्रीदयानन्दसरस्वती की ऋग्वेदभाष्यभूमिका में दो निबन्ध हैं, एक ''मूर्तिपूजानिषेधविषयः'' दूसरा ''नवग्रहमन्त्रार्थविषयः'' - इन दोनों का परिशीलन हमने इस ग्रन्थ में दिखाया। उसी भूमिका में श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी का और एक निबन्ध है जो ''भाष्यकरणशङ्कासमाधानविषयः'' नाम से प्रसिद्ध है। हमने उसका भी परिशीलन किया, जिस में सायनाचार्यभाष्यखण्डन प्रधानांश रहा।

स्वामी करपात्रीमहराज जो हैं अपने ***वेदार्थपारिजात*** दूसरे संपुट में, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में श्रीदयानन्दसरस्वती से प्रतिपादित विषयों का विस्तारपूर्वक खण्डन कर चुके हैं। लेकिन उन्होंने 'नवग्रहमन्त्रार्थविषय' को छुआ तक नहीं। बाकी जो दो निबन्ध हैं, पूर्वोक्त 'मूर्तिपूजानिषेधविषय' और 'सायनाचार्यभाष्यखण्डन' उनका श्रीकरपात्रीस्वामीजीने अपने ***वेदार्थपारिजात में*** खण्डन किया। हमने अपने ***वैदिकधर्मसत्यार्थप्रकाश*** में उनदोनों का परिशीलन किया। हम जब ***वैदिकधर्मसत्यार्थप्रकाश*** लिख रहे थे उसके पहले वेदार्थपारिजात में उन दो निबन्धों को देखा तक नहीं। इसलिए हमने जो लिखा है वह स्वतन्त्र है, वेदार्थपारिजात का अनुवाद नहीं है। करपात्रीजी के और हमारे ग्रन्थों को पढकर देखनेवाले विद्वान इस बात को खुद समझ पाते हैं।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में मूर्तिपूजानिषेध छे पृष्ठों में है। सत्यार्थप्रकाश में मूर्तिपूजासमीक्षा १४ पृष्ठों में है। इन दोनों में विषय अलग होने के नाते, दोनों को ***वैदिकधर्मसत्यार्थप्रकाश*** में अलग अलग रूपों से परिशीलन किया गया।

हमने अपने वैदिकधर्मसत्यार्थप्रकाश में जिन विषयों का परिशीलन किया वे करपात्रीस्वामी के वेदार्थपारिजात में नहीं हैं । वेदार्थपारिजात में दयानन्दमतखण्डन नामक शीर्षक में जिन विषयों का खण्डन किया, उनकी सूची को अनुबन्ध में दिया ।

करपात्रस्वामीजी अपने वेदार्थपारिजात के प्रथम खण्ड में ''ब्राह्मणानां वेदत्वम्, शाखान्तरब्राह्मणानां च वेदत्वम्'' नाम के दो निबन्धों को ४८ पृष्ठों में लिख चुके हैं, इसलिए उस प्रस्ताव को हम अपने तेलुगुग्रन्थ में नहीं लाये हैं ।

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी सन्यासी रहे । उन्होने वेदों के भाष्यों को रचा । और वेदाङ्ग आदि कई विषयोंपर कईग्रन्थ लिखचुके हैं । इसलिए हम उनकी निन्दा करने केलिए नहीं बैठे हैं, बल्कि उनके ग्रन्थों के विषयों का परिशीलनमात्र प्रस्तुत करने में लगे हुए हैं ।

सत्यार्थप्रकाश में ग्यारहवे उल्लास में जो हिन्दूधर्मखण्डन है - उसमें कहाँ तक योग्यविचार हैं, गुण है, औचित्य है या नहीं - यह सब जो समझना चाहते हैं वे हमारा ग्रन्थ पढकर सत्य और असत्य समझेंगे और मेरे श्रम को सार्थक बनाने की कृपा करेंगे ।

''श्रीदयानन्दसरस्वती महान् विद्वान् मेधावी थे, उनसे कियेहुए पूर्वपक्षों का जवाब देना सम्भव नहीं'' - समझकर मेरी रचना को दो तीन दिन हमने रोककर रख दिया । फिर से लिखने का रास्ता दिमाग में खुल गया । इसलिए हमारी गुरुकृपासे भगवान् की प्रेरणा से ही यह ग्रन्थरचना सम्पूर्ण हुई ।

आन्ध्रभाषा का अध्यापन करते हुए ३९ साल हमारे जीवन में बीत गये । हमारे गुरुजनों से प्राप्त ज्ञानबोध जो है, बहुत ही महत्त्वपुर्ण है, और ग्रन्थ के अन्त में जो सूची है, उन ग्रन्थकर्ताओं का बडा देन है जिन की महिमा से श्रीदयानन्दसरस्वती की सत्यर्थप्रकाश और ऋग्वेदभाष्यभूमिका नामक दो उद्ग्रन्थों का परिशीलन करनेका साहस हमने किया,क्यों कि वे ग्रन्थ

वेदवेदान्तनिरुक्तपुराणेतिहास धर्मशास्त्र आदि कई विषयों के साथ सम्मिलित हैं। इसलिए मेरी रचना में जो गुण है वह उन ग्रन्थकर्ताओं का है। हमारे गुरुजनों का है। जो ग्रन्थ हम गुरुजनों से पढे हैं उनका है।

खैर, आदमी होने के नाते कुछ गलतियाँ हमारे ग्रन्थमें हो सकती हैं, वे सब हमारी हैं। मेरी रचना के आधारभूतग्रन्थों की सूची अन्त में दी गयी है। उन ग्रन्थों के रचयिता जो हैं उनका नामसंस्मरण करना मेरा कर्तव्य है, नहीं किया तो मेरा अपराध है। उन सबको हमारे दण्डवत् प्रणाम हैं।

हमारे पिताजी व्याकरणवेदान्तविशारद ब्रह्मश्री चिर्रावूरि अनन्तपद्मनाभशास्त्रीजी, वेदाध्यापन तपस्वी ब्रह्मश्री गुळपल्लि सीतारामावधानीजी, व्याकरणवेदान्तविद्वान् ब्रह्मश्री कोत्तपल्लि वेंकटकृष्ण घनापाठीजी, व्याकरणवेदान्तविद्वान् ब्रह्मश्री परिमि विश्वनाथशास्त्रीजी, वेदान्तशास्त्रविद्वान् जयन्तिसूर्यनारायणशास्त्रीजी, विजयनगरास्थानविद्वान् वेदार्थप्रवक्ता ब्रह्मश्री घंडिकोट सुब्रह्मण्यशास्त्रीजी, चतुर्वेदिब्रह्मश्री कपिलवायि यज्ञेश्वरशास्त्रीजी, तर्कवेदान्तालङ्कार शास्त्रविद्वान् ब्रह्मश्री शिष्टि लक्ष्मीकुमारशर्माजी, तर्कविद्वान् ब्रह्मश्री कोल्लूरि लक्ष्मणमूर्तिशर्माजी इत्यादि महापुरुष मेरे गुरूजी रहें।

हे गुरुजन, आप सबके द्वारा बोये हुए ज्ञानबीजोंने अंकुरित होकर पेड होकर जो फल दिये हैं - वे ही इसग्रन्थ के अंतर्गत अंश हैं, आप सबको मैं नतमस्तक होकर प्रणामांजलि समर्पित कर रहा हूँ।

पांच परीक्षाएँ

१) मेरे तेलुगुव्याकरणपरिशोधन में मार्गनिर्देशक आचार्य श्री बोड्डुपल्लि पुरुषोत्तम् महाशय का आदेश रहा, ''आन्ध्रशब्दचिन्तामणि, अधर्वणकारिकावली,

अहोबल पण्डितीयम् - इन तीन ग्रन्थों के ऊपर जो आरोप लग गये हैं - उनका सही जवाब दीजिये'' यह मेरे जीवन में पहली परीक्षा थी । उस केलिए चार साल तपस्या करनी पडी । गायत्रीमाता की कृपा से आठ सौ पृष्ठ भरकर गुरुजी के सामने मैं ने रखदिया । हमारे गुरुजी उसे देखकर बेहद खुश हो गये । वही 'आन्ध्रमुनित्रयतत्त्वदर्शनमु' नामका शोधप्रबन्ध है जिसके आधार पर हमने तेलुगुभाषा में डाक्टरेट् प्राप्त किया ।

२) रोभिल्ला थापर ने जो लेख लिखे हैं उनके ऊपर मेरी नज़र पडी । इस समय मेरा मन ही मेरी परीक्षा लेने लगा । उन्होंने लिखाकि ''भारत के इतिहास के पृष्ठों में हरप्पा संस्कृति में जो धर्म रहा, वह अभी तक मालूम नहीं। उन लोगोंने अपने धर्म का नाम - निशान कुछ छोडा ही नहीं'' । फिर हम सोचने लगे, ''हिन्दूजनता का धर्म पांच हजार साल से चला आ रहा है, यह सत्य नहीं तो, सत्यधर्म या सनातनधर्म क्यों कहलाता है ? सन्ध्यावन्दन और देवतार्चन करना है कि नहीं ? दिशानिर्देशन करनेवाला नहीं मिला । फिर गायत्रीमाता की कृपा से हरप्पा के चित्रों में तीन शिरवाले पशुपति को मुद्रिका के रूप में दिखानेवाली मुद्रिका में प्रणव के साथ वैदिकशिवजी और ***'नमक'*** के रुद्र सामने खडे होगये ।

यह साबित हुआ कि भारतदेश के चरित्र में एक दो अध्याय असत्य हैं । तब उसी समय हमारी कलम से निकली रचना ''श्रुतिसौरभम्'' । पूर्णविश्वास वापस लौटा, सन्ध्यावन्दन और देवतार्चन - छोडा नहीं । तेलुगु एम.ए. पाठ्यक्रम में हमने पढा था, असली भारत, शुरुआत में ८८०० श्लोकों में था, वही वेदव्यास की रचना थी । संस्कृत एम.ए. किया । पाठ्यक्रम में पढा, ''दुष्टपाण्डवोंने अच्छे कौरवों का नाश किया, यही भारत

कथा का मूलस्रोत है'' । एक साल तक विद्वानों के पास जाकर उस मामले में चर्चा की ।

आखिर, मचिलीपटनम् में नागेश्वरस्वामी के मन्दिर में बैठकर पांच साल तक महाभारतप्रवचन किया। तब हमें पता चला कि हमारे विश्वविद्यालयों में पढाई के क्षेत्र में कितनी गन्दगी जमगयी है ।आजकल महाविद्यालयों में जो शिक्षाप्रणाली है उसका देन है यह परीक्षा - तब हमने लिखा एक लेख ।

३) ''महाभारत का रचयिता कौन ?'' (महाभारतकर्तृत्व)

एकदफा मेरे सहाध्यापक डा. ए. पद्माकरबाबू ने मेरे हाथमें पद्मभूषण राहुल् सांकृत्यायन के द्वारा रचित 'दिवोदास' रख दिया। राहुल् सांकृत्यायन जीने लिखा था कि आर्यलोगों ने द्राविडों को लूट लिया, किरातकों का सत्यानाश करके उनके गावों को जलादिया । इसबात का वर्णन उन्होंने आलंकारिकभाषा में बहुत रोचकढंग से प्रस्तुतकिया । ऋग्वेद के मन्त्रों के बलपर यह सब लिख दिया। और उसी के बलपर शिवलिंगका नाम शिश्नदेव रखकर शिवाराधकों का भारी अपमान किया । सोमयाग का अर्थ भंग पीने का है - इस बात पर जोरदिया। हिन्दूधर्म के ऊपर जो सवाल किये उनके जवाब ढूँढनेकेलिए हमें दो साल लग गये ।

४) भारतदेशचरित्र में जो असत्य कल्पनाएँ हैं वे सामने मौजूद हुई हैं। उसके बाद ही इ.एस्.ए. वालों का शिशुमार, देवनागरी में प्रणव सामने आये हैं। सद्गुरु और सहृदयों के आशीर्वाद भी प्राप्तहुए हैं ।

५) पांचवी परीक्षा सद्गुरुओं की ओर से हुई है । श्रीदयानन्दसरस्वती स्वामीजी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में वेदभाष्य और नवग्रहाराधना को गलत बोले

हैं । पुराण, इतिहास, तीर्थक्षेत्र, मन्त्र, नामस्मरण - सब कुछ झूठ कहे हैं। सद्गुरु शिवानन्दमुर्तीजी का आदेश है कि ‘‘उनका जवाब दो’’ । उत्तर निकालने में कई मास बीत गये। गुरुकृपा से अनेक जवाब मिल गये। सद्गुरुजी संतुष्ट हुए।

उपेक्षाबुद्धिवालों से ही हमारा समाज भरा हुआ है । अपने लोगों की समष्टिसमस्या को भी देखते ही नही । अगर कोई समस्या का परिष्कार निकालेगा - फिरभी उनका ख्याल हम नहीं करते । ‘‘हम तो क्रान्तदर्शी नही हैं । यह मेरे वश की बात है क्या? इस काम को सम्हालने केलिए काफी विद्या मेरे पास है क्या ? उससे हमको फायदा है क्या ?’’ - यह सब सोचने की आदत नहीं है । समस्या सामने खडी है, समाधान खोजने लगे हैं । कई दशक (दस दस साल) बीत गये । फिरभी गुरुकृपा से भगवान् की असीम अनुकम्पा से अन्वेषण करने से हमारा आस्तिक्य कायम हुआ । देवतात्त्व क्या होता है ? - इसका अंदाज लगगया, मेरे जैसे आदमी को वही बहुत है । अब मैं इसको सुना रहा हूँ क्यों कि दूसरे लोग भी हैं जो देखने को लालायित होते हैं।

कृतज्ञताएँ

हमारे पिताजी ब्रह्मश्री चिर्रावूरि अनन्तपद्मनाभशास्त्रीजीने हमसे वेदाध्ययन कराया, वेदार्थ पढवाया, खुद व्याकरण और वेदान्तशास्त्रों को सिखाया, पुराण और इतिहास सुनाया - ऐसे पिताजी का आशीर्वाद ही मेरा मूलबल है । इस ग्रन्थरचना में प्रेरणास्त्रोत सद्गुरु श्रीशिवानन्दमूर्तीजी ही ग्रन्थ को यह रूप देने में मुख्य कारण हैं । उन्होने अपने आशीर्वादों से बुद्धि - स्फुरण दिया जिस की वजह मैं अपने कार्य में सफल हो गया हूँ । शृङ्गेरीशारदापीठाधिपति जगद्गुरु श्रीश्रीश्री भारतीतीर्थमहास्वामीजी के आशीर्वाद भी हमारे लिए समधिक हर्ष और पुष्टि के प्रदाता हैं । उनके सामने मनःपूर्वक

मेरे दण्डवत् प्रणाम हैं। इस ग्रन्थ की रचना केलिए अपनी किताब ***सत्यार्थप्रकाश*** को छीफ इंजानीर श्री उप्पल राधाकृष्णजी दे रखे हैं और उन्होंने ही आन्ध्रभागवत, आन्ध्रमहाभारत को भी देकर काफी मदद की। उनकेलिए हम आभारी हैं।

राष्टीयसंस्कृतसंस्थान के राजीवगान्धीमहाविद्यालयके व्याकरण विभागाध्यक्ष डा. चेरुकुमिल्लि सत्यसूर्यनरसिंहमूर्तिजी मेरे वैदिकधर्मसत्यार्थप्रकाशिका को पूर्णरूपसे परखने के बाद बहुत कुछ लिखकर अपनी शुभाकांक्षा को व्यक्त किये हैं। उसकेलिए हम उनको प्रणाम कर रहे हैं। ब्रह्मश्री सामवेदं षण्मुखशर्माजी विख्यातविद्वान् हैं अनेक बिरुदावलीविभ्राजमान हैं, बहुग्रन्थकर्ता हैं, बहुग्रन्थप्रवचनदीक्षित हैं। उन्होंने अपनी पीठिका में अपनी कविता के साथ 'सत्कृति को नमस्कृति' नामक अपना मन्तव्य प्रस्तुत किया। वे हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

इसग्रन्थको विमर्शनात्मकदृष्टि से पढकर 'भूमिका' रचकर हमारे मित्र, भारतीतीर्थहंसक, भक्तिकवितामत्तकोकिल, बहुग्रन्थकर्ता, डा. वि.ए. कुमारस्वामीजीने, इस ग्रन्थकी ख्याति के देश विदेशों में फैलने की आकांक्षा करते हुए, इसका अनुवाद अंग्रेजी और हिन्दी में भी हो जाने की अपनी इच्छाको प्रकट करतेहुए शुभाशंसन किया। और हिन्दी में अनुवाद अपने आप करने केलिए तैयार हो गये हैं। उनको हम धन्यवाद अर्पित कर रहे हैं। तेलुगुविशवविद्यालय के ज्योतिषविभाग के अध्यक्ष आचार्य सी.वी.बी. सुब्रह्मण्यम् जीने इसमें नवग्रहमन्त्रार्थविवरण का अभिनन्दन करते हुए अपना अमूल्य सहमति दे दी। हम उनके आभारी हैं। ग्रन्थ का समग्रशोधन करके 'सत्यशोधन' जो दिये हैं वे ब्रह्मश्री आचार्य रेमिळळ वेंकटरामकृष्णशास्त्रीजी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं।

महती प्रिंट् क्रियेषन्स हैदराबाद के निर्वाहक हमारी ओर से धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने इस ग्रन्थको गलतियों के बिना सुंदर ढंगसे मुद्रण किया। चिरंजीवी कंभंपाटि सूर्यनारायण, हमारे आशीर्वाद के पात्र है, इस ग्रन्थका मुखचित्र सुचारुरूपसे इन के द्वारा सजाया गया।

अन्त में मेरी सतीमणि श्रीमती कृष्णवेणी को शभाशीष् दे रहै हैं क्यों कि इन्होंने मेरी रचना की शुद्धप्रति लिखकर मुद्रणकार्यमें सह्योग दिया।

रचयिता

डा. चिर्रावूरि शिवरामकृष्णशर्मा

श्रीश्री जगद्गुरुशंकराचार्यमहासंस्थानम्
दक्षिणाम्नाय श्रीशारदापीठम् , शृङ्गेरी

१४-१०-२०१३

श्री चिर्रावूरि शिवरामकृष्णशर्माजी को अनेक नमस्कार ।

आपके द्वारा रचाहुआ वैदिकधर्मसत्यार्थप्रकाश नामक ग्रन्थ जगद्गुरु श्रीचरणों के सामने समर्पित किया गया । उन्होंने उसका अवलोकन किया ।

आर्यसमाज के अपसिद्धान्तों का आपने अपने ग्रन्थ में खण्डन किया। इससे सनातनधर्म के अनुयायिओं को बहुत फायदा हुआ । इससे पहले ही आर्यसमाजमतखण्डन प्राचीनविद्वनों के द्वारा विस्तृतरूपसे किया गया था । लेकिन आन्ध्रप्रदेश के लोगों को अवगत कराने केलिए आपने जो अधिक परिश्रम किया वह सराहनीय है ।

श्रीशारदाचन्द्रमौळीश्वरों की कृपा से यह ग्रन्थ काफी प्रशस्तिप्रगति को पायेगा । आपको भी समधिक श्रेय प्राप्त होगा - इस तरह श्रीचरणों का आशीर्वाद आपको प्राप्त हो रहा है ।

एवं सन्देशवाहक

टि. दक्षिणामूर्ति

आमुख

महामहोपाध्याय

डा. शिवानन्दमूर्ति

डी.लिट् (गीतम् वि.वि.) डी.लिट् (पो.श्री. तेलुगु वि.वि.)

श्रीशैवमहापीठ के पीठाधिपति 'आनन्दवनम्'

भीमुनिपटनम्, विशाखजिला - ५३११६३

दूरवाणी : ०८९३२२९५०५

मैं ईसवी १९६२ साल में पहली बार वाराणासी गया था। प्रतिदिन मैं ज्ञानवापी के बाजू में अग्निप्रतिष्ठापन करके रुद्रस्वाहाकार करता रहा। एक दिन पूजनीय करपात्रस्वामी महाराजजी वहाँ पधारें और मुझसे कुछ सवाल पूछने लगे। बाद में वे, अगले दिन अपने आश्रम में उनसे मिलनेका आदेश देकर चले गये।

अगले दिन मैं अपनी धर्मपत्नी गङ्गादेवी के साथ उनका आश्रम पहुँच गया उन्होंने बडी कृपा से हमें आदर दिखाया।

बातचीत करते समय स्वामीजी ने पूछा "हम ऋग्वेद का भाष्य लिखरहे हैं, किसलिए ? आपको मालूम है क्या ?" मैंने एक क्षण सोचकर जवाब दिया - "हो सकता है कि आप दयानन्दसरस्वतीजी का जो सायणभाष्यविमर्श है उसका समाधान कर रहै हैं"।

स्वमीजीने कहा, "हाँ यह बात सही है। दूसरे लोग इसको पहले करके रखते कितना अच्छा होता ?"

बाद में उनसे विदा लेकर मैं चल पडा । उसके बाद आर्यसमाज के लोगों के सायणभाष्य के तेलुगुअनुवाद पढकर मैंने कुछ समझलिया उसके पहले इतना ही मालूम था कि दयानन्दसरस्वतीजी ने सायणभाष्य का खण्डन किया । इसकेबाद उनके सत्यार्थप्रकाश जैसे कुछ ग्रन्थों को मैंने देखा । उनकी धोरणी अवगत हुई ।

आर्यसमाजवाले ही नहीं बल्कि कुछ विलायत के विद्वानोंने भी सायणभाष्य का खण्डन किया । उनमें तीन, विल्सन, ग्रास्मन्, रोत् प्रधान हैं। रोत् जो है भाषाशास्त्र के तत्ववेत्ता रहें । उसने लिखा, ‘‘सायणाचार्यजी को वेदों का असली भावार्थ और दिल का धडकन, समझ में नहीं आया । कोई भी पाश्चात्यविद्वान् निर्मलचित्त से वेद का अध्ययन करेगा वह ठीकसे स्पष्टरूपसे समझ सकेगा ।’’ लेकिन, और एक पाश्चात्यविद्वान् जिसका नाम गोल्ड स्टकर था, उसने रोत् के वचनों का खण्डन किया । उसने प्रकट किया कि ‘‘वेदों के विषय में भारत के विद्वानों के भाष्यों को हम परास्त करेंगे तो, वेदपुरुष और महर्षियों का दिल हम कैसे समझे ।’’

करपात्रीस्वामीजी का वेदभाष्य काफी प्रकाश में आया होगा । लेकिन मैंने देखा नहीं । बात यह है कि सायणभाष्य और निरुक्त आदि शास्त्रों का मैं ने अध्ययन नहीं किया । मैं उसतरह का विद्वान् नहींहूँ । लेकिन सायणभाष्य के महत्तर वेदविज्ञान के बारे में पण्डितों की प्रशंसाओं को सुनलिया । उस महान् व्यक्ति के बारे में भारत के कोई विद्वान् खण्डन, या विमर्श करें तो उसका जवाब देना बहुत जरूरी है - यह मेरा विश्वास है । दयानन्दसरस्वती के भाष्य का पूर्णसे समाधान लिखने का कोई प्रयत्न करेगा, तो वह बहुत बडा उद्यम ही बनेगा । फिरभी हम चाहते हैं कि दयानन्द भाष्यसे कहीं कुछ विषयों को उठाकर खण्डन किया तो पाठकलोग अपने सम्प्रदायभाष्य की प्रामाणिकता को थोडा बहुत समझ सकेंगे । उस समय मेरा सौभाग्य रहा कि

मैंने श्री चिर्रावूरि शिवरामकृष्णशर्माजी से मुलाकात की ।

मौका पाकर मैंने अपने दिल की बात को उनके समक्ष प्रस्तुत किया। श्री शर्माजी सहृदय हैं और उत्तमश्रेणी के विद्वान् हैं । उन्होंने अचिरकालमें ''वैदिकधर्मसत्यार्थप्रकाश'' नामक स्वतन्त्रग्रन्थ की रचना की । शर्माजीने इसमें छत्तीस विषयों पर निबन्ध लिखे हैं । शर्माजी के ग्रन्थ का नाम देखते ही पता चलता है कि यह ग्रन्थ दयानन्दसरस्वती के सत्यार्थप्रकाश का खण्डन, नहीं तो समाधान के रूपमें अवतरित हुआ है ।

हिन्दूसम्प्रदाय में रहते हुए जो, जीवन चला रहे हैं, वे लोग इससे लाभान्वित होते हैं । क्यों कि हिन्दूसम्प्रदाय का जो खण्डन हुआ उसका यह विमर्शग्रन्थ है उसे पढकर लोग अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं । आजकल हमारी परम्परा में गङ्गास्नान और मूर्तिपूजा जैसी बातों पर कुत्सितविमर्श कई हुए हैं । शर्माजी के ये निबन्ध जो हैं ऐसे प्रश्नों के प्रामाणिक समाधान दे रहे हैं । इससे हमारे सम्प्रदाय पुनः प्रतिष्ठित है यही हमारा मतलब है शिवरामकृष्णशर्माजी को मैं कृतज्ञता के साथ नम्रभावसहित अभिनन्दन पेश करता हूँ ।

शुभंभूयात्

(सं) शिवानन्दमूर्ति

डा. चेरुकुमिल्लि सत्यसुर्यनरसिंहमूर्ति

Head of the Dept. of Vyakarana D.U.

Rashtriya Samskritasamsthan

Under MHRD, Govt. of India

Rajivgandhi campus, Sringeri - 577139

डा. चिर्रावूरि शिवरामकृष्णशर्माजी के ''वैदिकधर्मसत्यार्थप्रकाश'' को हमने पूर्णरूपसे परिशीलन किया। इन्होंने इसग्रन्थमें दयानन्दसरस्वतीस्वामी के आक्षेपों को प्रमाणसहित तिरस्कार किया और अद्वैतसिद्धान्त का स्थापन किया। दयानन्दजी के ख्याल से देवताओं की मूर्तिपूजा अर्चक लोगों के द्वारा कल्पित है - ऐसी बातोंका खण्डन इन्होंने सप्रामाणिक रीति से किया। और बारहवे शीर्षिका में पितृकर्मोंका आचरण शास्त्रानुसार करने का वर्णन ढंगसे प्रस्तुत किया। ''कुछ इन्द्रियातीतशक्ति इस दुनिया को चलाती है। जो, महर्षि उस शक्ति को समझकर अपनाकर हमारेलिए जो उपदेशकर रखे हैं वे हमारे इन्द्रियोंसे परे हैं। इसलिए उन उपदेशोंका विस्मरण नहीं करना चाहिए।'' - इस तरह शर्माजी का विवरण सुचारुरूपसे रोचक बनगया है। शिवपुराण के विषयमें दयानन्दजी के विमर्शको उस ग्रन्थकर्ताने सन्दर्भसहित तिरस्कृत किया। कूर्मपुराण में सृष्टिकी उत्पत्ति और प्रळय, हरि और हर - दोनों के द्वारा होने का विषय प्रस्तुत करके, ''कल्पभेद के अनुसार वह सुघटित हो सकता है'' इस तरह का सयुक्तिकसमाधान करके शर्माजीने पाठकवर्गका मन हरण किया। सप्तशती का जो विमर्श दयानन्दजी का रहा, उसका खण्डन सुचारुरूपसे किया गया, दयानन्दजीने दूषण किया कि ''सप्तशती रचना के समय मद्यपान

करके ग्रन्थकर्तानें लोगों के सामने एक कल्पित कथा को प्रस्तुतकिया सब बनावट ही है ।'' इसका समाधान शर्माजीने सनातनधर्म में आधुनिकता को घुसाकर जो लिखा वह अत्यन्त सराहनीय है । दयानन्दजीने भागवतमें लिखा कि ''ऐसी असंघटित झूठी बातें कहने केलिए ग्रन्थकर्ता को शर्मिन्दा होना चाहिए था, लिखते समय आंखें भी नहीं थीं क्या ? - इनका खण्डन करते समय शर्माजीने साबित किया कि जीवशास्त्र के अनुसार भागवत में कथित सृष्टिक्रम ठीक ही है । श्रीदयानन्दजी का ही चिन्तन गलत है । आजकल षिरिडी शायिबाबा की हवा चारों ओर फैल रही है । श्री शायिनाथ के चरित्र से अनेक दृष्टान्तों को देकर उनके भक्तों के सामने श्री शर्माजी आदर्शपुरुष सिद्ध हुए हैं । श्रीस्वामीजी गुरुजनों के प्रति लिखते समय जो असभ्यशब्दजाल का उपयोग किये हैं उसका खण्डन करके शर्माजीने आपस्तम्बसूत्रों के अनुसार गुरुसेवा नियमों का विवरण ढंगसे किया । विभूतिधारण के खिलाफ जो आक्षेप उठाये हैं, उनका निराकरण श्रीशर्माजी आयुर्वेद के अनुसार करके अपने काम में सफल हो गये । शर्माजीने यह भी कह दिया कि ज्योतिश्शास्त्रको अन्धविश्वास नहीं कहना है, ग्रहगतियों के साथ मनुष्यों का चालचलन होता रहता है । श्रीदयानन्दसरस्वती, शारीरकसूत्रों में अद्वैतसिद्धान्तनिराकरण में असफल रहें, इसलिए शर्माजीने निर्णय किया कि अद्वैत के अनुयायियों को किसीतरह की कोई आपत्ति या नुकसान है ही नहीं ।

सत्कृति को नमस्कृति

सामवेदं षण्मुखशर्मा
ऋषिपीठं छारिटबुलट्रस्ट, प्लाट नं २९९/३००
फेस् - १, साकेत कालोनी, इ सि ऐल् पोस्ट्,
सिकिन्द्राबाद् - ६२.   दूरवाणी : ०४०-२७१३२५५०

जड़ में जो है वही पेड़ में ऊपरसे नीचे तक फैल जाता है । लेकिन पेड़ और उनके ऊपर पत्ते फूल और फल देखने को जड़ जैसे नहीं लगते । इसलिए नहीं कहना है कि जड़ अलग है पेड़ अलग है । और कोई कहेगा कि पेड़ अलग है जड़ अलग है उन के हम 'विवेकी पुरुष' नहीं मान सकते हैं। दयानन्दसरस्वती की जो सत्यार्थप्रकाश है वह वृक्षमूल और वृक्षों को अलग अलग देखने का प्रेरणास्रोत है । कविकल्पनाबुद्धि से सम्मिळित जो पाण्डित्य था दयानन्दजी का, वह सनातनधर्म के ऊपर कठिनव्याघात के रूपमें प्रकाश में आया था ।

लेकिन वेदों से लेकर धर्मशास्त्र और पुराणों तक पूरापूरा वैदिकसाहित्य ही तो है । इस तरह जो महात्मा सोचते हैं उन लोगोंने दयानन्दजी के विचार प्रचारों का सामना किया । उनसब महात्माओं का सही दिल वैदिकवाङ्मय के मूर्धन्यविद्वान् डा. चिर्रावूरि शिवरामकृष्णशर्माजी की रचना ''वैदिकसत्यार्थप्रकाश'' के रूप में प्रकटित हो रहा है ।

पुराण और इतिहास जो वेदार्थ की विस्तृति केलिए अवतरित हैं, वे संकेतार्थों से धर्म की प्रेरणा देते हुए हिन्दूसनातनधर्म को आमतौर लोगों के सामने लाने में सफल हुए हैं ।

श्रीदयानन्दसरस्वतीजी विस्तृतवेदार्थविज्ञान को अपनी एकमुखी संकुचित ज्ञान के बल पर खण्डन करने लगे। इसी के आधार पर अपना नया सिद्धान्त निकालकर जो पुरानी रीति रिवाज विस्तृतवेदविज्ञान पर आधारित हैं, उनकी अवहेलना करने लगे। इस सिलसिले में श्रीदयानन्दजी के वचनों का खण्डन करने में यह ग्रन्थ सफल रहा ग्रन्थकर्ता क्रमपद्धति से विमर्श करने में काबिल हुए। 'परिशीलन' नाम से, हिन्दूधर्मदूषणों का सहेतुक खण्डन करने का तरीका बहुत ही आश्चर्यजनक है। अधूरे ज्ञान के साथ हिन्दूधर्म की निन्दा करनेवाले, इस ग्रन्थ से सबक सीख सकते हैं। सफाई के साथ प्रामाणिक सीधा रास्ता अपनाकर रचित इस साधिकारिक ग्रन्थ को भक्ति के साथ प्रणाम कर रहा हूँ।

बुधजनविधेय

(sd) **सामवेदं षण्मुखशर्मा**

सत्यशोधन

आचार्य रेमिल्ल वेंकटकृष्णशास्त्री
तेलुगुशाखा
हैदराबाद्विश्वविद्यालय

भारतीय संस्कृति नामक महल चार खंभों पर खडा है, वे हैं धर्म - अर्थ - काम और मोक्ष । इसलिए भारत में भारतीयवाङ्मय और सारी कलाएँ चार पुरुषार्थों के प्रतिपादक हैं । इनमें से, मोक्ष परमपुरुषार्थ है । उसको पाने का प्रधानसाधन ज्ञान ही है । उसकी पहली सीढी कर्माचरण है। कर्माचरण से चित्तशुद्धि प्राप्त होती है और उससे ज्ञानमार्ग सुगम होता है। कर्माचरण में निष्ठा को भक्ति के द्वारा पा सकते हैं । भक्ति माने परमात्मा के प्रति अचंचल विश्वास के साथ निष्कपट प्रेम को ही भक्ति कहते हैं । उस तरह की भक्ति ही ज्ञान प्राप्त कराती है । मोक्ष पाने के साधनाओं में भक्ति सर्वेपरि है । कर्म भक्ति औार ज्ञान तीनों का भगवद्गीता में काफी विवरण मिलता है । सगुणभक्ति और निर्गुणभक्ति - नाम से उपासना में फरक पड़ता है । सगुणोपासना को लेकर ही मूर्तिपूजा अमलमें आयी थी। उसके सिलसिले में मन्दिरनिर्माण चला आ रहा है । मन्दिरनिर्माण की वजह से कई भारतीयकलाओं और विद्याओं का पोषण हो रहा है । सब मानवों केलिए मोक्षही परमगम्य है - इस बात पर सारे ऋषि मुनि सहमत हैं । यह मोक्ष भी दो प्रकार का है । सद्योमुक्ति और क्रममुक्ति । क्रममुक्ति की साधना के रूप में कर्ममार्ग और भक्तिमार्ग काम में आते हैं । कर्मकाण्डी भक्तलोग योगीजन (मुमुक्षु) सब ज्ञान के द्वारा मोक्षको पाने के रास्ते में हैं।

लेकिन अधिकारी (साधक) की योग्यता के अनुसार भी साधना बदलने से भी, फलप्राप्ति में फरक पडता है । सबलोग ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, लेकिन एकही ज्ञान सबको साध्य नहीं बन सकता । इसलिए दूसरे मार्गों का अन्वेषण करना अनिवार्य है । उन मार्गोंपर चलनेवालों के भ्रमप्रमादों से कमजोरियों से कई दोष मार्गों में घुस गये । उनको परास्त करके आगे बढना है । उन मार्गों का संरक्षण करने हेतु श्रीचिर् रावूरि शिवरामकृष्णशर्माजीने इसग्रन्थकी रचना की ।

हिन्दूधर्म के खिलाफ स्वामिदयानन्दसरस्वती ने कई कुविमर्श उठाये हैं । शर्माजीने उन विमर्शों का खण्डनकिया और साबित किया कि स्वामीजी के विमर्श कितने असंगत असम्बद्ध और असत्य हैं । दयानन्दजी के पहले भी हिन्दूजनता के विग्रहपूजन का दूषण किये हुए लोग थे । श्री विवेकानन्दजीने उन सबका सही ढंगसे समाधान दिया था । शर्माजीने अपने ग्रन्थ में अनेक वैदिकप्रमाणों को दिखाकर सगुणसाकार परब्रह्मोपासना का समर्थन किया । किसी बात पर कोई भी आसानी से दोषारोपण कर सकता है । उसको मना करना अपनी सफाई देना बहुत मुश्किल है । स्वामिदयानन्दजी के आरोपणों का निराकरण करते हुए श्रीशर्माजी ने कई प्रमाणों को दिखाया । उनको देखते ही पता चलता है कि शर्माजी कितने ग्रन्थों का परिशीलन किया कितना अथक परिश्रम करके गहराई में जाकर शोधन किया । इनका निरंतर प्रयत्न बहुत ही प्रशंसापात्र है ।

और एक बात । आस्तिक लोग जितना भी कहें नास्तिकजनों को सब बकवास लगेगा ही ।आस्तिकों में भी ज्ञानीलोगों को कर्मकांडी के सारे कर्म असंगत लगते हैं । छोटे बच्चों को बडे लोगों की चेष्टाएँ विचित्र मालूम पङती हैं । इन सब का दृष्टिभेद ही एक कारण है । दृष्टि में जो दोष है उसको दृश्यों पर आरोपित करना ठीक नहीं है । वेद पुराण और स्मृतिग्रन्थों

का अध्ययन करके समझने में आदमी को सतर्क रहना चाहिए । उनके ऊपर दोषारोपण करने से पहले और भी सचेत होना चाहिए । श्रीशिवरामकृष्णशर्माजीने दयानन्दमतखण्डन में काफी जागरूक होकर निन्दा की ओर नहीं जाते हुए संयमका पालन किया । यह प्रश्नोत्तररूप में होने के नाते पाठकों का मनहरण कर सकता है । और भी विमर्श करने से बहुत बडा ग्रन्थ हो जायेगा । मान्य मित्र, श्रीशिवरामकृष्णशर्माजी के इस प्रयत्न का अभिनन्दन करते हुए उनकी सत्यदृष्टि और धर्मबद्धता की भूरिप्रशंसा कर रहा हूँ ।

भूमिका

भारतीतीर्थहंसक,भक्तिकवितामत्तकोकिल,
बालात्रिपुरसुन्दरीललितापराभट्टारिकासंस्थान
(हैदराबाद) के आस्थानविद्वत्कवि
डा. वि. ए. कुमारस्वामी
दूरवाणी : ०४०६५३५३५८४

आर्यसमाजस्थापक श्रीदयानन्दसरस्वतीजी के सत्यार्थप्रकाश का खण्डन करते हुए श्रीचिर्रावूरि शिवरामकृष्णशर्माजी का यह उद्ग्रन्थ सारे हिन्दू लोगों का शिरोधार्य है। इसका अनुवाद हिन्दी में और अंग्रेजी में होना चाहिए। तब सारे भारतमें यह मशहूर होगा - इसतरह आशाकरनेवालों में, मैं पहले रहता हूँ।

श्रीशर्माजी वेद और वेदार्थ, वेदान्त और व्याकरण, वास्तु और ज्योतिष, पुराण और इतिहास - सबमें समुत्तीर्ण मेधावी शिक्षक हैं। श्रीशर्माजी की प्रखरप्रज्ञा आधुनिकविज्ञान के साथ सम्मिळित होकर विषयसमन्वय करने में अक्षुण्ण रही। शर्माजी का यह अनमोल ग्रन्थ सब के पल्ले पड़नेवाला नहीं। दुनिया में प्रचार प्रसार साधनों से जो सहज में जानने योग्य हैं उन में इस ग्रन्थ का नाम नहीं रहेगा। लेकिन शास्त्रसम्मत होकर उच्चकोटि के विद्वान ही जिस को जानसकते हैं उस श्रेणी में इस उद्ग्रन्थ को कम लोग ही पढ पाते हैं। फिर भी इस ग्रन्थ की आवश्यकता अनिवार्य और अनमोल है। मूर्तिपूजन की विशेषताओं का विवरण करता

हुआ यह नया ग्रन्थ अपनी जगह पर खडा रहता है, अपना महत्त्व अपने आप प्रकट करता है ।

मूर्तिपूजन भारत में कई युगों से सदियों से अमल में रहा है । उसके खिलाफ अब झंडा उठाना बिलकुल बेकार की बात है । मैं अपने अनुभव के अन्तर्गत दो उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। विशाखपटनम् के पास सिंहाचलक्षेत्र के वराहनरसिंहभगवान् मेरे सामने दो तीन ताड़ के पेड़ के बराबर ऊंचाई की सूरत में दर्शन दे चुके हैं। कुरुवपुरम् के पास वल्लभापुरम् में विठलबाबाजीने हमको पालकी में नाचते हुए दत्तभगवान् की छोटी सी मूर्ति को दिखाया, अर्थात् दत्तजयन्ती के दिन भक्तजन पालकी में दत्तमूर्ति को रखकर गाना गाते हुए नाचने लगे । तब दत्तभगवान्की उत्सवमूर्ति भी खुद नाचने लगी, तब देखनेवालों में हम भी शामिल थे ।लाखों से लोग षिरिडीक्षेत्र में और तिरुमलक्षेत्र में सायिनाथ और बालाजी के पूजन करते हुए अपनी मनोकामनापूरण कर लेते हैं । इसलिए हम कहना चाहते हैं कि भले ही हमें पसंद नहीं है, युक्तियुक्त नहीं, तथापि कुछ परम्परागत रीति रिवाजों को हम मना नहीं कर सकते हैं ।

भगवद्गीता और श्रीमद्भागवत, सारे संसार में प्रसिद्ध हैं । उनके अनुसार स्वर्ग और नरक को इस्कान में जो विलायतीलोग भी मानते हैं, उनके संबंधित अनुभव भी जीवों को मिल चुके हैं । परमहंसयोगानन्द जीवितग्रन्थ में षिरिडीबाबा के जीवितचरित्र में और ग्रन्थों में भी पुनर्जन्म के उदाहरण और स्वर्गादि परलोकों के वृत्तान्त प्रकट हुए हैं । पुनर्जन्म को साबित करनेवाली घटनाएँ उपलब्ध हैं । ऐसी बार्ताओं को इकट्ठा करके बैठे हुए लोग भी मौजूद हैं । 'ज्योतिष्टोमेन स्वर्गकामो यजेत' - यह वेदवाक्य वृथा होता है जब आर्यसमाज के अनुसार स्वर्ग और नरक यहीं पर हैं तो। एक तरफ वेद का प्रामाण्य मानते हैं तो गीता और भागवत में स्वर्ग और

नरक को मानते हैं तो आर्यसमाजी कैसे कह सकते हैं कि स्वर्ग और नरक यहीं पर हैं ?

इसीप्रकार वैदिकपरम्परा का तिरस्कार करके 'केवल संहिताभाग ही वेदशब्दवाच्य' कहना उचित नहीं है । इस मामले में आपस्तम्ब का समर्थन करते हुए ब्राह्मणभाग को भी वेद मानने केलिए युक्तिसंगत विवरण श्रीशर्माजी प्रस्तुत करते तो और अच्छा होता ।

श्लो।। अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम्
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनाम् ।।

यह श्लोक हमको बहुत पसंद है । इसका विवरण करते हुए शर्माजी जैसे विद्वान् भारत के लोगों को समझायेंगे कि मूर्तिपूजन अखिरी बात नहीं है। अपने दिलके अंदर ईश्वर को जानना जरूरी है । किन्तु प्रतिमापूजन का इनकार करना किसी हालत में ठीक नहीं । इस दिशा में समधिक सराहनीय परिश्रम करके शर्माजी ने इस महाग्रन्थ को रचा और इस की तारीफ देश विदेशों में फैलने की हम आशा रखते हैं ।

भगवदीय

वि.ए. कुमारस्वामी

यह सत्यार्थप्रकाश ही है

आचार्य सी.वी.बी. सुब्रह्मण्यम्
एम्ए. पिहेच्. डि.
ज्योतिश्शास्त्र विभागाधिपति
तेलुगुविश्वविद्यालय, हैदराबाद.

❋ सत्य जो है वह नित्य है, एकसमय रहकर दूसरे समय जो नष्ट होता है, उसको सत्य मानना गलत है । हमारे प्राचीनविज्ञान में अनेक विशेषताएँ आधुनिक विज्ञान के द्वारा निरूपित हो रही हैं । जबतक निरूपण नहीं हुआ तबतक वह संभव है या असंभव है - इस तरह शक करना स्वाभाविक है ।

❋ जानवरों के साथ बातचीत करना हमारे प्राचीनग्रन्थों में दिखायी देता है । मध्यसमय में साबित हो चुका है कि यह सम्भव है । जब तक वह प्रमाणित नहीं होता है तब तक उसका विमर्श करनेवाले कहते हैं कि यह बिलकुल काल्पनिक है ।

❋ एकव्यक्ति का अन्तर्हित होना पुरानी बात रही । उस का कपड़ा (तिरस्करिणी) आजकल जब समझ में आया तब गायब हो जाना अनोखी बात नहीं रह गयी है ।

❋ वेदवचन यह है कि गाय का घी आयु और आरोग्य - दोनों का वर्धकहै । परसों तक एल्लोपतिवाले घी को मना करते थे । अब समझ में आया कि गाय का घी खाने से कान्स्र्र् भी दूर हो सकता है और दिलकी कमजोरी हट जाती है ।

❊ 'सत्यार्थप्रकाशिका' में दयानन्दजी को लगा कि सप्तशती में रक्तबीज की कहानी अनहोनी और मजेदार बात । अब विज्ञान का परिशोधन ने आविष्कार किया कि पंचभूतों से भी जीवकणों का संपादन कर सकते हैं।

विनायक का शिर खण्डन करके दूसरा शिर जोड़ना और यज्ञपुरुष का मस्तक खण्डित करके दूसरा लगा देना जो वेद में हैं - वह परसों तक असाध्य जाना जाता था । आजकल सर्जरी में, शिर निकालकर दूसरा रखना विज्ञानक्षेत्र में अमल में आ चुका है ।

ऐसे लोग जो अपने को बहुत समझदार मानते हैं, वे आधुनिकयुग में भक्ति को एक विश्वासमात्र मानने लगे । लेकिन आजकल वैज्ञानिकक्षेत्र में भक्ति को चिकित्साविधान में एक नया तरीका मानने लगे हैं ।

प्राचीनविज्ञान में पांच प्रतिशत, आजकल आधुनिकविज्ञान द्वारा साबित हो गये हैं । बाकी ९५% परखने लायक हैं लेकिन असत्य के रूप में मानने योग्य नहीं हैं ।

गाय के घी के बारे में आधुनिक विज्ञान जैसे अपनी गलती को सुधारने लगा ऐसा ही आनेवाली पीढी में और भी वैदिकपौराणिक अंशों को सही ढंग से समझने की चेष्टा करेंगे और सारे मानव इस धरतीपर सत्यार्थ को मान्यता देंगे ।

अब श्रीशिवरामकृष्णशर्माजी के 'वैदिकधर्म सत्यार्थप्रकाश' को पढने के बाद, समझने के बाद, श्रीदयानन्दसरस्वती की गलतफहमी क्या थी समझ में आती है मेधावीवर्ग जो प्राचीनविज्ञान के खिलाफ, झंडा उठानेलगे उसके चंगुल में आकर, प्राचीनवेदविज्ञान का खण्डन करने लगे। उसतरह नया विमर्श निकालते हुए हिन्दूसमाज को गलत रास्ते पर हाँकते हुए अपनी गलतफहमी को लोगों के ऊपर थोपदिया उसका नाम सत्यार्थप्रकाश रखागया । खास तौर से ग्रहमन्त्रों का अर्थविवरण इस ग्रन्थ में जो प्रस्तुत

है वह श्रीशिवरामकृष्णशर्मा जैसे विद्वान ही कर सकते हैं, क्यों कि शर्माजी वेदवेदाङ्गवेदार्थवेत्ता मूर्धन्यविद्वान् हैं ।

शास्त्र का कथन यह है कि कर्म के अनुसार फलित को सूचित करना ही ग्रहों का काम है । ऐसी बातें लोगों के जीवन में सही साबित हो रही हैं । ज्योतिषशास्त्र का खण्डन करने के वास्ते उस शास्त्र का अध्ययन करके सैकड़ों लोग जोषीजी बनगये ।

श्रीदयानन्दसरस्वती के ख्याल से कर्मसिद्धान्त और ज्योतिश्शास्त्र आपस में व्यतिरेकी हैं । वे, गहराई में जाकर दोनों का अध्ययन करने के बिना, खण्डन करना ही अपनी महानता मानने लगे ।

जन्मकुण्डली को देखकर शादी करने के बावजूद, पति - पत्नी अलग हो रहे हैं - इस तरह का कुविमर्श अपने वाक्यों का खण्डन खुद करने के रास्ते पर तुले हुए हैं ।

प्रारब्ध अनिवार्यरूप से भोगना ही पडता है - इसतरह का कर्मसिद्धान्त सब को जब मानना पड़ेगा - तब जोषीजी की पुत्री है तो प्रारब्ध से छुटकारा कैसे पा सकती है ? इसतरह सोचना स्ववचनव्याघात है न । ज्योतिश्शास्त्र को इसप्रकार ठीक से नहीं समझते हुए विमर्श करना समुचित नहीं है ।

एक ग्वाला, एक चक्रवर्ती का बेटा दोनों एक ही क्षणमें पैदा हुए। तब यह साबित हुआ कि दोनों के जीवनकाल में समानरूप से उनदोनों ने अनुभव प्राप्त किया । ऐसी खास बातें श्रीदयानन्दसरस्वतीजी के नज़र में नहीं आयीं, इस का एक ही कारण था कि खुद परिशीलन के बिना विमर्शकरने में ही श्रीदयानन्दसरस्वती लग गये थे । दान करने से, पीनियल ग्लांड से जो हार्मोन निकलती है, वह आदमी में आनन्द के साथ रोगनिरोधकशक्ति को बढाती है - इसतरह का शोधन दयानन्दजी के जमाने में नहीं हुआ; इसी तरह आगे आनेवाले समय में शोधन करते करते हमारे प्राचीनविज्ञानसूत्र नित्यसत्य के रूप में अवतरित होंगे ।

सी.वी.बी. सुब्रह्मण्यम्

१. विग्रहाराधनदूषण
परिशीलन

आक्षेप : श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी ने मूर्तिपूजा का खण्डन किया। उन्होंने समझा कि मूर्तिपूजा जैनों की मूर्खता से हिन्दूजनता में फैलगयी ? (सत्यार्थप्रकाशिका ११ स ४०१ पृ)

जवाब : भातदेश के हरप्पा खण्डहरों के अवशेषों में पशुपतिदेव की मुद्रिका, गुहावासी शिवलिङ्ग, देवमन्दिर और अम्मतल्लि आराधना भी हैं ।

यह हरप्पा की सभ्यता क्री.पू.३५०० साल पुरानी है । इस बात पर चरित्रकार सहमत हैं ।

भारत और पाकिस्थान के बीच समुद्र जलसन्धि में एक मन्दिर मिलगया - यह निश्चितरूप से ७५०० साल के पहले समय का था 'ईनाडु' पत्रिका के इतवार के दिन चित्र के साथ छपा हु आ था, पाठकलोग याद रखते हैं न ।

श्रीरामचन्द्रने अगत्स्यमहामुनि के आश्रम में अनेक देवस्थानों को देखा । श्लोकों को पढिये -

श्लो. **स तत्रब्रह्मणः स्थानं अग्नेः स्थानं तथैव च**
विष्णोः स्थानं भगस्थानं स्थानं कौबेर मेव च
धातुर्विधातुः स्थाने च वायोः स्थानं तथैव च
नागराजस्य च स्थानं अनन्तस्य महात्मनः
स्थानं तथैव गायत्र्याः वसूनां स्थान मेव च
स्थानं च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मनः
कार्तिकेयस्य च स्थानं धर्मस्थानं च पश्यति
(श्रीमद्वाल्मीकिरामायण अरण्यकाण्ड १७-२१)

देवालय शब्द के बदले में उनदिनों में देवस्थानशब्द प्रचलित रहा। अगस्त्याश्रम में श्रीरामप्रभु, ब्रह्मस्थान, अग्निस्थान, विष्णुस्थान, महेन्द्रस्थान, विवस्वान् का स्थान, सोमस्थान वसुस्थान, भगस्थान, कुबेरस्थान, धाता का स्थान, विधाता का स्थान, गायत्रीस्थान, वरुणस्थान, वायुस्थान, और धर्मस्थान देखरहे थे।

आजकल काशीविश्वनाथस्थान जैसे पवित्रक्षेत्रों में साधक लोग मन्त्रों का जाप करते हुए दिखायी देते हैं। उस प्रकार अगस्त्यमनि के आश्रम में भी तपस्या करके पुण्यलोक प्राप्त करनेवाले थे। देखिये :-

श्लो. अत्र देवाश्च यक्षाश्च नागाश्च पतगैस्सह
वसन्ति नियताहारा धर्ममाराधयिष्णवः
अत्र सिद्धिा महात्मानो विमानैः सूर्यसन्निभैः
त्यक्तदेहा नवैः देहैः स्वर्याताः परमर्षयः
यक्षत्वममरत्वं च राज्यानि विविधानि च
अत्र देवाः प्रयच्छन्ति भूतैराराधिताश्शुभैः

यहाँ अमर, यक्ष, नाग, पतग, नियताहार होकर धर्माचरण करने केलिये आये हैं। तपस्या से सिद्धि प्राप्त करके महर्षिलोग सूर्यसमानतेजोवंत विमानों में यहाँ पृथ्वीपर पुराना शरीर छोडकर नये शरीरों से स्वर्गलोक पहुँच गये। यहाँ प्रणीमात्र जो चाहते वह (आराधना के बलपर) देवतालोग, चाहे यक्षत्व हो अमरत्व हो राज्य हो तरह तरह की कामनाओं की पूर्ति करके दे रहे हैं। (रामायण, अरण्य, १२ सर्ग ९२-९५) श्रीरामप्रभु के काल का सेतु मिल गया। श्रीमद्रामायण चारित्रिक सत्य है। इस से यह बात पक्की निकली कि उस समय देवमन्दिर थे वहाँ साधक लोग देवताओं का आराधन करते थे और उसका सत्फल पाते थे।

इस से यह सिद्ध हुआ कि हिन्दूलोग की जैनों से मूर्तिपूजन सीखने की बात झूठ है। और यहाँ पर साफ साफ बताया कि मूर्तिपूजा से उनको सत्फलित भी मिलता रहा। इसलिए यह मूर्खता नहीं है जैसे दयानन्द सोचते थे।

आक्षेप : देवालयों में पूजारी लोग ही कहीं से कपटनाटक खेलकर मूर्तियों को लादेते हैं और कहते हैं कि ये स्वयंभू हैं, और अपने स्वार्थसिद्धि केलिए भक्तजनों से फिर से उनका प्रतिष्ठापन कराते हैं पैसा हड़पलेते हैं। (सत्यार्थप्रकाश स ४०१, ४०२)

जवाब : अन्नवरम् सत्यनारायणस्वामी की मूर्ति जमीन्दारों को मिली, और चरित्र के अनुसार पोकल दम्मक्क नामक भक्तिन को भद्राचल श्रीरामप्रभु के विग्रह प्राप्त हुए अर्थात् मन्दिर स्थापना में पूजारियों का नेतृत्व नहीं है। मचिलीपट्नम् नामक शहर में एक भक्तमहाशय ने जिन का नाम लक्ष्मीपुरं विठ्ठलरावु था उन्होंने सायिनाथमन्दिर का निर्माण किया हम इस बात को खूब जानते हैं कि हम कई साल मचिलीपट्नम् में रहे थे। इसलिए श्रीदयानन्दसरस्वती का चिन्तन केवल ऊहामात्र है, वह सबजगह लागू नहीं हो सकेगा। आगमशास्त्र के अनुसार प्रतिष्ठा करानेवाले और हैं मन्दिर में अर्चन करनेवाले पूजारि अलग हैं।

प्रश्न : परमेश्वर निराकार हैं। उनका ध्यान असम्भव है। इसलिए मूर्तिपूजन बहुत आवश्यक था। कुछ लोग कुछ भी नहीं करसकते, तथापि मूर्ति के पास जाकर प्रणाम करके नामसंकीर्तन कर सकते हैं तब नुकसान नहीं है न ? श्रीदयानन्दसरस्वती का **जवाब** इसप्रकार है :-

परमेश्वर निराकार है। वह सर्वव्यपक है। इसलिए उसका विग्रहनिर्माण ही असंगत है। ...मूर्ति (सूरत) को देखने से भगवान याद आते हैं - ऐसी बातें नामुमकिन हैं। (वहीग्रन्थ पु-४०३)

परिशीलन - भावनोपनिषद् के अनुसार ललितादेवी के हाथ में पांच पुष्पबाण पांच तन्मात्राओं के प्रतीक हैं (निशान हैं)। गन्ने का धनुष मन का प्रतीक है, पाश, राग का प्रतीक है। (शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः पञ्च तन्मात्राः पञ्च पुष्पबाणाः, मन इक्षुधनुः रागः पाशः' भावनोपनिषत् उपनिषत्संग्रहः पृ-५४९)। श्रीमद्भागवतमें ''विराट्पुरुष के वस्त्र आभरण इत्यादि उनके लक्षणों के प्रतीक हैं''

श्लो. **''कालरूपं धनुश्शार्ङ्गं तथा कर्ममयेषुधिम्**
अपां तत्वं दरवरं तेजस्तत्त्वं सुदर्शनम्''

(भगवान के हाथ में शार्ङ्गनामक धनुष् काल का प्रतीक है, तरकस कर्म का निशान है जलतत्व का निशान है शंख, सुदर्शनचक्र तेजस् का प्रतीक है । श्रीमद्भागवत स्क - १२, अ-११, श्लोक - १०, १९ तक) भगवान् के परिकरों के द्वारा भगवत्तत्त्वको कैसे समझना है - यह बात यहाँ कही गयी है। इस तरह निराकार भगवान् की शक्तियों के प्रतीकरूप में विग्रह निर्माण होता है । तब निराकार भगवान् केलिए विग्रहनिर्माण जरूर हो सकता है ।

आक्षेप : उसी ग्रन्थ में पृ-४०३ में श्रीदयानन्दसरस्वती का आक्षेप इस प्रकार हैः- ''जब भगवान् की मूर्ति सामने नहीं है तब परमेश्वर का स्मरण नहीं होता, इसलिए आदमी अकेले चोरी और व्यभिचार करने में लग जायगा''।

परिशीलन : श्रीचक्रार्चन में पूजनकरते समय कहा गया कि ऐसी भावना करनी चाहिए कि परमेश्वर श्वास के द्वारा हाथ में लिये हुए फूल में प्रवेशकरें और फूल जब यंत्र पर डालते हैं (अर्थात् मूर्तिपर रखते हैं) तब उस में प्रवेश करते हैं । प्राणप्रतिष्ठा के समय ईश्वर, फूल के द्वारा विग्रह में प्रविष्ट हो चुके हैं, फिर उस फूल को हम जब लेते हैं अपने दिल के अन्दर प्रविष्ट होते हैं (श्रीविद्यासपर्यापद्धति पृ-४२, ११२)

हर एक को समझना है कि अपने दिल में भगवान् प्रतिष्ठित हैं - तब अकेले रहने पर भी गलत काम आदमी करने को नहीं बैठेगा । लोग इसलिए कई गलत काम करते रहते हैं कि बुरी चीजों पर बेहद अनुराग रखते हैं परमेश्वर को भूल भी जाते हैं भले ही, नहीं भूलते हैं, फिर भी गलत काम से मन को रोकने की क्षमता खो बैठते हैं । ऐसे लोग पूजा करें भगवान् से प्रार्थना करें अपनी दुष्ट बुद्धि को हटाकर सद् बुद्धि दे । इसप्रकार दुष्ट कार्य करने की आदत छोडने केलिए मूर्तिपूजन साधना है, यह नहीं है कि मूर्तिपूजा से ही आदमी गलत काम करने लगता है ।

२. नामसंकीर्तन से कोई फायदा नहीं
एक परिशीलन

आक्षेप : ''चीनी चीनी'' बोलने से मिठास, और 'नीम का पत्ता, नीम का पत्ता' बोलने से कडुआ पन नहीं लगता है । जीभ से स्वाद ग्रहण करने से पता चलता है कि यह कडुआ है यह तीखा है नामस्मरणमात्र से कोई फायदा नहीं'' - यही दयानन्दस्वामीजी का मतलब (सत्यार्थप्रकाश पृ-४०३)

परिशीलन : कोई चीज खट्टी है तो मुँह में पानी आता है । उस का नाम सुनते ही वह चीज याद आती है । भगवन्नामस्मरण से भगवान् उस के अनेक गुणगण, उन का अनुग्रह पाने के योग्य स्थान और साधन स्मृतिपथ में आजाते हैं । श्रीकृष्णचैतन्य के चरित्र में लिखा है कि गयाक्षेत्र में भगवान् विष्णु के पादों का स्मरण होने से तुरंत श्री चैतन्यमहाप्रभुजी समाधि में चले गये । **श्लो. अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा**

यःस्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः

इस श्लोक का अर्थ यह है कि पुण्डरीकाक्ष नामस्मरण मात्र से अंदर और बाहर शुद्धि (पवित्रता) हो जाती है । इस तरह नाम की महिमा का गुणगान कई वाक्य करते हैं । उदाहरण केलिए कलिसंतरणोपनिष् कहती है कि हरे राम श्लोकमन्त्र कलिकल्मषनाशक है (उपनिषत् संग्रहः पृ-६२७) आस्तिकलोग भगवन्नामस्मरण को बहुत प्रयोजनकारी मानते हैं ।

षिरिडीशायिबाबा भले ही हिन्दू नहीं थे मुस्लिम पोशाक में ही थे, फिर भी कहते थे कि ''राजाराममन्त्र सदा जापकरो, ऐसा करोगे तो आपका जीवितलक्ष्य प्राप्तकर सकोगे । तेरा मन शान्तहोगा तुम्हारी भलाई होगी'' । (श्रीसायिसच्चरित्र २७ अध्याय २०५ पृ- श्रीपत्तिनारायणरावु)

इसलिए यह कहना ठीक नहीं है कि नाम स्मरण से कोई फायदा नहीं। यह वेद शास्त्रों के खिलाफ है और भक्तजनों के जितने भी चरित्र हैं उनके भी विरुद्ध है ।

३. मन्त्रजाप

मन्त्र में भी भगवन्नाम रहता है। उसके पहले और बाद भी बीजाक्षर हैं जिन का अर्थ विशिष्ट है । योगदर्शन १ पा.सू २३,२७,२८,२९ के अनुसार ईश्वर की उपासना से कैवल्य की प्राप्ति होती है । प्रणव (ओंकार) ईश्वर को समझाता है। उसका जाप करना है, उस के अर्थ का चिन्तन करना है ईश्वर के ध्यान से प्रत्यगात्मसाक्षात्कार होता है सारे विघ्न हट जाते हैं ।

पञ्चाक्षरीमहामन्त्र तैत्तिरीयसंहिता में है (४ का ५ प्र ८ अनु) नारायणाष्टाक्षरीमहामन्त्र श्रीमन्नारायणोपनिषद् में है। इसलिए मन्त्रजाप करना वेदविरुद्ध कभीभी नहीं है । यह ऋषिमुनि लोगों के सम्प्रदाय में है ।

श्रीदयानन्दसरस्वती की सत्यार्थप्रकाश की विषयसूचिका में मन्त्रार्थसिद्धिनिराकरण नामक एक शीर्षक है (३३ पृष्ठ) नारायणाष्टाक्षरीमन्त्र जो है वह आमतौर लोगों केलिए रचा हुआ है। (सत्यार्थप्रकाश - ३९८ पृष्ठ) इसलिए उसके समाधान के रूप में हम को इतना लिखना पड़ा ।

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी कहते हैं कि नामस्मरण करने का एक ही तरीका है - वह यह है कि परमेश्वर का एक ही नाम **'न्यायकारी'** ''पक्षपात के बिना सब के विषय में न्यायकरने वाला एकही परमात्मा है। इस नाम का अर्थ इसतरह समझता हुआ भगवान् का नामस्मरण करते रहना है। और खुद पक्षपात के बिना सब के साथ बरतना भी है'' - यही उन का मतलब है ।

परिशीलन : ठीक है । लेकिन सारे भगवान् के नामों का आचरण इसप्रकार नहीं हो सकेगा । विष्णुसहस्रनामों मे वनमाली एक नाम है । वनमाला का धारणकरनेवाला इसका अर्थ है । इस नाम का स्मरण करते रहेंगे और क्या आचरण करेंगे । इससे लगता है कि ऐसे नामों का ही स्मरण करना है जिन का स्मरण करने से सही आचरण ही समझने को मिलेगा । इस से बेहतर यह है कि भगवन्नामस्मरण का प्रयोजन उनको याद रखना ही है । तब हम भगवान के नाम जितने प्रसिद्ध हैं उनको याद कर सकते हैं ।

४. अवतार कल्पित हैं
एक परिशीलन

प्रश्न : दयानन्दसरस्वतीजी समझते हैं कि भगवान् भलेही देवीशिवविष्णुगणेशसूर्यादि रूपों का धारण करते हैं और श्रीराम श्रीकृष्ण आदि अवतार भी उनके हो सकते हैं - इस के बलपर विग्रहाराधन क्यों नहीं हो सकता ?

खुद वे इस का जवाब दे रहे हैं : हाँ, विग्रहाराधन भगवान का नहीं हो सकता इसलिए कि (ऋक्संहिता-७-३५-१३) में ''अज एकपात्'' (यजुः-४०-८) ''अकायम्'' इत्यादि के अनुसार परमात्मा के जनन और मरण नहीं हैं, वे शरीरधारण नहीं कर सकते । (स.प्र.पु-४०४)

परिशीलन : लेकिन केनोपनिषद के अनुसार जब देवतालोग असुरों के ऊपर जीत पाकर घमण्डी निकले तब परमात्मा, उनका मिथ्याभिमान हटाने केलिए खुद उनके समक्ष साक्षात् प्रगट हुए ''तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव'' (केनोपनिषद् ३,खं २मं) इसका विवरण श्रीशङ्करभाष्य में इस प्रकार है :- ''स्वयोगमाहात्म्यनिर्मितेन अत्यद्भुतेन विस्मापनीयेन रूपेण देवाना मिन्द्रियगोचरे प्रादुर्बभूव'' अर्थात् परमात्मा ऐसा रूप धारण करके देवताओं के इन्द्रियों के सामने प्रत्यक्ष हुए जो रूप योगमहत्त्व से रचा हुआ था और इसीलिए बहुत ही आश्चर्यजनक रहा ।

चूँकि परमात्मा ने उस तरह का रूप धारण किया, देवतालोग भी उसको समझने केलिए दिलचस्पी के साथ प्रयत्न करने लगे । इसलिए परमात्मा जो चाहते हैं, उस तरह का शरीर धारण करना अपने संकल्प के अनुसार करना वेद के खिलाफ नहीं ।

श्रीदयानन्दसरस्वती का **विमर्श** (सं.प्र.पृ-४०४) इस प्रकार है :-

परमात्मा आकाश के बराबर सर्वव्यापक हैं । अनन्त हैं, उनके न सुख है, न दुःख है, न दृश्यादिगुण हैं, वह अत्यल्प वीर्यकण के अंदर गर्भाशय के अंदर शरीर के अंदर कैसे आ सकता है ? जो एक जगह रहता है दुसरी जगह नहीं, वह आ भी सकता है और जा भी सकता है । जो अचल है अदृश्य है एक परमाणु को भी नहीं छोड़कर सबजगह फैला है वह कैसे अवतार धारण करेगा? - यह कहना इतना नामुमकिन है कि जैसे वन्ध्यास्त्री अपने बेटे की शादी करके पोते को देख रही है ।

जवाब : परमात्मा जब जगह भरा हुआ है तब गर्भाशय में शरीर में भी है । सब जगह फैलाहुआ आकाश में घड़े में भी है । वहाँ फिर से प्रवेश करने की जरूरत नहीं वहाँ सिर्फ इतना ही है कि वह प्रगट हो जावें। भले ही भगवान् अदृश्य है वह दृश्य भी हो सकता है क्यों कि वह सर्वशक्तिमान् है। कैवल्योपनिषद में शिवजी का वर्णन है, देखिये:- ''तमादिमध्यान्तविहीनमेकं विभुं चिदानन्दमरूपमद्भुतम् उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम्।'' (उपनिषत्संग्रह कैवल्योपनिषत् ६ मं)

इसमें पार्वतीसहित परमेश्वर का वर्णन है । यहाँ निर्गुण ध्यान पहले है - आदि मध्य और अन्त उनके नहीं हैं वह एक ही है विभु है व्यापक है चिदानन्द है उसका रूप नहीं । अब सगुणध्यान भी है देखिये :- उमा (पार्वती) के साथ है उनका गला नीले रंग का है और प्रशान्त है ।

(सत्यार्थप्रकाश-पृ-४०४) :- दयानन्दसरस्वती का कहना यह है कि परमेश्वर का अवतारग्रहण किसी हालत में युक्तिसंगत नहीं है ।

परिशीलन : परमेश्वर की अचिन्त्यशक्ति असीमित है, वहाँ असंभव का नाम कुछ भी नहीं । केनोपनिषद्में कहा गयाकि अग्नि भी एक तिनके को जला नहीं सका, वायुदेवता भी उसको हिला नहीं सका । यह दुनियाँ में नामुमकिन है । लेकिन सब कुछ संभव है क्यों कि परमात्मा सर्वव्यापक और

सर्वशक्तिमान् ।

श्री विष्णु के श्रीराम श्रीकृष्ण और नरसिंह आदि अवतार, श्रीरामतापिन्युपनिषद् - श्रीगोपालतापिन्युपनिषद् - श्रीनृसिंहतापिन्युपनिषद् - श्रीकृष्णोपनिषद् - श्रीमद्रामायण - श्रीमहाभारत इत्यादियों में बताये गये हैं । इसीलिए अवतारों के बारे में पता चलता है ।

प्रश्न : अगर परमात्मा सर्वव्यापक हैं तब सब विग्रहों में मूर्तियों में हैं ही । तब उनको कुछ ही चीजों में रहने की संभावना से पूजन करना ठीक नहीं। इस का विवरण या जवाब दयानन्दसरस्वती के सत्यार्थप्रकाश पृ ५०५ में इस तरह है :-

परमेश्वर सबजगह फैला है तो उन की एक जगह मानना और एक जगह नहीं मानना ठीक नहीं है - जैसै कि एक चक्रवर्ती को मानना चाहिए कि वह सारे देश के अधिपति हैं, लेकिन उनको एक झोपडी में बिठाकर उनको उसके अधीश्वर मानना जैसा है ।

परिशीलन : अर्चा करनेवालों को चाहिए कि परमात्मा के सर्वव्यापक अस्तित्व को न भूलें । सिर्फ पूजा की सुविधा केलिए प्रतिमा को रखना है । लेकिन यह नहीं समझना कि भगवान् वहीं उसी मूर्ति में हैं अन्यत्र नहीं । पूजा करते समय ''विश्वस्मै नमः विष्णवे नमः'' - कहते हैं । इन शब्दों का अर्थ क्या है ? भगवान् सब जगह व्यापक है'' । चूँकि पूजा करते समय इन शब्दों का उच्चारण अर्थसहित करना पड़ता है तब यह नहीं कहना चाहिए कि भगवान् किसी एक मूर्ति में ही हैं । विग्रहपूजन करनेवाले यह जरूर समझें कि भगवान् दूसरी जगह भी हैं ।

अब दयानन्दसरस्वती का **प्रश्न** :- आप भगवान् को सर्वव्यापक मानते हैं तो बगीचे में से फूल और पत्ते तोड़कर मूर्तियों के ऊपर क्यों डालते हैं ? चन्दन घिसकर उसका लेपन क्यों करते हैं ? (वही ग्रन्थ पृ-४०५)

जवाब : बोधायन महान्यासखण्ड में महादेव (शिवजी) का स्नान और पूजन कराने का विधान है । वैखानससूत्रों में विष्णुपूजा का विधान बताकर उसमें करने योग्य कुछ भावनाओं को बताया गया । ऐसे प्राचीन ग्रन्थों में सर्वव्यापक परमात्मा के प्रतीकरूपों में शिवलिङ्ग, सालग्राम, श्रीचक्रों का पूजाविधान सुचारुरूपसे दिखायी देता है । उसके अनुसार शिवलिङ्ग और सालग्राम आदियों का पूजन चला आ रहा है । केवल पत्थरों का ही पूजन है तो प्राणप्रतिष्ठा, देवध्यान, भगवन्नाम का उच्चारण आवाहन, उद्वासन इत्यादियों की आवश्यकता है ही नहीं । लेकिन कर तो रहे हैं । इसलिए पूजाविधान जो चल रहा है, वह जडपदार्थों का नहीं है - इतना समझना जरूरी है ।

प्रश्न : जबतक वेदमन्त्रों के द्वारा आवाहन नहीं तबतक देवता नहीं आती है, फिर विसर्जन करने से चली जाती है - उसके बलपर दयानन्दसरस्वती पूछते हैं कि देवता का आवाहन करने से वह पत्थर, चेतन क्यों नहीं है ?.... असलियत यह है कि परमात्मा का न आवाहन है न विसर्जन, क्यों कि वह सर्वव्यापी है (वही ग्रन्थ पृ-४०६) ।

परिशीलन : आवाहन करते समय भगवान के अस्तित्व का ध्यान करना, विसर्जन करते समय, उस भावना (ध्यान) का समाप्त होना स्वाभाविक है । जो सर्वव्यापी भगवान् है उसका आना जाना नहीं है । विसर्जन करने से सर्वव्यापी भगवान् कैसे चलेजाते हैं - यही श्रीदयानन्दसरस्वती का **प्रश्न** रहा ।

परिशीलन : आवाहन करते समय भावना यह है कि भगवान् उसमें है, विसर्जन करते समय भावना समाप्त होती है । सर्वव्यापी भगवान् को ही वहाँ ध्यान (भावना) करते हैं । इसलिए पूजा विफल नहीं होती है । भावना मनसे कर रहे हैं तो प्रतिमा जो है वह चेतन के रूप में परिणत होनी की सम्भावना नहीं है । भक्ति के साथ जो पूजाक्रम चलरहा है, उसका आलम्बन मात्र ही मूर्ति हो जाता है । चूँ कि देवता सर्वत्र व्यापक है उसको विग्रह में

आवाहित करना संभव होता है उसीग्रन्थ पृ-४०६ में श्रीदयानन्दसरस्वतीजी कहते हैं कि वेदों में परमेश्वर के आवाहन और विसर्जन के बारे में एकअक्षर भी नहीं है ।

परिशीलन : परमेश्वर का आवाहन करते समय इस मंत्र का विनियोग करते हैं :-

मंत्र. **आ त्वा वहन्तु हरयस्सचेतसः**
श्वेतैरश्वैः अश्वैस्सहकेतुमद्भिः
वाताजिरै रायाहि शर्वोम्

(कृष्णयजुर्वेद एकाग्निकाण्ड २प्र, १८ अनु)

इस की हरदत्तव्याख्या इस प्रकार है : हरयो हरितवर्णाः अश्वाः त्वे त्वामावहन्तु, सचेतसः अभिप्रायज्ञाः श्वेतैरश्वैस्सह केतुमद्भिः केतुः ध्वजः तद्युक्तैः वाताजिरैः अजगति क्षेपणयोः वातगतिभिः आयाहि किमर्थं ? मम हव्याय मदीयस्य हविषः उपभोगाय हे शर्व (हे शर्व, जो झंडावाले हैं सफेद रंग के मतलब समझनेवाले और वायु के बराबर गतिशील घोड़े आपको यहाँ लायेंगे और आप हमारे दिये हुए हविष को स्वीकारने केवास्ते पधारिए एसे ही गायत्री का आवाहन मंत्र भी तो है : आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसम्मितम् (गायत्रीदेवी वरप्रदा है गायत्र छन्दस की अधिदेवता है, नाशरहित है, वेदान्तप्रमाणों से निश्चित ब्रह्मबोध जो है, उसे देने के वास्ते आ जावें) उस के बाद विसर्जन मन्त्र भी है :

उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्धनि
ब्राह्मणेभ्यः अभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम्

(मेरुपर्वत के ऊपर ऊंचे शिखर पर गायत्रीदेवता विराजमान है । उपासकों की अनुमति लेकर आप अपनी मर्जीसे अपने उन्नत स्थानग्रहण करने केलिए जाइये) (तैत्तिरीयारण्यक १० प्र. २४, २६ अनुवाक) ।

ऋग्वेद में भी इन्द्र का आवाहन है :

आत्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये इन्द्र त्वा सूर चक्षसः ।

हे इन्द्र, आप कामनाओं को बरसते हैं । आपके घोडे सोमपान केलिए यहाँ लायेंगे । प्रकाशवान् ऋत्विग्लोग आपको प्रगट करेंगे । इसलिए ऐसा नहीं कहना है कि देवताका आवाहन और विसर्जन वेदों में नहीं है । श्रीदयानन्दसरस्वती कहते हैं कि परमेश्वर के बदले में और किसी पदार्थ को पूजनीय नहीं मानना चाहिए । उसका प्रमाण भी ईशावास्योपनिषद से दे रखे हैं :-

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते

ततो भूय इव ते ये संभूत्याग्ँ रताः ।

यहाँ दयानन्दसरस्वतीजी का व्याख्यान इसप्रकार है : 'असंभूति' माने अनुत्पन्न अनादिकारण प्रकृतिको ब्रह्म के बदले में उपासते हैं (ध्यान करते हैं) वे लोग अज्ञानरूपी की (प्राणियों को) कारणभूत पाञ्च महाभूतों को और मानव आदियों की ब्रह्म के बदले में उपासना करते हैं वे अंधेरे में गिरते हैं (यजु ४० अनु मं ९)

परिशीलन : श्रीदयानन्दसरस्वती अपनी मर्जीसे पूर्वोक्त मन्त्र का व्याख्यान कर चुके हैं । इस मन्त्र में इतना ही कहा गया कि केवल अनादि प्रकृति की उपासना और जो पैदा होता है उसकी उपासना - दोनों ही वर्जनीय हैं निन्दनीय हैं । यह बात ''ब्रह्म के बदले में'' मूलमन्त्रमें नहीं ।

उपासक जो हैं केवल प्रकृति या केवल कार्यरूपी चीजों की उपासना नहीं कर रहे हैं । मूर्तिको आधार बनाकर परमात्मा की ही उपासना करते हैं। प्राणप्रतिष्ठा और ध्यान वगैरह इसी बात को परिपुष्ट करते हैं । तैत्तरीयारण्यक में साफसाफ कहा गया कि विश्व में परमात्मा की उपासना किस तरह करनी चाहिए । देखिये :-

''यस्मै नम स्तच्छिरो मूर्धानं ब्रह्मोत्तरा हनुर्यज्ञोऽधरा विष्णुर् हृदयगं

संवत्सरः प्रजननम् अश्विनौ पूर्वपादावत्रिर्मध्यं मित्रावरुणावपरपादौ अग्निः पुच्छस्य प्रथमं काण्डं ततइन्द्रस्ततः प्रजापतिरभयं चतुर्थगँ् स वा एष दिव्यश्शाक्वरश्शिशुमारस्तगँ् ह य एवं वेदाप पुनः मृत्युं जयति जयति स्वर्गं लोकं नाध्वनि प्रमीयते नाग्नौ प्रमीयते नाप्सु प्रमीयते नानपत्यः प्रमीयते लघ्वान्नो भवति''

(जिनको सारे लोग प्रणाम करते हैं वह परब्रह्म शिशुमारचक्र का शिर, धर्म, शिर का ऊपरीभाग, चतुर्मुखब्रह्मा मुहँ का ऊपरी हिस्सा (तालु) यज्ञ, नीचे हिस्सा (तालु) विष्णु, दिल, साल पेशाब की इन्द्रिय, अश्विनीदेवता दोनों सामने पैर, अत्रिमुनि शरीर का मध्यभाग मित्रावरुण पिछले पैर, अग्नि, पूछका पहलाभाग, इन्द्र दूसराभाग, प्रजापति तीसराभाग, भय रहित ब्रह्म, चौथाभाग, - यह दिव्य और अत्यन्तशक्तिमान् शिशुमार है । इस का ध्यान करने से अकालमरण नहीं होता है । स्वर्गलोक पहुँचते हैं । रास्ते में मरना आग से मरजाना और निस्सन्तान होना नहीं होता है । ऐसी उपासना जो करता है उस को आसानी से भोजन मिल जाता है । (तैत्तिरीयासण्यक २ प्र १९ अ)

इसमें विश्व का वर्णन है जो विराटपुरुष का स्वरूप है । उस विश्वमें अनेकदवताओं का ध्यान कहा गया । इस से मालूम पडता है कि मूर्तिपूजा का जो खण्डन करते हैं, उनके वचन प्रामाणिक नहीं हैं । इससे समझमें आता है कि कई देवताओं की उपासना भी सम्प्रदाय में है । इस विश्वपुरुष का शिर जैसे अवयवों का ध्यान(मूर्तिध्यान) और उसका सत्फलभी यहाँ कहागया है। इसलिए यह बात जो है कि वेदमंत्रने मूर्तिजूजन को मना किया - यह बिलकुल असंगत है ।

९. वेद में मूर्तिपूजा निषिद्ध है
एक परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी ''न तस्य प्रतिमा अस्ति'' (यजु अ ३२ मं ३) - वाक्य का अर्थ इस प्रकार लिखते हैं कि परमात्मा जो सब जगह व्यापक है उस का न परिमाण है न तुलना है न मूर्ति है। यह सीधा मूर्तिपूजा निषेध करता है।

परिशीलन : स्वामीजी इस मंत्र में प्रतिमा और सादृश्य - दो अर्थों को मान सकते हैं। लेकिन मूर्ति (विग्रह) का अर्थ यहाँ लागू नहीं होगा। केनोपनिषद् के अनुसार परमात्मा ने मूर्ति (आकार) का धारण करके देवताओं के समक्ष दर्शन दिया - यह बात हो चुकी है। उन्होने जो मन्त्र प्रमाण के रूप में दिखाया वह पूरा इस प्रकार है :-

''न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः

हिरण्यगर्भइत्येष मामाहिगूंसीदित्येषा

यस्मान्न जात इत्येषः।'' - उस परमपुरुष की तुलना नहीं है। उनका नाम ही 'महद्यशः' (बहुत बडा यश है)

तीन ऋचाएँ जो हैं उनका यश गाती हैं वे इस प्रकार हैं :-

१) हिरण्यगर्भः

२) मा माहिगूँसीत्

३) यस्मान्न जातः

ऊपर मंत्र में शुक्लयजुर्वेद के २५ अ १०, ११, १२, १३ मंत्र अर्थात् ''हिरण्यगर्भः यः प्रणतः, यस्ये मे, य आत्मदा'' - बताये गये हैं। इन

में से एक मंत्र में हिरण्यगर्भ के भुजाओं का वर्णन है - देखिये :-

"यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रगूँ रसया सहुःहुः यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम" - कहते हैं कि (हिमालय आदि पहाड़ प्रजापति की महिमा है, नदी के साथ जुडा हुआ समुंदर भी उनकी महिमा है, पूरब आदि दिशाएँ भी उनकी ही महिमा है। उनकी भुजाएँ संसार की रक्षा करनेवाली हैं। हम ऐसे प्रजापतिदेव की परिचर्या हविष् के साथ कर रहे हैं)।

(ऋग्वेद १-३५-१०) हिरण्यहस्तः महागूँ इन्द्रो वज्रहस्तः (शुक्लयजुः २ अ १०) - ऐसे मन्त्रों से लगता है कि देव के हाथ हैं। इसलिए सृष्टिकाल में उन की मूर्ति का होना वेद के खिलाफ नहीं।

विग्रहाराधना का खण्डन करते हुए श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वमीजी केनापनिषद् के मन्त्रों को प्रस्तुत कर रहे हैं, उनमें से एक का परिशीलन करेंगेः-

मंन्त्र : यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते

इसका अर्थ स्वामीजी इस तरह बता रहे हैं :- "बोली से वह (परमात्मा) कहा नहीं जाता है उदाहरण केलिए "यह पानी है इसे लीजिये" इस तरह जो बोली से कहा नहीं जा सकता, जिसकी महिमा से जीभ जो है बोलने की क्षमता रखती है, उसी को आप परब्रह्म समझो और उपासना करो। उससे अलग जो कुछ है उसकी उपासना मत कर"।

परिशीलन : मंत्र में 'उपासते' नामक क्रिया है। यह वर्तमानकालिक क्रिया है इस का अर्थ है उपासना करता है। उपनिषद् आदि ग्रन्थ आदित्य आदि उपासनाओं को बता रहे हैं। उदा :- 'असावादित्यो ब्रह्म ' इत्यादि। वे उपासनाएँ चित्तशुद्धि केलिए कहीं गयी हैं।

इस वाक्य का अर्थ ऐसा कहना चाहिए कि जिसकी उपासना करते

हो वह ब्रह्म नहीं है ।

"दुनियाँ में हैं लेकिन ब्रह्म नहीं - लेकिन इसको ब्रह्म के रूप में उपासना कर रहे हैं" । यही मन्त्र का भाव प्रतीत होता है ।

"न उपासते" का अर्थ "उपासना मत कर" - ऐसा निषेधार्थ नहीं कहना चाहिए ।

इसलिए हम वादा करते हैं कि ये वाक्य, मूर्ति - उपासना का निषेध नहीं करते हैं । यह शब्द 'उपासते' जो है, वह ऐसे प्रतीकों की उपासना बता रहा है जो परमात्मा नहीं । स्वामीजी का वाक्य, "मूर्तिपूजा कर के कोई अभी तक ज्ञानी नहीं बने हैं" । (सत्यार्थप्रकाश ११ स-४११ पृ)

जवाब : त्यागराजस्वामी ने मूर्तिपूजन किया । उनके रचितकीर्तनों के द्वारा साबित होता है कि वे परमज्ञानी थे । श्रीरामकृष्णपरमहंस मूर्तिपूजा करते रहें । उनके सारे उपदेशवचन कहते हैं कि वे परमहंस (ज्ञानी) थे । एवं कई लोग हैं जो पहले मूर्तिपूजा करते थे और बाद में ज्ञानी बनगये ।

स्वमीजी का **खण्डन** इस तरह है जो हमारे लिए पूर्वपक्ष है :-

हमारा उत्तरपक्ष यह है कि मन जो है साकार वस्तु पर ही टिकता है, निराकार वस्तु पर नहीं । इसलिए मूर्तिपूजा बहुत ही आवश्यक है । इस के खिलाफ दयानन्दजी का खण्डन इसप्रकार है -

"साकार पदार्थ को जब मन ग्रहण करता है तब उसके एक एक अंग के प्रति घूमती हुई दिमाग एक अगंसे दूसरे अंग के प्रति दैड़ती है (सत्यार्थप्रकाश ११ स ४१० पृ) ।

परिशीलन : भले ही साकार पदार्थ के अवयवोंपर मंडराती है, दिमाग, फिरभी आकार को तो छोड़ती नहीं है ना इसीसे लगता है कि साकार पदार्थ में ही मन टिकता है - यह सारांश दयानन्दजी के वाक्यें से ही स्पष्ट हो रहा है ।

फिर यॉं निराकार के ऊपर मन के ठहरने के बारे में दयानन्दजी का वाक्य देखिये :-

''निराकार परमात्मा का ग्रहण करने केलिए मन जितना भी दौड़े सारी ताकत लगावे । फिर भी अन्त मिलेगा नहीं'' (स.प्र.पृ-४१)

अन्त ही नहीं आदि भी नहीं मिलेगा । न उस के आकार है न आदि न अन्त । उन के वाक्य से ही मालूमपड़ता है कि निराकार वस्तु मन को नहीं मिलेगा ।

स्वामीजी का वाक्य : चूँकि परमात्मा अवयवरहित है मन को चंचलता भी नहीं होती है । (वही ग्रन्थ)

परिशीलन : पहले सवाल यह है कि मन एक जगह टिकता है तो फिर सोचने की बात आती है कि वह चलता है कि नहीं ? मन को परमात्मा का आलम्बन है ही नहीं, वह और जगह ठहरेगा तो क्या होगा ?

स्वामीजी का वाक्य : परमात्मा के गुण कर्म और स्वभाव के बारे में विचार करते हुए मन आनन्दमग्न होकर ठहर जाता है । (वही ग्रन्थ-४११ पु)

परिशीलन : अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् तथारसंनित्यमगन्धवच्च यत् अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवम् (कठ ३ वल्ली १५ मं)

निर्विशेष ब्रह्म जो है वह अशब्द अस्पर्श अरूप अव्यय अरस नित्य अगन्धवत् अनादि अनन्त है - इस प्रकार जिस का वर्णन है उस के गुण, कर्म और स्वभाव कहाँ से आते हैं जिनका ख्याल करते हुए आनन्द पावें ?

जब गुण क्रिया और स्वभाव - इन को मानते हो तब, वेद से प्रतिपादित शरीर या आकार = मूर्ति को मानने में क्या दिक्कत है ? जिसका वर्णन हो 'अकाय' - शरीर के बिना रहता है वह निर्विशेष ब्रह्म है लेकिन सविशेष नहीं है । सविशेषब्रह्म का रूपधारण केनोपनिषद् (३ सं २ मं) में है।

कुछ लोग निराकार निर्गुण ब्रह्म की उपासना करते हैं ।

श्रीदयानन्दसरस्वतीजी सगुण निराकारपरमेश्वर की उपासना करते होंगे। कुछ लोग सगुण साकार ब्रह्म की सेवा करते हैं। सब लोग अपनी अपनी योग्यता के अनुसार उपासना करते हैं।

इस प्रकार सगुणसाकारोपासना जो मूर्तिपूजा है उसका अनादर नहीं होना चाहिए।

६. मूर्तिपूजा से संकट मोल लेना है
एक परिशीलन

करोडोंसे रूपये खर्च करके मन्दिरों का निर्माण करना बेकार है इस से लोग गरीब होते जा रहे हैं। (उसी ग्रन्थ में पृ ४१७)

परिशीलन : मूर्तिपूजावाले ही नहीं बल्कि निराकार परमेश्वर का ध्यान करने वाले भी कई मन्दिरों का निर्माण करते हैं -संसार के सारे धर्मों में हम देखते हैं। ईसाई लोगों के गिरजाधर, मुसल्मानों के मसजिद - हम देख रहे हैं। श्रीदयानन्दसरस्वती के आर्यसमाज के भवन हैं न। भक्त लोगों की अपनी साधना निभाने केलिए एक पवित्रस्थल जरूरी है। इसलिए इसको बहुत बडा खर्च नहीं मानना चाहिए।

आक्षेप : मन्दिरों में स्त्रियाँ और पुरुष एक जगह मिलते हैं इससे व्यभिचार फैलता है झगडे उत्पन्न होते हैं सांसर्गिक दोष (हवा से फैलनेवाले रोग) पैदा होते हैं।

जवाब : दुराचारवाले स्त्रीपुरुष जहाँ कहीं मिलें, वहाँ जरूर इसतह की तकलीफें होती हैं। ऐसे लोगों केलिए अलग स्थान है हीं नहीं। जहाँ मूर्ति का पूजन नहीं होता वहाँ भी आप जो कहते हैं - ऐसे दोष जरूर होंगे जब आदमी का स्वभाव और बरताव ठीक नहीं। उस में मूर्तिपूजा केलिए मकान काफी हैं। "देहो देवालयः प्रोक्तः" - श्लोक के अनुसार दिल के अंदर ही मूर्तिपूजन कर सकते हैं। इसलिए यह आक्षेप टिक नहीं सकता।

आक्षेप : ज्यादातर लोग मन्दिरों में जाना ही धर्म अर्थ काम और मोक्ष - चार पुरुषार्थों का साधन समझकर अपना सारा मनुष्यजन्म बेकार गवाते हैं। जवाब : मामूली तौर से आम तौर लोगों का फल मरने के बाद ही

मिलेगा । सिर्फि योगसाधना में जो सिद्ध हुए हैं - उनकी बात अलग है । कोई भी हो इस बात पर भरोसा करके ही साधना में लग जाना है ।

नास्तिक लोग निराकार सगुणोपासना को भी व्यर्थ मानते हैं । वेदवाक्यों के अनुसार जो उपासनाविधान महर्षिलोग दे रखे हैं तहे दिलसे उसका आचरण करके नतीजा जो है उसे भगवान् के ऊपर डालना है । दुनियाँ में सारे धर्म-कलह इसलिए ऊपर उठे हैं क्यों कि हर एक अपनी अपनी आराधना को ही सही मानता है - इस का फल यह रहा कि लाखों से लोग मर मिटे हैं। इसलिए कहते हैं कि श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामी खुद निराकार सगुणपरमेश्वर की उपासना कर सकते हैं, लेकिन यह ठीक नहीं है कि दूसरों का साकार सगुणमूर्तिपूजन गलत रास्तेपर समझते हैं ।

अक्षेप : परमेश्वर के अनेक प्रकार के आकार, नाम और चरित्र आदि पढते हुए तरह तरह की मूर्तियों का पूजन करते हुए हिन्दू लोग एकता को खो बैठे हैं । एक के खिलाफ दूसरा मतप्रवक्ता और मतप्रवर्तक आचार्यश्रेष्ठ बनकर भारतदेश की प्रजाओं का सत्यानाश कर रहे हैं ।

जवाब : यह सोचने की बात है । लेकिन जो ईसाईधर्मवाले हैं और मुसल्मान हैं उन में भी भिन्न भिन्न धार्मिक विश्वास और उपासना की विधियाँ हैं । केथलिकस् और प्रोटेस्टेंटस् के बीच में दोस्ती नहीं है । सुन्नी और षिया लोगों के बीचमें फरक है । इसलिए यह नहीं कह सकते हैं कि निराकार भगवान की उपासना करनेवालों की एकता कायम रही है ।

मत के प्रचारक लोग तत्त्व या यथार्थता को ठीक समझकर समन्वय के साथ प्रबोध करते हुए कलहनिवारण कर सकते हैं । व्यासजीने ब्रह्मसूत्ररचना के द्वारा सारे उपनिषद् वाक्यों का परबप्रह्म को ही प्रतिपादित करने का समन्वय दिखाया ।

श्रीकृष्णभगवान् गीतामें सांख्य, योग, कर्म, भक्ति, ज्ञान - ऐसे शब्दों

के विशिष्टार्थ बताकर उनके बीचमें समन्वय स्थापित करते हैं ।

श्रीशंकराचार्य, षण्मतस्थापनाचार्य होकर भारतदेशमें जितने भी आस्तिकमत हैं उनका समन्वय कर चुके हैं ।

आधुनिककाल में श्रीरामकृष्णपरमहंस - श्रीषिरिडीशायिबाबा - श्रीसत्यसायिबाबा - महात्मागान्धी आदि महापुरुषों ने इसी समन्वयमार्ग को प्रशस्त किया । इसीलिए हमारे भारतदेश में मतकलह बहुत कम हैं ।

एक ही देव को पूजनेवाले माननेवाले जितने भी दूसरे धर्मवाले दुनियाँ में हैं उनके बीच में जिहाद और क्रूसेड नाम पर युद्ध चल रहे हैं ।

आक्षेप : विग्रहों पर भरोसा करके भक्त लोग, शत्रुओं को जीतने केलिए काफी मेहनत के बिना आराम से बैठते हैं । इस से क्या होता है अपने राज्य की आजादी को खो बैठते हैं और धनदौलत और सुख शान्ति सब दुश्मनों के हाथ में चला जाता है । तब भारत के लोग पराधीन होकर घोडे जैसे गधे जैसे दुसरों के वश में हो जाते हैं, तरह तरह के दुःखों का उपभोग करते हैं ।

परिशीलन : यह बात निराकार उपासक और साकार उपासक - दोनों के बराबर है । खासबात यह है कि भगवदाराधना से हर एक व्यक्ति शक्तिमान् बनें । तब वे लोग विजय प्राप्त करते हैं । उस तरह शक्ति को पाने के बिना जो भगवान् के ऊपर भरोसा करके बैठते हैं और आलसी हैं प्रयत्न नहीं करते, वे बिलकुल अविवेकी हैं । ऐसे लोग निराकार उपासक या मूर्तिपूजक होते हैं दोनों बराबर हैं और उनको अपमानित होना ही पड़ेगा ।

प्रश्न : दयानन्दस्वामीजी कहतैं कि आप के बैठने की जगह पर आपको उठाकर एक पत्थर रखेंगे नहीं तो आप के नाम के अक्षर उस पत्थर पर लिखादेंगे तो आपको गुस्सा आता है कि नहीं ? इसीप्रकार परमेश्वर की उपासना का स्थान दिल में है उनके नाम भी वहीं होना है, उसके बदले में पाषाणों की

मूर्तियों की जो स्थापना करते हैं, उनका सर्वनाश परमेश्वर जरूर करेंगे ।

जवाब : परमेश्वर कभी भी ऐसे लोगें का विनाश नहीं करेंगे । कुछ लोग वेदमन्त्र पढेंगे कुछलोग 'अल्लाह' नाम का जाप करेंगे कुछ 'येहोवा' का स्मरण करेंगे बौद्धलोग शून्य के रूप में उनका ध्यान करेंगे फिरभी परमेश्वर किसी का नुकसान नहीं पहूँचाते हैं । इस का उदहरण एक नहीं सबलोग समझते हैं कि वे परमेश्वर अपनी रक्षा कर रहे हैं । वेदवेदान्त और ऋषिमुनिलोग जिसमूर्ति का ध्यान बताते हैं उनका ध्यान करने से क्यों नाश करेगा ?

आक्षेप : लोग पागल होकर मन्दिर और गोपुर देखने केलिए देशदेशान्तर घूमते फिरते हैं, वे लोग पागल हैं नहीं तो क्यों तकलीफ उठाते हैं ? घरमें धर्माचरण का और इहलोक परलोक संबन्धी कार्यो को इस्तीफा देते हैं । और चोरों के चंगुल में आते हैं और संकटग्रस्त हो जाते हैं । ऐसे ही ठग उनको लूट लेते हैं - इस तरह दयान्दसरस्वती तीर्थ और क्षेत्रों में यात्रा करने से जितने नुकसान और तकलीफ हैं सब बता चुके हैं ।

जवाब : एक सूक्ति है कि "देशाटनं पण्डित मित्रता च" अर्थात् देशाटन से पण्डितों की मैत्री से ज्ञानवृद्धि होती है । पद्मभूषण रहुल सांकृत्यायन ने देशसंचार के प्रयोजनों के बारे में एक ग्रन्थ लिखा है देशसंचार से जातीयसमैक्यभावना और उस से देशभक्ति आदि कई प्रयोजन हैं । इसीलिए विदेशों में विहारयात्रा के नामपर देशाटन को प्रोत्साहन देते हैं । पर्यटक केन्द्रों को बढावा देते हैं । विद्यार्थियों में विज्ञानयात्राएँ और बड़े लोगों में विहारयात्राएँ भी आजकल प्रचार में हैं । पुराने लोग तीर्थाटन करते थे । इस से भारत के नदियों के बारे में क्षेत्रों के बारे में देश के प्रति प्यार पनपता रहा । आजकल नदियों में श्रद्धा कम होती जा रही है । गंदा पानी नदियों में मिलजाता है और हमलोग पीने का पानी खरीदते हैं ।

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

फिर संकट और तकलीफ तो हर एक जगह होते रहते हैं । हर एक काम में गुण और दोष जरूर होते हैं । दोषों को कम करके गुणों को बढावा देना है । इस प्रकार मूर्तिपूजा के वास्ते तीर्थ और क्षेत्रों की यात्रा करना गुण ही है दोष नहीं ।

आक्षेप : पूजारी दुष्ट हैं । लोग उनको खूब पैसा देते रहते हैं । वे लोग उस पैसे को, वेश्यागमन, मदिरापान, द्यूतक्रीडा आदियों में खर्च करते हैं। इसलिए जो दाता हैं उन को पुण्य के बदलेमें पाप लगेगा । सुख नहीं मिलेगा बल्कि नुकसान ही नुकसान ।

परिशीलन : *यह आक्षेप बहुत ही विचित्र है । पूजारी को चाहिए* कि वह ब्राह्मणधर्म ठीक से समझे पूजाविधान ढंग से सीखे और अच्छा चरित्रवान् रहें । अगर वह दुष्ट हो तब उसको वहाँ से हटाना चाहिए ऐसी पदवियाँ हैं जिनको घूसदेकर या सिफारिस कराके पास करते हैं । शारीरकबल अर्थबल और अंगबल जिस पदवी (नौकरी) को पाने में सक्षम हैं वे और हैं । पूजारी की पदवी ऐसी नहीं है । अगर मान लीजिये ऐसे दुष्ट पूजारी कहीं रहें जिसको हटाना नामुमकिन है, तब लोग जो हैं वहाँ उस मन्दिर में जायेंगे ही नहीं । सारे लोग विवेकविहीन नहीं होते । पूजारी को ज्यादा पैसा मिलने से वह दुष्ट बनेगा - इसलिए मूर्तिपूजा को बंद करना चाहिए क्या ? यह तो कारण हो ही नहीं सकता ।

आक्षेप : माँ बाप जैसे माननीयों का तिरस्कार करते हुए पत्थर से बनी हुई मूर्तियों को पूजना ठीक नहीं । इससे आदमी गुरुजनों के प्रति कृतघ्न बन जाता है ।

जवाब : *वेद का* अनुशासन है मा बाप की पूजा करना । पूजा करने का अच्छा स्वभाव जिसका हो वह मा बाप की सेवा भी करेगा और मन्दिर में भगवान की मूर्ति का भी पूजन करेगा दयानन्दसरस्वती जैसे लोगों को

देखनाचाहिए कि मन्दिर में विग्रहपूजा के साथ घर में मा बाप की भी सेवा करनी चाहिए। आखिर में बात यह है कि मूर्तिपूजा, पूजनीय लोगों को तिरस्कृत करने की प्रेरणा नहीं देती है ।

आक्षेप : जब मन्दिर में चोरी होती है या पत्थर की मूर्तियों को तोड़ देते हैं तब भक्त लोग जोरसे रो पड़ते हैं । यह श्रीदयानन्दसरस्वती के विचार से, गलत है ।

जवाब : अपनी चीजों की चोरी होती है और कोई बिगाड़ता है तब दुखी होना स्वाभाविक है । लेकिन इससे हम जरूर चीजों का सम्पादन करने से चूँकते नहीं । मामूली तौर से संसार के जंझट में फसे रहते हैं मनको चैन नहीं मिलता है । इसलिए भगवान् को स्मरणपथ में रखने केलिए विग्रहों को पाकर उनको बहुत ख्याल से बचाते हैं । उसको कहीं लोप होने से नये विग्रहों का संपादन करते हैं । विग्रह जो हैं हमारी साधना के साधन हैं । वे ही सब कुछ नहीं हैं । इसलिए कोई संकट नहीं है ।

दोषारोपण : श्रीदयानन्दसरस्वती कहते हैं कि पूजारी परायी स्त्रियों के साथ मिलते जुलते हैं और पूजारी औरत है तो पराये आदमियों के साथ संपर्क रखतीहैं । इस की वजह से स्त्री और पुरुष दोनों का आनन्द नष्ट होता है । यह भी बहुत बड़ा नुकसान है जो मन्दिरों में पाया जाता है ।

जवाब : पूजारी अगर बहुत बलवान् हो किसी सेना के अधिकारी हो, व्यभिचारी हो दुष्ट हो तब उस तरह की तकलीफ हो सकती है । देश के किसी कोने में किसी उच्चपदवी के अधिकारी मन्दिर में पूजारी नहीं बनता है । अभी तक ऐसे उदाहरण हमारी नजर में नहीं आये हैं । मामूली तौर से गरीब लोग ही पूजारी बन रहे हैं ।आजकल सुन रहे हैं और देख रहे हैं कई मन्दिर में पूजारी पैसा ज्यादा नहीं मिलने से अपनी नौकरी को इस्तीफा देकर चले जा रहे हैं । मन्दिरों में पूजा करनेवाले कम होते जा रहे हैं । अगर कहीं पूजारी

दुराचारी हो दुष्ट हो, वहाँ के स्थानिक लोग चुपचाप नहीं रहते । इसलिए बेफिकर मूर्तिपूजन कर सकते हैं ।

आरोप : मन्दिर निर्वहण करते समय जो कार्याधिकारी हैं और पूजारी जो हैं उन दोनों में परस्पर विरोध पैदा होगा एक से दूसरा भ्रष्ट होता है । मालिक और नौकर जैसा व्यवहार जहाँ है वहाँ संकट होगा ही ।

जवाब : मालिक हुकुम चलायेगा, तभी पूजाकार्यक्रम छोडकर नहीं । इसलिए हुकुम नहीं मानने का और पूजा से हट जाने का कोई रिश्ता नहीं । बहुत ही कम ऐसे अर्चक (पूजारी) हैं जो मालिक की आज्ञा की अपेक्षा पूजाको ही प्रधान समझते हैं । मान लीजिये कभी ऐसे लोग होंगे तो वे, अपने आप एक तरीका अपनाएँगे जिस से काम में अडचन नहीं होंगे ।

आक्षेप : निर्जीव जडपदार्थ का ध्यान करते करते भक्तलोगों की दिमाग भी जडत्व को प्राप्त करेगी । ध्योयाकार का जडत्व धर्म, अन्तःकरण के द्वारा आत्मा को प्राप्त करेगा । श्रीदयानन्दसरस्वती के ख्याल से यह जडत्वप्राप्ति और एक दोष है ।

जवाब : मैं चालीस सालों से पंचायतनपूजा करता आ रहा हूँ । मुझे कोई जडता का स्पर्श भी नहीं है । पहले से मेरी दिमाग प्रखर दिखायी दे रही है । श्रीरामप्रभु के सेवक श्रीत्यागराजस्वामी, श्रीरामदास कालिकादेवी के पूजारी श्रीरामकृष्णपरमहंस शिवलिङ्ग और श्रीचक्र की अर्चना किये हु हैं श्रीशंकराचार्य आदि महानूपुरुष जड नहीं हुए । मूर्तिपूजा जो करते हैं वे भगवान् का ही ध्यान करते हैं । पूजा का आधार मात्र पत्थर है । कोई भी नहीं सोचता है कि शिला की पूजा करता हूँ । इसलिए दयानन्दजी का आरोप निराधार है ।

प्रश्न : इस सृष्टि में सुन्दर फूलों की रचना इसलिए हुई कि उनकी खुशबू हवा में पानी में फैलजावें ताकि उन में जो गुर्गन्ध है वह हट जावे, और

लोगों का स्वास्थ्य बढावें । पेडों के साथ कबतक फूल ऐसे ही सुगन्ध फैलाते हुए रहेंगे - नहीं कह सकते हैं न । इस हालत में पूजारी फलों को बीच में ही तोड़ देते हैं । फिर वे फूल कीचड़ में छोडे जाते हैं वहाँ खुशबू के बदले में बदबू को फैलाते हैं । इसलिए दयानन्दसरस्वती पूछते हैं कि क्या भगवान् इस सृष्टि में पत्थरों की सजावट केलिए फूलों की रचना करते हैं ?

जवाब : भले ही फूलों से पत्थरों की पूजा नहीं करेंगे फिरभी स्त्रियाँ फूलों से अपने बालों को सजाती हैं । भोगी पुरुष फूलमालाओं को गले में पहनते हैं व्यापारी लोग फूलों के द्वारा ही सुगन्धी तैलों का निर्माण कराते हैं, और खूब पैसा कमाते हैं श्रीदयानन्दसरस्वतीजी जब उन को रोक नहीं सकते हैं तब सिर्फ पूजारीयों को क्यों और कैसे रोक सकते हैं ?

जो कोई भी चीज हो उस की उपयोगिता जब बढती है तभी उसका उत्पादन ज्यादा होता है । उस चीज की बिक्री भी ज्यादा होती है । तभी जो उत्पादन करता है और जो बेचता है दोनों का धन्धा बढ सकता है । जब फूलों को मन्दिरों में ज्यादा इस्तेमाल करते हैं उस केलिए बगीचे बढ जाते हैं। फूलों की बिक्री बढती है । फूलों को जब इस्तेमाल कम करते हैं, तब शहरों में जहाँ उनका (बगीचों का) निर्माण करने की जगह बहुत कम होता है ।

तुरंत पैसा मिलने का प्रयोजन जहाँ नहीं दीखता है वहाँ गाँवों में, बगीचे उगाने का काम कोई उठाता ही नहीं । इसलिए यह कहना पडता है कि मन्दिरों में पूजा केलिए फूलों को लाना पड़ता है उसकेलिए बगीचों को तैयार करने केलिए कुछ लोगों की जीविका भी मिलती है । फूलों के खुशबू से वातावरण भी कलुषित नहीं होता है ।

जहाँ तक निर्माल्य का सवाल है पेड़से फूल नीचे गिरेंगे ही । जब गिरते हैं खाद बनकर जमीन की ताकत को बढाते हैं । इसलिए यही बेहतर होगा कि निर्माल्य से या किसी गिरे हुए फूलों से जबतक बदबू आती है

तबतक रुकने के बिना सफाई का ध्यान रखना जरूरी है । लेकिन फूलों को इस्तेमाल करना नहीं । मना करना भी ठीक नहीं ।

फूलों के खिलने के बाद ही पूजा केलिए लाते हैं इसलिए सुगन्ध फैल ही जाता है, इसी कारण से देवतापूजन का निराकरण समुचित नहीं है ।

फूलों को देवताओं केलिए समर्पित करने से देवताएँ प्रसन्न हो जाती हैं । देखिये :-

श्लो. देवताभ्यस्सुमनसो यो ददाति नरश्शुचिः
तस्य तुष्यन्ति वै देवाः तुष्टाः पुष्टिं ददत्यपि

पवित्र होकर मनुष्यमात्र देवताओं केलिए फूल समर्पित करें ताकि वे संतुष्ट होकर पुष्टिप्रदान करती हैं (म.भा अनु. प ९८-२१) इसलिए पूजा करना अच्छी बात है प्रयोजनकारी है ।

दोषारोप : पूजा के साथ चंदन अक्षत अभिषेक के पानी के साथ बह जाते हैं, वे सब एक कुंड में रह जाते हैं । बहुत देर तक रहने से बिगड जाते हैं और बदबू फैलजाती है । उन के साथ कई छोटे कीड़ मकोडे उस गन्दे पानी में रह जाते हैं सड़ जाते हैं मर जाते हैं, यह ठीक बात नहीं है ।

जवाब : अभिषेक जिस पानी से किया जाता है उसे भेजने केलिए ठीक से नाली को रखना है । जो घनपदार्थ है वह धूपमें सूखजायगा तो अच्छा खाद बनेगा । इस प्रकार सफाई का ख्याल करना जरूरी है यह नहीं है कि मूर्तिपूजा ही गलत है ।

स्वामीजी का वाक्य : श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामी ''पंचायतनपूजा'' का अर्थ लगाते हैं कि माता पिता आचार्य, अतिथियों का सेवन । महिला अपने पति, और पतिदेव अपनी स्त्री का आदर करना (उसीग्रन्थ में ४१४, ४१५ पु) इसके प्रमाण के रूपमें उन्होने वेदवाक्यों को और मनुस्मृतिवाक्यों को दर्शाया ।

परिशीलन : इनके दिये हुए उदाहरणों में लिखा हुआ है कि ''उपचर्यःस्त्रियासाध्व्या सततं देववत् पतिः'' पतिव्रतास्त्री को हमेशा अपने पतिदेव की सेवा देव (भगवान) की पूजा की तरह करनी चाहिए ।

अगर देव की परिचर्या करना नहीं है तो **''देव की तरह''** - यह लागू कैसे हो सकता है ?

इस में शक नहीं है कि ऊपर बताये हुए मातापिता आदियें की सेवा करनी चाहिए । लेकिन पंचायतन शब्द का अर्थ, उस प्रकार कहा है क्या ? नहीं । पंचायतनपूजा का अर्थ उसतरह लगाना कैसे ठीक हेगा ? भारतीयसाहित्य में है ही नहीं ।

स्वामीजी के प्रश्न और उत्तर : एक सवाल उठता है कि स्त्रीरूप को दर्शनमात्र से प्रतिमा में पुरुषरूप को दर्शनमात्र से दिलमें कामविकार जैसे पैदा होता है उसी प्रकार वीतराग और शान्तमूर्तियों को देखने से शान्ति और वैराग्य क्यों उत्पन्न नहीं होते ? - इस प्रश्न का उत्तर स्वामीजी खुद दे रहे हैं कि विग्रह का धर्म जो जडत्व है वह आत्मा में आजाता है तब आदमी की सोचने की ताकत घट जाती है ।

परिशीलन : विग्रह (मूर्ति) को देखने से आदमी की सोचने की क्षमता अगर घट जाती है तो इन के सत्यार्थप्रकाश में इन के छायाचित्र को क्यों प्रकाशित किया गया ? वह तो जड़ है ही । इन के छायाचित्र को देखना ठीक है तो भगवान् के प्रतीक के रूप में उनकी प्रतिमा को आदर दिखाना गलत कैसे ?

विग्रह के दर्शनमात्र से मनुष्य की सोचने की ताकत घट जाना सही बात हो तो तिरुमल के ऊपर बालाजी के दर्शन केलिए कई घण्टे लागातार खडे रहते हैं बहुत पैसा खर्च करते हैं और फिर से फिर से बालाजी के दर्शन केलिए जाते ही रहते हैं ऐसा क्यों हो रहा है ?

हर एक साल कई बार उन के दर्शन के वास्ते जानेवाले दर्शन करनेवाले बहुत लोग हैं। इसीप्रकार काशी बदरी रामेश्वरम् इत्यादि क्षेत्रों को देखनेवाले भी हैं। उन में विग्रहदर्शन से सोचने की ताकत घट रही है क्या? वे लोग, विग्रहदर्शनमात्र से सोचने की ताकत घटने की बात कभी कहते ही नहीं। दर्शन करके आने के बाद वे लोग खुश नजर आरहे हैं। आजकल के लोग विनोदयात्रामें अजंता एल्लोरा आदि जगहों पर शिल्पों को चित्रों को देखने जाते हैं। वे सब उन चित्रों को भगवान् के प्रतीक के रूप में नहीं देखते हैं, बल्कि जडवस्तुओं के रूप में ही देखते हैं उन की खूबसूरत देखते हुए आनन्दित हो जाते हैं। अगर उन की बुद्धि में जड़ता आयी तो किसी की नज़र में नहीं आती क्या ? इसलिए यह आरोप बिलकुल निराधार है।

७. ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका में मूर्तिपूजा खण्डित है

परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वती ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में मूर्तिउपासना का खण्डन करते हुए ''न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः'' - इस मन्त्र को उदाहरण के रूप में लिखते हैं कि ''पूर्णस्य पुरुषस्याजन्यस्य निराकारस्य परमेश्वरस्य महद्यशः - यस्याज्ञापालनाख्यं महत् कीर्तिकरं धर्म्यं सत्यभाषणादि कर्तुमर्हं कर्माचरणम् नाम स्मरणमस्ति'' अर्थात् (पूर्ण पुरुष, अज, निराकार, जो परमेश्वर हैं उनका आज्ञापालन बहुत ही कीर्तिकारक है धर्म है उन का नामस्मरण आदि करने के योग्य कर्माचरण है) ।

नैव तस्य प्रतिमा अर्थात् प्रतिनिधिः प्रतिकृतिः प्रतिमानं तोलनसाधनम्, परिमाणम् मूर्त्यादिकल्पनं किञ्चिदप्यस्ति ।

(उन की कोई तुलना करने का साधन, प्रतिनिधि प्रतिकृति, प्रतिमान, मूर्ति की कल्पना बिलकुल नहीं (पु-३१५ भाष्यभूमिका)

परिशीलन : 'महद्यशः' का अर्थ महान् कीर्ति है । स्वामीजी के भाष्य में लिखा हुआ है कि भगवान् की आज्ञा का पालन कीर्तिप्रद है धर्मसमेत है सत्यभाषण आदि कर्माचरण वही है ।

नाम=नाम स्वामीजी ने इस का अर्थ लगाया कि नामस्मरण । स्वामीजी कई पदों को कहीं से लाकर जोड़कर अपना मनमाना अर्थ कहते हैं ।

इसी तरह 'प्रतिमा' शब्द का अर्थ मुख्य के बराबर, प्रतिकृति=तुलना, प्रतिमान=बिम्ब, तोलनसाधनम्=तौलने का साधन, परिमाण, और मूर्त्यादिकल्पना- ये बातों अलग अलग अर्थों में हैं । इन में से वेद बोधितशब्द का अर्थ ठीक से लगाने में स्वामीजी असफल रहें ।

वेद में दूसरी जगह 'प्रतिमा' शब्द मिलते हैं। वहाँ श्रीस्वामीजी खुद कहते हैं कि प्रतिमाशब्द का अर्थ मूर्ति नहीं है। नैव प्रतिमार्थेन मूर्तयो गृह्यन्ते कथं तर्हि परिमाणार्था गृह्यन्ते'' । - यहाँ प्रतिमाशब्द से 'मूर्ति' को नहीं समझना है। लेकिन परिमाण का अर्थ ग्रहण कर सकते हैं। यहाँ प्रतिमाशब्द का अर्थ 'मूर्ति' नहीं तो 'न तस्य प्रतिमा अस्ति' जगह पर 'मूर्ति' का अर्थ क्यों मानेंगे ? ''संवत्सरस्य प्रतिमां यां त्वां रात्रि उपास्महे'' - इस मंत्र में श्रीस्वामीजी प्रतिमाशब्द का अर्थ 'परिमाण' लगा रहे हैं। यहाँ प्रतिमाशब्द का अर्थ 'मूर्ति' नहीं है तो ''न तस्य प्रतिमा अस्ति''→यहाँ क्यों होना है ?

इसी प्रकार शतपथब्राह्मण में -

मुहूर्तानां प्रतिमा ता दश च सहस्राण्यष्टौ च शतानि च भवन्त्येतावन्तो हि संवत्सरस्य मुहूर्ताः साल मे ३६० रात हैं, इन से साल की गिनती होती है। इसलिए इन की प्रतिमा संज्ञा ठीक ही है। (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका - ३१६ पृ) इस तरह स्वामीजी जो हैं वेद में प्रतिमाशब्द का अर्थ ''विग्रह'' नहीं मानते हैं। तब केवल एकजगह **''न तस्य प्रतिमा''** - पर मूर्ति का अर्थ क्यों लगाते हैं ? इस जगह पर प्रतिमाशब्द के कई अर्थ लगाकर उनमें मूर्ति का अर्थ भी लगाकर स्वमीजी ने कहा कि यहाँ वेद जो है मूर्तिपूजानिषेध करता है। यह कहाँ तक उचित है ? कहीँ भी वेद में 'प्रतिमा' का मूर्ति के अर्थ में प्रयोग को स्वामीजी दिखा सकते हैं तो, यहाँ पर भी उसी अर्थ को लगाने से हमको मानना पड़ेगा। लेकिन ऐसा नहीं किया।

८. मनुस्मृति में मूर्तिपूजा और मन्दिर निर्माण

मनुस्मृति में कई जगहों पर मन्दिर और मन्दिरों में अर्चना के बारे में प्रसङ्ग आये हैं। उनमें से सात ही यहाँ दे रहे हैं :-

प्रतिमानां च भेदकः	→	(मूर्तियों को तोड़नेवाला)
दैवतान्यभिगच्छेत्तु	→	(देवताओं के सामने जाना है)
देवताभ्यर्चनं चैव	→	(देवताओं की पूजा भी)
देवतायतनानि च	→	(देवताओं के मन्दिर)
देवतानांछायोल्लंघननिषेधः	→	(देवतामूर्तियों की परछाई को लांघने का निषेध है)
प्रदक्षिणानि कुर्वीत देवब्राह्मणसन्निधौ	→	(देवब्राह्मणसन्निधि में प्रदक्षिण करना चाहिए)
देवतागारभेदकान्	→	(मन्दिरों को तोडनेवालों को)

इन प्रसङ्गों को दयानन्दजी स्वयं दे चुके हैं। लेकिन उपरोक्त श्लोक मनुस्मृतिमें हैं कहाँ ? - स्वामीजी नहीं बताते हैं। लेकिन 'प्रतिमा' शब्द के अर्थ जो है ''रत्ती, भटाका, पाव्, सेर, पसेरी इत्यादि तौलने के साधन'' बताते हैं। ''अत्र प्रतिमाशब्देन रक्तिका माष सोटकादीनि तोलनसाधनानि गृह्यन्ते'' । इस का हिन्दी अनुवाद, ''प्रतिमाशब्द करके रत्ती, भटाका, पाऊ, सेर, और पसेरी आदि तोल के साधनों का ग्रहण किया है (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ३१६, ३१८ पृ) मनुस्मृति में वाक्य इस प्रकार है :- ''तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात् सुलक्षितम्'' (राजा को चाहिए कि तौलने के छोटे पत्थर धान आदि तौलने केलिए सुरक्षित करना चाहिए। हर छे महीने के बाद उनको भी जांचना चाहिए) मनुस्मृति में जो 'प्रतिमान'शब्द है उसका अर्थ 'प्रतिमा'शब्द को लगाया है।

परिशीलन : इस में, 'प्रतिमानम्' - प्र. वि. ए. व. 'प्रतिमानाम्' - प्रतिमाशब्द की षष्ठी विभक्ति बहुवचनरूप है। प्रतिमाशब्द का अर्थ प्रतिमानम् (विग्रह=मूर्ति) लगाना ठीक नहीं। प्रकरण का बल उस अर्थ को परिपुष्ट नहीं कर रहा है। मनुस्मृति में श्लोक इस प्रकार है जिसका एक पाद ''प्रतिमानां च भेदकः'' है।

श्लो. संक्रमध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकः
प्रतिकुर्याच्च तत्सर्वं पंच दद्याच्छतानि च

पानी में तैरने के खम्भे, पताकास्तम्भ, और मूर्तियों को जो तोड़ते हैं उन को पांच सौ रूपये जुर्माना डालना चाहिए और जो बिगड़े हैं उनकी जगह नये खम्भे और नये विग्रहों को स्थापित करना पड़ेगा)

यहाँ तौलने के पत्थर को तौलने के बर्तन को भी जो तोड़ते हैं उनके ऊपर पांच सौ रूपयों का दण्ड डालने का अर्थ उचित नहीं है।

प्रतिमा है तो शिल्पी ने अथक परिशम के साथ बनाया। कई लोगों की माननीयमूर्ति है इसलिए उसे तोड़ने की सजा पांच सौ रूपये होना स्वाभाविक है। लेकिन तौलने के पत्थर को तोडने का अर्थ नहीं है उसी प्रकार प्रतिमा शब्द का अर्थ प्रतिमान (मूर्ति) लगाना भी ठीक नहीं। उपरोक्त मनुस्मृति प्रयोगों में दैवत और देवायतन माने स्वामीजी ''विद्वान् पुरुष और उनके मकान'' - अर्थ लगाते हैं।

''देव एव देवतास्तेषामिमानि स्थानानि दैवतानि देवायतनानि च सन्तीति बोध्यम्। (ऋग्वेदादिभाष्यभुमिका ३१७ पृ)

परिशीलन : संस्कृतभाषा में किसी निघण्टु में कहीं भी दैवत और देवायतनशब्दों का अर्थ विद्वान और विव्दानों के मकान के अर्थ में हैं क्या ? श्रीदयानन्दसरस्वती के अलावा और कोई दूसरा इस अर्थ को नहीं बताते हैं। देवताओं का पूजन किस अर्थ में है देखिये :-

श्लो. मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमंजनम्
पूर्वाह्न एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम्

(मनु ४ अ-१५२ श्लो.)

मलविसर्जन, अलंकरण, स्नान, दातून करना, और देवतापूजा पूर्वाह्न (बारह बजे के अंदर) ही करना है - इस श्लोक में देवातापूजा माने देवताओं की पूजा है न कि विद्वानों की । पूर्वाह्न में करने योग्यपूजाओं में विद्वज्जनों की पूजा कहाँ है ? देवतापूजा पूर्वाह्न भाग में करने का विधिविधान है ही । और देखिये :-

श्लो. दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्मिकांश्चा द्विजोत्तमान्
ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु

(त्योहार के दिनों में देवताओं के पास उत्तम ब्रह्मणों के पास राजा के पास और गुरुजनें के पास अपनी रक्षा केलिए जाना पड़ता है ।) इस श्लोक में देवताओं को और ब्रह्मणोंत्तमों को मुख्यदिनें में अलग से पूजा करने का विधान बताया गया । (प्रजारक्षण केलिए राजा के पास जाना ही पड़ेगा इसलिए व्याख्यान में ईश्वर शब्द का अर्थ 'राजा' बताया) यह मनुस्मृति का श्लोक देवताओं को अलग और विद्वानों को अलग साफ साफ बताता है । इतना ही नहीं पूर्वाह्न में घर में देवतापूजा और पर्वदिनों में देवालयदर्शन करने का विधान भी बताता है ।

इस प्रकार, श्रीदयानन्दसरस्वती के दियेहुए प्रमाणवाक्य विग्रहाराधना का निषेध नहीं करते हैं अपि तु ईश्वर के प्रतीक के रूपमें मन्दिरों में मूर्तिआराधना भी बताते हैं ।

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

९. मूर्तिपूजा से देवतानुग्रह – योगियों के उपदेश

एक मूर्ति के ऊपर एकाकार भक्ति के साथ साधना करके भगवत्साक्षात्कार को प्राप्त किये हुए भक्तवर कई हैं। त्यागराजस्वामीजी को श्रीरामप्रभु के दर्शन हुए। यह बात उन की रचनाओं से और चरित्र से भी मालूम पड़ता है। श्रीरामकृष्णपरमहंसजी ने कालीमाता को प्रत्यक्षरूप से देखा था। पोतन महाकवि ने लिखा है कि आप श्रीरामचन्द्रप्रभु के दर्शन पाये हैं (आन्ध्रभागवत प्रथमस्कन्ध प्रस्तावना)

ऊपर जिन का स्मरण हम ने किया वे श्रद्धाभक्तिपरायण निराडम्बर विश्वासपात्र और भोगों की अपेक्षा के बिना परमात्मसाधना केलिए ही जिन्दा रहे थे।

गुरुभक्ति, क्षेत्र और नदियाँ।

योगिजनों के उपदेशभी कहते हैं कि मूर्तिपूजा लाभप्रद है। दासगणु श्रीषिरिडी सायिबाबा के भक्त थे। उनको एक पुण्यदिन में प्रयागराज में स्नान करने की प्रबल इच्छा जागृत हुई। सायिबाबा की अनुमति लेने केलिए वे उनके पास गये। तब श्री सायिबाबा ने कहा, ''उस केलिए उतना दूर जाने की जरूरत नहीं। यहीं हमारा प्रयागतीर्थ है। अपने दिलमें भरोसा करो'' वास्तव में यह बहुत ही आश्चर्यजनक विषय रहा। जब दासगणुमहाराज बाबा के चरणों पर माथा टेकते हैं तब तुरंत उनके पैर के अंगूठियों से गंगा और यमुनाओं का जल बहने लगा। उस चमत्कार को देखकर दासगणु पुलकित हो गये। दासगणु बाबा की स्तुति तुरंत करने लगे। उस में ''सद्गुरुदेव, आपकी

शक्ति अपरंपार है, आपकी लीला अमोघ है, दयामय, आप ही अज्ञानियों को भवबन्धों से पार करने की नौका हैं। आप ही वेणुमाधव जी हैं आपने अपने दो चरणों को प्रयागराज बनाकर दोनों की अंगूठियों से गंगा और यमुनाओं का प्रवाह दिखाया।''- इस तरह की स्तुति सायिनाथ के चरित्र में है। श्रीसायीसच्चरित्र ४८ अ १०२ से १०८ तक दासगणु १ पद)

इस इतिवृत्त से समझ सकते हैं कि प्रयागराज उसमें वेणुमाधव, गुरुभक्ति, और सद्गुरुओं की शक्ति ये सब बहुत ही काम में आती हैं।

दासगणुमहाराजने अपनी देखीहुई सायिलीला को ग्रन्थ में लिखा है। उसे फिर से हेमाद्रिपंत ने ग्रन्थस्थ किया। वे दोनों षिरिडी बाबा के समानकालिक थे, सन्निहित भी थे। बाबा के अनुग्रह से इन्होंने कई अनुभूतियों को पाया। यह भरोसा करने लायक है।

और एक बात है। भगवंतराव क्षीरसागर के पिताजी विठ्ठल के भक्तराज थे। बार बार पंडरीयात्रा में वे जाया करते थे। उनके घर में विठ्ठल की मूर्ति थी। जब उनके पिताजी चलबसे घर में पूजा नैवेद्यसमर्पण आदि सब बंद होगये पंडरीयात्रा की बात ही नहीं रही। श्राद्धकर्म भी भूलगये। जब भगवन्तराव् षिरिडी पहुँचे तब सायिबाबा ने कहा, ''इनके पिताजी मेरे दोस्त रहें। इसीलिए इनको मैंने यहाँ बुलवाया, यह कभी भी नैवेद्यसमर्पण नहीं करता है, मुझे सदा उपवास रखता है। विठ्ठलदेव को भी खाना नहीं देता है। तभी तो मैं यहाँ इन को लाया हूँ। अब इसको याद दिलाता हूँ। (श्रीसायिसच्चरित्र ४ अ ९७ पृ-१०१ पृ तक)

श्री षिरिडीबाबा मुसलमान के रूप में रहते हैं। वे मूर्तिपूजन करने को बोल रहे हैं। अगर पूजा नहीं करेगा, तब मुझे खाना नहीं देने के बराबर है। ग्रन्थकर्ता हेमाद्रिपंतजी बाबा के पास कई साल रहें। बाबा से भी और उनके भक्तजनों को लेकर उन्होंने सायिचरित्र की रचना की। अगर कोई विश्वास

नहीं रखते हैं मूर्तिपूजन नहीं कर सकते हैं तो, छोड़ सकते हैं । लेकिन मूर्तिपूजन का खण्ड़न करना तो आमतौर साधकों को अड़चन पैदा करना ही है । ऐसी बातें कई योगिजनों के जीवन में मिलती हैं । और मुस्लमान योगिराज श्री षिरिडी बाबा की मूर्तिपूजा की इतनी मान्यता है तो क्या कहना है ?

रामलालप्रभुजी एक महायोगी हैं । उन का चेला श्रीहरिहरानन्दस्वामी एक महायोगी बनकर हिमालयों में बसते थे । वे एक दफा जब हिमालयों से आ रहे हैं रास्ते में दूसरे धर्मवाले एक मन्दिर में शिवार्चना को रोक रखे हैं । तब हरिहरानन्दस्वामीजी अपनी योगमहिमा से दूसरे मतधर्मपालकों को सज़ा देते हैं, और मन्दिर में शिवपूजा को फिर चालू करते हैं । (श्री नृसिंहहृदय पृ-५८-६१ तक)

यह एक हिन्दूयोगी का काम था । ऐसे उदाहरण दूसरे योगियों के जीवन में कई दिखासकते हैं । इसलिए मूर्तिपूजा से उपयोग हैं - मानकर चलना श्रेयस्कर है लाभप्रद है । हम बेशक कह सकते हैं कि मन्दिरों की व्यवस्था साधारण साधकों केलिए जरूरी है ।

महामहिमवाले योगिराज भी तीर्थक्षेत्र यात्रा में जाते रहते हैं, इसलिए भी देवालय व्यवस्था को आदर दिखाना बुरा नहीं । श्रीरामलालप्रभुजी नामक योगिराजने नर्मदानदी तीरयात्रा कर लिया । नर्मदानदी के तट पर एक जगह यात्रा शुरू कर के परिक्रमा में पूर्णरूप से दोनों तटों पर घूम कर आना नर्मदातटयात्रा कहलाती है । (श्री नृसिंहहृदय पृ-२१)

परमहंस योगानन्द ऐसे संत के दर्शन केलिए चलपड़े जिन का नामथा रामगोपाल् मजुंदार और वे कभी सोते नहीं थे । वे रणबाजर्पूर में रहते थे जो तारकेश्वर के पास पड़ता था, वे बेंगाल में कहीं कहीं कोने में छिपी हुई गुफाओं में क्रियायोग साधना कर के आत्मसाक्षात्कार प्राप्तकिये हुए थे ।योगानन्दजी को रास्ते में तारकेश्वर में एक प्रख्यात मन्दिर दिखायी देता है । वे उस

तारकेश्वर मन्दिर में प्रवेश करते हैं किन्तु शिवलिंग को प्रणाम नहीं करते हैं। उन्होंने समझा कि यह तो पत्थर है, इसके सामने क्यों शिर नवाना है ? वे रणबाज़ूपूर की ओर चल दिये। वहाँ एक राहीगर से पूछा गया ‘‘रास्ता किस तरफ जाता है ?’’ यात्रीने जवाब दिया - जहाँ चौरास्ता मिलेगा वहाँ दाहिनी तरफ मुड़ना और आगे बढना।’’

योगानन्दजी रात को जब अन्धेरा छा जाता है फिर चांदकी रोशनी आती है तब तक रास्ते में भटकते रहें। वहाँ एक किसान से उन्होंने पूछा ‘‘मैं रामगोपालबाबूजी को खोजरहा हूँ।’’

किसान ने कहा ‘‘उस नामका आदमी इधर कोई है ही नहीं।’’ उस रात को किसान के यहाँ ठहरें। फिर अगले दिन किसान ने सूझबूझ से कहा कि रणबाज़ूपूर हमारे गाव से बहुत दूर है। जहाँ चौरास्ता मिला, वहाँ से आपको बायी और मुड़ना चाहिए था, दाहिनी ओर नहीं।’’

फिर योगानन्दजी चल पड़े और पैदल चलते चलते दो पहर को धूप की वजह से बेहोश गिर पड़ने की हालत में आये। तब वे ही संत जो कभी भी सोते नहीं थे दिखायी देते हैं और कहते हैं कि ‘‘हम रणबाज़ूपूर छोड़कर जाना चाहते हैं, आपका संकल्प अच्छा था, इसलिए मुलाकात होगयी। हम आपके इंतजार में ही बैठे हैं। कल आपने तारकेश्वर मन्दिर में शिवलिङ्ग को प्रणाम क्यों नहीं किया ? आपका घमण्ड ही इस तरह की सजा का कारण था। दायीबायी ओर घूमने में गलतरास्ते पर इसीलिए भटकगये।’’ इस तरह उपदेश देकर उन को सचेत किया। उस योगिराज के शरीर से आरोग्यप्रद एक अद्भुत शक्ति (तेजस्) निकल पड़ी। धूपमें तपते हुए योगानन्दजी को तत्काल शान्ति मिल गयी।

योगिराज और भी उन को इस तरह समझने लगे, ‘‘हर एक भक्त समझता है कि भगवान् को समझने केलिए अपना रास्ता ही ठीक है। जैसे

लाहिरी महाशय कहते हैं ऐसे योगविद्या की अपेक्षा सब से उत्तम मार्ग नहीं है जिस से जो अंदर के दिव्यत्व को अंदर ही जान सकते हैं । लेकिन ईश्वर को अंदर देखने के बाद ही जल्दी ही बाहर भी देख सकते हैं । किन्तु तारकेश्वर और दूसरी जगहों पर पवित्र मन्दिर जो आध्यात्मिकशक्ति केन्द्रस्थान हैं उन को मानना समुचित होगा ।'' (एकयोगी की आत्मकथा १३ अ १७८ पृ-१८)

यह एक योगी से लिखी हुई अपनी जिन्दगी की कहानी है । इस को देशके और विदेश के भी सारे धर्मवाले सत्य मानते हैं । योगानन्दजी मूर्ति आरधक नहीं थै । श्री रामगोपालमजुंदार और योगानन्दजी ध्यानयोगी थे । रामगोपालमजुंदार दिव्यदृष्टि को रखनेवाले योगिराज थे । उन्होंने योगानन्दजी को सलाह दिया कि शिवलिंग को प्रणाम करना है क्षेत्रों को आध्यात्मिक शक्ति केन्द्रों के रूप में आदर करना है । इस से पता चलता है कि मूर्तिपूजा करने लायक है, तीर्थ और क्षेत्र आध्यात्मिकशक्तिकेन्द्र हैं और योगीजन दिव्यशक्तियों को रखते हैं ।

१०. पितृकर्मों का विमर्श
एक परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी प्रश्न और उत्तरों के रूप में गरुडपुराणस्थित पितृकर्मों का आक्षेप किया।

प्रश्न : गरुडपुराण भी असत्य है क्या ?

उत्तर : हाँ। असत्य है ही।

प्रश्न : यमधर्मराज राजा है। उन का मन्त्री चित्रगुप्त है। वे दोनों अपने दूतों को भेजते हैं, वे अतिभयंकर स्वरूपवाले हैं काजल के पहाड़ के समान रहते हैं। वे जीवों को पकड़कर लाते हैं उनके पुण्य के अनुसार स्वर्ग में या पाप के अनुसार नरक में भेजते हैं।

उत्तर : ये सारी बातें गोल गप्पे हैं। अगर यह बात सही है तो यमलोक में जो जीव हैं उनके पापाचरण का फल भोगने के वास्ते और एक न्यायालय एक न्यायाधीश और दूसरा यमलोक हैं कहाँ ?

परिशीलन : जैल में अधिकारी जो हैं उन को भी सजा मिलती है। उन को उसी जैल में डाल सकते हैं। उन केलिए दूसरे जैल में भेजने की जरूरत नहीं है। यमलोक में जो गलत काम करते हैं उनको दण्ड देने केलिए दूसरे यमलोक की जरूरत नहीं है। गलत काम करने वालों को भगवान् ही दण्डधारी है।

यमराज के बारे में न केवल गरुडपुराण में बल्कि अधर्ववेद में भी है। अधर्ववेद में १८ वे काण्ड में मरे हुए लोगों केलिए कर्मकाण्ड है।

मंत्र : **परे युवांसं प्रतो महीरिति**
बहुभ्यः पन्था मनुपस्पशानम्
वैवस्वतं संगमनंजनानाम्
यमं राजानं हविषा सपर्यत ।। (१८-१-४९)

यह मंत्र तैत्तिरीयारण्यक में भी है । (६-१) (भूमि से यमराज बहुत दूर पर है, वे जानते हैं कि पितृलोक का मार्ग किधर है । मरे हुए लोगों को वे ही प्राप्तिस्थान है । इस यमराज की अर्चना करो) इस मंत्र से पता चलता है कि यमराज हैं और मरने के बाद जीव उनकेपास जाते हैं उनकी अर्चना भी है ।

मंत्र : आ च्या जानु दक्षिणतो निषद्येनं नो अभि
गृणन्तु विश्वे मा हिंसिष्ट पितरः केनचि न्नो
यद्व आगः पुरुषता कराम (१८-१-५२)

हे पितृदेव, आप सबलोग घुटने टेककर वेदिका के दाहिने भाग में बैठकर हमारे दियेहुए हविष को स्वीकृत कीजिये और कहिए कि हाँ यह ठीक है ।

इस से पता चलता है कि पितृदेवतालोग हमारा आह्वान मानकर आते हैं बैठते हैं और हमसे समर्पित हविष को स्वीकारते हैं ।

मंत्र : उशन्तस्त्वेधीमहि उशन्तस्समिधीमहि
उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे १-१-५६

हे अग्निदेव, इस पितृयज्ञ के निर्वहण केलिए आपको निमन्त्रण देरहे हैं । आपके सहयोग केलिए आपको ज्यादा प्रज्वलित कर रहे हैं । (आप जो हैं स्वधा को चाहनेवाले पितृदेवताओं को हविष् पहूँचाने केलिए उनको बुलाइये) इससे मालूमपड़ता है कि पितृदेवताओं को बुलाना और हविष उन केलिए अर्पित करना, वेदों के अनुसार है । यह मंत्र तैत्तिरीयशाखा में है ।

मंत्र : तपसा ये अनाधृष्या स्तपसा ये स्वर्ययुः
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चा देवापिगच्छतात् १८-२-२-१६

(हे प्रेत, आप ऐसे पुण्यलोक प्राप्त कीजिये जो पापात्माओं से नहीं डरते हैं, और कृच्छ्र और चान्द्रायण आदि तपस्या कर चुके हैं और यागआदि तपस्याओं से स्वर्ग पधारकर जिस पुण्यलोक को पाते हैं, और ऐसे अपूर्व अनमोल पुण्यलोक को प्राप्तकीजिये जो हिरण्यगर्भ की उपासना कर चुके हो और

दूसरों को जो दुष्कर हैं ऐसे राजसूय और अश्वमेध जैसे यागों को अनुष्ठान कियेहुए हैं) इससे पता लगता है कि मरने के बाद पुण्यपुरुष, पुण्यलोक प्राप्त करते हैं ।

मंत्र : असंबाधे पृथिव्या उरौ लोके निधीयस्व
स्वधायाश्चकृषे जीवन् तास्ते सन्तु मधुश्चुतः

हे पितृदेव, आप यहाँ वेदीस्थान में विराजिये यहाँ वेदी जो है विस्तीर्ण है न सम्मर्द है यहाँ, और यहीं पर अग्निहोत्र रखाहुआ है । इस के पहले मरने के पहले आप स्वधाकार से पितृदेवताओं को और देवताओं को हविष् दे चुके हैं। वे स्वधाकार आप केलिए शहद की लहरों को ला दे वें १८-२-२-२०) इस में पितृदेवताओं के हविस्समर्पण अर्थात् श्राद्धकर्म, सूचित किया जाता है ।

मंत्र : उदन्वती द्यौरमा पीलुमतीति मध्यमा
तृतीयाह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते

१८-२-५-४८

यहाँ कहा जाता है कि स्वर्गलोक तीन तरह का है । निचला भाग उदन्वती कहलाता है, इसें बादल हैं और बरसते हैं, मध्यभाग जो है वह पीलुमती कह जाता है, पीलु शब्द का अर्थ है ग्रह, नक्षत्र जैसे जहाँ रहते हैं वही असल में स्वर्गलोक है, उस से भी ऊपर का भाग पितृलोक है, यहाँ पर पितृदेव रहते हैं । इस से पता चलता है कि पितृलोक सबसे श्रेष्ठ है । ये मन्त्र, इस तरह तीन तरह के मन्त्रों को समझा रहे हैं ।

मंत्र : उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रवौकः कृणुष्व सलिले सधस्थे
तत्र त्वं पितृभिः संविदानःसंसोमेन मदस्व सं स्वधाभिः।।

हे प्रेत, आप यहाँ से उठिये, निकलपडिये उसके बाद दौड़ते चलिये, अन्तरिक्षलोक में जहाँ अलौकिकरूप में पानी है, वहाँ मकान (अपना निवास) बनालीजिये । वहाँ बर्हिषत् अग्निष्वात्ता आदि पितृदेवताओं के साथ जुलमिलकर सोमरस

का पान कीजिये और खुश रहिए। सोमयागों में नाराशंसा नामक सोमरस का भाग आप ही केलिए। उस को पा लीजिये और आनन्दित रहिए। पितृदेवताओं के अधिपति सोमराज के साथ रहने में आपको आनन्द मिलेगा वैसे पुत्र आदि लोग जो श्राद्धकर्म करते हैं उनसे सन्तुष्ट हो जाइये। (अधर्वण-१८-३-१-८ मं) इस में मरने के बाद पितृलोक में जाना वहाँ पितृदेवताओं से मिलना यज्ञमें उन को सोमरस प्राप्तहोना, भूमिपर पुत्र पौत्र आदि के द्वारा श्राद्धकर्म कियेजाना - सब वर्णित हैं। इस प्रकार अधर्ववेद में १८ वे काण्ड में मरण के बाद जो कियाजाता है अपरकर्म (क्रियाकर्म) और श्राद्धकर्म सब बताये गये हैं। इन बातों को समझने केलिए तैत्तिरीयशाखा में आरण्यक में छट्ठे प्रपाठक के मन्त्रों को देखना है।

मनुस्मृति के तीसरे अध्याय में १२२ श्लोक-२८४ श्लोक तक श्राद्ध के विषय विस्तृतरूपसे मिल रहे हैं।

श्लो. त्रींस्तुतस्मात् हविश्शेषात्
पिण्डान् कृत्वा समाहितः
औदके नैव विधिना
निर्वपेत् दक्षिणामुखः ॥ (मनुस्मृति-३ अ-२१५ श्लोक)

अग्नि में हवन करने के बाद बचा हुआ अन्न, जो है उसको तीन पिंड बनाना चाहिए। इस के बाद श्राद्धकर्ता दक्षणदिशा की ओर मुह करके बैठेगा कुशाओं पर तिल और जल छिडककर उनके ऊपर, तीन पिंडों को रख कर उनके ऊपर तिलमिश्रित जल को छिडकना चाहिए।

श्लो. ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः पितृदेवताओं को ख्याल में रखकर जोश्राद्धकर्म करते हैं उसमें खास तौर से ज्ञाननिष्ठ विद्वान् ब्राह्मणों को भोजन केलिए निमन्त्रित करना चाहिए। (मनुस्मृति ३ अ १३५ श्लो)

इस प्रकार मनुस्मृति में पितृदैवतों को पिण्डप्रदान और ज्ञाननिष्ठलोगों

को भोजन आदि समर्पित करने का तरीका बताया गया । श्रीमद्रामायण में श्रीरामप्रभु ने अपने पिताजी को पिण्डप्रदान किया (रामायण, अ.का. १०२सर्ग २६-३०) ।

भरतने भी दशरथ केलिए अंत्यकर्म करके गोदान से लेकर विविधप्रकार के दान किये । (अयोध्या ६७ स, १२श्लो. - २३ श्लो. ७७ सर्ग- १, २, ३ श्लोक)

अतः आस्तिकलोगों को यह नहीं कहना है कि यमलोक, यमराज, दान, गोदान, श्राद्ध और तर्पण इत्यादि है ही नहीं ।

श्रीस्वामीजी अपने हेतुवाद से यमकिंकरों के अस्तित्व के बारे में शक करने लगे ।

उनका सवाल यह है कि यमकिंकरों के शरीर पहाड़ के बराबर हैं तो क्यों दिखायी नहीं देते ?

कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्य शक्ति स्तम्भे चक्षुष्प्रकाशासंयोगेऽन्तर्धानम् (पातञ्जलयोग दर्शनम् ३ वा पाद २१ वा सूत्र)

शरीररूप के विषय में संयम करने से रूपग्रहणशक्ति का निरोध करने से दूसरों की आँखों को अपने शरीर संयोग से छुटकारा जब मिलता है तब अन्तर्धान (दूसरों की आंखों के सामने प्रगट नहीं होने की स्थिति) पैदा होती है।

यह अन्तर्धानशक्ति को साधकजन योगसाधना से पाते हैं । देवताओं के विषय में यह स्वतःसिद्ध होता है ।

यही बात ब्रह्मसूत्रशङ्करभाष्य में १-अ ३-२७ देवताधिकरण में पढने को मिलती है ।

परैश्च न दृश्यतेऽन्तर्धानक्रियायोगात्

(अन्तर्धान क्रियासे देवतालोग दूसरों को दिखायी नहीं देते हैं)

इसलिए हम कह सकते हैं कि देववर्ग में जो यमराज के दूत हैं, वे भी

देखने को नहीं मिलते हैं ।

यमदूत बहुत भयंकर हैं - ऐसे वर्णन मिलते हैं । यह नियम नहीं है कि वे पहाड़ के बराबर ऊँचे होते हैं । जहाँ कही ऐसे वर्णन मिलते हैं तो हम कह सकते हैं कि वह आलंकारिकभाषा है । योगशास्त्र में अष्टसिद्धियों का वर्णन है - आठ में से महिमा नामक सिद्धि एक है जिससे योगी अपनी मर्जी से बहुत भयंकर रूप धारण करते हैं बहुत छोटे आकार में जाना अणिमा सिद्धि है । जहाँ कहीं यमकिंकर का आकार पहाड़ का जैसा है वहाँ समझना है कि वह महिमानामक सिद्धि है । इस प्रकार हम दावा बोल सकते हैं कि यमकिंकरों का नहीं रहना संभव नहीं है ।

स्वामीजी का आक्षेप ऐसा है कि श्राद्ध, तर्पण और पिण्डप्रदान मरे हुए लोगों को नहीं मिलते हैं । वैतरणी नदी को पार कराने केलिए गोदान किसी पुरोहित के यहाँ जायगा नहीं तो वध्यशाला में पहुँच जायेगा । वहीं गाय, वैतरणी के यहाँ नहीं पहूँचती है, तब किस का पूछ पकड़कर वैतरणी को पार करेंगे ? हाथ जो हैं यहीं जल गये, नहीं तो मिट्टी में मिल गयें तो कौनसा हाथ बचा है जिससे गाय का पूछ पकड़ेगा ?

परिशीलन : हमने श्राद्धतर्पण पिंडप्रदान के बारे में वेदमंत्रों को और मनुस्मृति को प्रमाण के रूप में दिखाया । स्वामीजी के आक्षेप जैसे वाक्य ही श्रीमद्रामायण अयोध्याकाण्ड १०८ स १४, १५, १६, १७ श्लोकों में मिलते हैं जो जाबालिमहर्षि के मुह से निकले थे ।

श्रीरामप्रभु जाबालि को डांटते हुए कहते हैं कि ''सुनास्तिकं धर्मपथादपेतम्'' आप जो हैं नास्तिक हैं जो धर्ममार्ग से गिरे हुए हैं ।

जवाब : यह बात कहीं नहीं है कि इसी शरीर से लोग यमलोक पहुँच पाते हैं । गरुडपुराण जैसे ग्रन्थों में लिखा है कि वे मरे हुए प्राणी दूसरा देहधारण करके परलोक पहूँच जायेंगे । दान करने से पुण्य मिलेगा । उस पुण्य

से नरक जाना नहीं पड़ेगा ।

इस बात को लेकर कथारूप में कहा गया कि गोदान करने से गाय का पूछ पकड़कर वैतरणी नदी को पार करेंगे । "धर्मेण पापमपनुदति" पुण्य से पाप को हटाते हैं (तैत्तिरीयारण्यकम्-१०-१००) 'दानं परमं वदन्ति' दान ही सबसे उत्तम साधन है - (तैत्तिरीयारण्यकम् - १०-१००)

इस प्रकार वेद का प्रमाण देखने के बाद दान को इनकार नहीं करना चाहिए ।

इससे जो वेद, रामायण, मनुस्मृति को भी प्रमाण मानते हैं उनको श्राद्ध, तर्पण, पिण्डप्रदान, गोदान आदियों का तिरस्कार नहीं करना है ।

पुराणविमर्श : श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी पुराणों का विमर्श इस तरह करते हैं - पुराणकर्ता लिखते हैं कि अपने पुराण में जो देवता प्रधान है वही सृष्टिकर्ता है, वही देवता, दूसरे पुराणों में अन्य अन्य देवताओं की सृष्टिकर्ता है ।

सारे संसार की रचना जो करते हैं जो पालन करते हैं जो प्रलय कर्ता हैं वह कहीं पैदा होगा क्या ? जो पैदा होता है, वह सृष्टि का कारण कैसे होगा? - ऐसे सवाल पूछते हैं तो पौराणिक लोगों को चुप रहना पड़ेगा । - यह स्वामीजी का तर्क है ।

परिशीलन : एक देवता की मान्यता को प्रतिपादित करनेवाले पुराण में दूसरे देवताओं को वही मूलकारण बताने से जो देवताभक्त हैं साधक हैं उनके मन में एकाग्रता को बिठाने केलिए है । पौराणिक सम्प्रदाय में सृष्टिकर्ता के कई कल्प बीतगये । एक एक कल्प में तरह तरह की कथाएँ और उनकी घटनाएँ अलग होती हैं हो सकती है । कल्प के अनुसार अलग नाम और रूपधारण करनेवाले परमात्मा से यह संसार उत्पन्नहुआ - यही तो बात पुराणों में प्रसिद्ध है । इस प्रकार एक पुराण और दूसरे पुराण में जो वर्णन में भेद है

उसमें अनुपपत्ति या विरोध की गुंजाइश नहीं है ।

यह एक सवाल बचा है कि जिस परमात्मा से सारी दुनिया के जन्म, स्थिति, और प्रलय होते हैं - वह कैसे पैदा हो सकता है ? उसका जवाब इस प्रकार है :-

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे
भूतस्य जातः पतिरेकआसीत्
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्
कस्मै देवाय हविषा विधेम

हिरण्यगर्भः गर्भवद्यस्य उदरे वर्ततेऽसौ सोऽसौ सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ इत्युच्यते, अग्रे प्रपञ्चोत्पत्तेःप्राक् समवर्तत मायाध्यक्षात् सिसृक्षोः परमात्मनः समजायत । यद्यपि परमात्मैव हिरण्यगर्भः तथापि तदुपायभूतानां वियदादीनां सूक्ष्मभूतानां ब्रह्मण उत्पत्तेः तदुपहितोप्युत्पन्न इत्युच्यते । स च जातो जातमात्र एव एकः अद्वितीयस्सन् भूतस्य विकारजातस्य ब्रह्माण्डादेः सर्वस्य जगतः पतिरीश्वरआसीत्। ...अपि तर्हि स हिरण्यगर्भः अन्तरिक्षं दिवं भूमिं च दाधार धारयति । कं प्रजापतिं देवं दानादियुक्तं हविषा... विधेम परिचरेम ।

हिरण्यरूप यह संसार गर्भ जैसा जिस के पेट में है वह सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ है । दुनिया की सृष्टि के पहले वह माया का अध्यक्ष रहा । जब सृष्टि रचने की कामना होती है तब वह परमात्मा से उत्पन्नहुआ । सोचने से पता चलता है कि यह हिरण्यगर्भ परमात्मा ही है । फिर भी हिरण्यगर्भ के उपाधिभूत आकाश आदि सूक्ष्मभूत ब्रह्म से पैदाहुए हैं । किन्तु कहा गया कि हिरण्यगर्भ पैदाहुआ । पैदा होते ही अद्वितीय रहा, ब्रह्माण्ड आदि सारे संसार का ईश्वर बनगया । वही अन्तरिक्ष स्वर्ग और भूमि का धारण करता है । हम उस

प्रजापति देव को हविष के साथ सेवा करते हैं। (ऋग्वेद-१०-१२१-सू-१ ऋ)

इस प्रकार हिरण्यगर्भ का जन्म ऋग्वेद में ही बताया गया। इसलिए जो जन्मता है वह भी सृष्टिकारक हो सकता है। इस बात को मना करने की जरूरत नहीं।

११. शिवपुराण विमर्श

परिशीलन

शिवपुराणविमर्श

ड़ा शिवलिङ्ग

अचानक प्रकट हुआ। उसका आदि जानने केलिए ब्रह्माजी ऊपरलोक पहुँचने लगे। विष्णुभगवान् नीचे लोकों को पहुँचने लगे। लेकिन उस महान् शिवलिङ्ग का आदि और अन्त समझने में वे दोनों विकल हो गये। ब्रह्माजी ने झूठ कह दिया कि खुद शिवजी का अन्त देखलिया। केतकीपुष्प और, गाय, ब्रह्माजी के पक्षमें झूठ बोलने केलिए साक्षी थे। शिवजी प्रगट हुए और उन तीनों को शाप दे चुके।

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी इस कहानी समझाकर लिखते हैं कि शिवजीने ब्रह्माजी से और विष्णुभगवान् से पूछाकि हमने आप दोनों को इसलिए भेजा कि आप सृष्टि की रचना करें, फिर आप दोनों आपसमें क्यों झगड़ते हो ? तब ब्रह्माजी और विष्णुभगवान् नतमस्तक होकर जवाब देते हैं कि हमारे पास सामग्री नहीं है जिससे सृष्टि की रचना कर सकें। तब महादेव ने अपने जटामण्डल से एक राख का पिण्ड उनके हाथों में सौंप कर उस से सारे संसार की रचना करने का आदेश दिया। आदि आदि कहाँनियाँ इस में हैं।

आगे स्वामीजी पूछते हैं कि यह नामुमकिन है कि जब सृष्टि की रचना नहीं हुई जब पांचभूत भी नहीं थे, तब ब्रह्म विष्णु और महेश्वर के शरीर जल कमल लिंग गाय केतकीफूल राख का पिण्ड - ये सब कहाँ से आ टपकें ? उन के पिताजी के घर से आयें क्या ?

जवाब : शिवपुराण में दो जगह शिवलिंग के आविर्भाव की कहानी दिखायी देती है। विश्वेश्वरसंहिता में ६, ७, ८ अध्यायों में है इसी में केतकी,

गाय, देवताएँ - इनका प्रसंग है । यह सृष्टि की शुरूआत की कहानी नहीं । यह शिवरात्रि कैसे बनगयी - उसे समझने केलिए ही है । इसलिए कहना पड़ता है कि यहाँ केतकी, गाय, और देवताओं का रहना, आक्षेप का विषय नहीं ।

दूसरी कहानी रुद्रसंहितामें सृष्टिखण्डमें ६, ७, ८ अध्यायों में है । यह सृष्टि समय से संबंधित कहानी है । इस में विष्णुभगवान् ब्रह्माजी और पच्चीस तत्त्व आदियों की उत्पत्ति है । इस में केतकी और गायों का प्रसङ्ग नहीं। इन दो कहानियों को जोड़ने से, एक समझने से, श्रीदयानन्दसरस्वती के आक्षेप का अवसर पैदा हुआ । इन को अलग समझने से आक्षेप का अवसर होता ही नहीं ।

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

१२. पुराणविमर्श

परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वमीजी खुद प्रश्न और प्रतिवचन के रूप में पुराणों के बारे में और विमर्श करने लगे ।

प्रश्न : अष्टादशपुराणानां कर्ता सत्यवतीसुतः

महाभारत आदि १-२६७

इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्

अर्थात् अठारह पुराणों के रचयिता वेदव्यास थे । इतिहास (रामायण और महाभारत)अठारह पुराणों से वेदों का अर्थ विवरण करना चाहिए । पुराणानि खिलानि च - मनु-अ. ३ श्लोक २३२ पितृकर्म करते समय हरिवंश का पारायण करना है उसमें कहानियों को सुनना है, आदि आदिवचनों से हमें समझना चाहिए कि पुराण प्रामाणिक हैं, उन में बताएहुए मूर्तिपूजाएँ तीर्थक्षेत्र सब प्रामाणिक हैं ।

उत्तर : अठारह पुराणों के कर्ता एक ही है तो उनमें कई असत्य नहीं रहते । क्यों कि शारीरकसूत्र, योगसूत्रभाष्य आदि न्यासप्रोक्तग्रन्थ पढने से पता चलता है कि वेदन्यास बड़े ही विद्वान् सत्यवादी धर्मात्मा महान् व्यक्ति थे। ऐसे महान् पुरुष कभी भी झूठी बातें नहीं लिखते :- ऐसी बातों से स्वामीजीने पुराणों का तिरस्कार किया ।

प्रश्न : पुराणों में सारी बातें झूठ ही हैं क्या ? कहीं सत्य भी है ?

जवाब : झूठी बातें कई हैं । शिवजी के भक्त जो हैं शिवजी को ही परमेश्वर समझते हैं और शिवपुराण में विष्णु, इन्द्र, ब्रह्मा, गणेश और सूर्य आदि देवताओं को शिवजी के दास मानते हैं । ऐसे ही विष्णुपुराण में विष्णु

को ही परमात्मा मानते हैं और दूसरी देवताओं को उनके दास समझते हैं । शक्ति के पुजारी देवीभागवत के अनुसार भगवती को ही परमेश्वर समझकर दूसरे सारे देवतागणों को उनके दास मानते हैं । गणेशखण्ड में गणेशजी को ही परमेश्वर मानकर बाकी देवताओं को उनके चरणदास समझते हैं ।

अगर एक ही व्यक्ति लेखक है तो ऐसी बातें नहीं हो सकती । एक देव शिवजी या विष्णुभगवान् को मानते हैं तो भगवती माँ को नहीं मान सकते। फिर देवीभागवत के अनुसार भगवतीमाँ को ही मानना पड़ेगा और शिवजी, गणेशजी जैसे अन्यअन्य देवताओं का तिरस्कार करना पड़ेगा ।

: स्वामीजी के विचार विमर्श सोचने लायक हैं । ब्रह्मसूत्रों में वेदव्यासजी, उपनिषदों के अनुसार आकाश, प्राण आदि कई नामों से परमात्मा ही बताये गये हैं । इसी प्रकार, ब्रह्मा, शिवजी, विष्णुभगवान् के नामों से एक ही ईश्वर को बुलाते हैं । इस बात को पुराणों में ही हम देखते हैं :-

श्लो. सृष्टिस्थित्यन्तकरणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्
स संज्ञां याति भगवान् एक एव जनार्दनः

यही एक ही भगवान् सर्वदेवतास्वरूप है । एक ही तरह तरह के उपास्यदेवताओं के नाम और रूप लेकर भक्तजनों के उद्धार केलिए अवतरित होता है । एक को प्रधान और दूसरों को अनुयायी कहना, भक्तलोगों के मनमें श्रद्धा और भक्ति को जगाने केलिए है । उपनिषदों में भी प्रतीकोपासना मिलती है ।

'मनो ब्रह्मेत्युपासीत' मन को परब्रह्म समझकर उपासना करनी है । (छ. ३.१८.१) 'आदित्यो ब्रह्मेत्यादेशः' सूर्य ही ब्रह्म है : यह उपदेश है (छ. ३.१९.१) आदि आदि प्रतीकोपासनाएँ कहलाती हैं । 'ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात्' इन

प्रतीकों में ब्रह्मदृष्टि को रखना है । इस तरह करने से प्रतीकों का उत्कर्ष सूचित किया जाता है । (ब्रह्मसूत्र-४-१-४-५)

बादरायणने ब्रह्मसूत्रों में ऐसा ही कह दिया । किन्तु मन जो अमूर्तवस्तु है और सूर्य जैसे लौकिकवस्तुओं को ब्रह्म के रूप में समझना मामूली तौर से नामुमकिन है । इसीतरह शिवजी और विष्णुभगवान् जैसे देवतारूपों को और श्रीराम श्रीकृष्ण जैसे अवतारपुरोंषों को परब्रह्म के रूप में उपासना करने के विधान पुराणों में बताये गये हैं । इन उपासनाओं से कई पण्डित और पामर (आमतौर आदमी) सिद्धि को प्राप्त किये हैं । प्रह्लाद और ध्रुव विष्णूपासना से धन्य हुए जैगीषव्य और उपमन्यु, शिवोपासना से कृतार्थ होगये हैं । महाराष्ट्र के भक्तों के चरित्र से विष्णुभक्तों के उद्धार का पता चलता है और तमिलनाडु के चरित्र से शिवभक्तों के उद्धार का पता चलता है । इसलिए मूर्तिपूजन का निषेध करना साधारण साधकों के भक्तिसाधन हटाने के बराबर है ।

विष्णुभगवान् को जहाँ प्रधान मानते हैं उन पुराणों में विष्णु को ही सबसे परे कहते हैं । जहाँ शिवजी को सबसे अधिक महत्त्व देते हैं वहाँ भी दूसरी देवताओं उनके अङ्ग मानते हैं अर्थात् एक ही तत्त्व है वही कई नाम और रूपों से विराजमान है सर्वोपरि कहना जो है मन की एकाग्रता केलिए है। इससे यही पायदा होता है कि उसी मूर्ति के ऊपर साधक का मन लग जाएगा उपनिषदों में एक ही परमात्मा के भिन्न भिन्न रूप प्रतिपादन है उसी का समन्वय ब्रह्मसूत्रों में, एकरूप में या एकत्व में लागू होता है, समझना है ठीक ये दो बातें पुराणों में मिलती हैं ।

श्रीशंकराचार्यजी के अनुसार सगुणविद्योपासकों को तबतक उपासना करना जरूरी है जबतक साक्षात्कार होगा । ब्रह्मसूत्रविकल्पाधिकरण में कहागया कि साधक को चाहिए कि विद्याओं में से ऐसी विद्या को लेना चाहिए जिसका

फलभेद नहीं हो और तबतक साधना में तत्पर होना पड़ता है जबतक उपास्य देवता का साक्षात्कार हो जावें। (तस्मादविशिष्टफलानां विद्यानामन्यतमामादाय तत्परः स्यात् यावदुपास्यविषयसाक्षात्करणेन तत्फलं प्राप्तम्)

अपिचासम्भवएव साक्षात्करणस्य समुच्चयपक्षे चित्तविक्षेपहेतुत्वात् (समुच्चयपक्ष जो है उसमें कई उपासनाओं को जोड़ना उपासना में चित्त को एकाग्र करना नहीं हो सकेगा, जिसका फलस्वरूप चित्त का विक्षेप होगा और साक्षात्कार नहीं होगा) ब्रह्मसूत्रभाष्यम् ३-३-५९। भगवद्गीता में भी कहागया कि-

श्लो. य ंयं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् तं तमेवैति कौन्तोय सदा तद्भावभावितः'' (गीता-८-६) देहत्याग करने के आखिरी क्षण में जिसका ख्याल रहता है उस के ख्याल से उसका चित्त जिन्दगीभर भरा रहता है, तब वह मरने के बाद उसी को प्राप्तकरेगा।

जिस नाम पर जिस रूप पर मन लगता है उन नामरूपों के साथ परमात्मा का ध्यान करना उनको सबसे परे मानने में सहायक होता है। लेकिन यहाँ दो उपासकों के बीच झगड़ा होने की सम्भावना है, एक एक कहेगा कि मेरी उपासना सबसे श्रेष्ठ है, मेरी उपासना ही सर्वश्रेष्ठ है। उसको रोकने केलिए पुराणों में कहा गया कि परमात्मा एक ही है सारीदेवताएँ उनके अंशमात्र हैं, वही परमात्मा अन्यान्यदेवतारूपों का धारण करते हैं इसलिए समझना है कि आपस में झगड़ने केलिए ये बातें नहीं हैं किन्तु साधारण साधक की भलाई केलिए कहा गया है।

पुराणों में कहने का तरीका वेदान्तशास्त्र के अनुसार है उससे चित्त का विक्षेप नहीं, बल्कि उपास्यदेवता का साक्षात्कार पाने केलिए सोपान बन जाएगा। जबतक उपास्यदेवता का साक्षात्कार नहीं होगा तबतक उपास्यदेवता को बदलना ठीक नहीं, इससे स्थिर बद्धि बन पाती है।

ब्रह्मसूत्रों में काम्याधिकरण में कहागया कि 'काम्यास्तु यथाकामं

समुच्चीयेरन् न वा पूर्वहेत्वभावात्' । कामना के साथ उपासना है तो अपनी कामना के अनुसार कई उपासनाओं को अपना सकते हैं । नहीं तो एक ही उपासना कर सकते हैं । यहाँ कामना को पूरा करना ही एक काम है साक्षात्कार की अपेक्षा नहीं है । विकल्पाधिकरण में कह दिया कि एक उपासना साक्षात्कारपर्यन्त पर्याप्त है क्यों कि वहाँ साक्षात्कार ही फल है । काम्योपासनाओं में फल अलग अलग है । इसलिए कई उपासनाएँ कर सकते हैं जो कामनाओं की पूर्ति केलिए हैं ।(ब्रह्मसूत्र ३ अ ३४१-६० सू)

श्लो. आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानीच भरतर्षभ (गीता-७-अ-१६ श्लो.) यहाँ चार तरह के भक्तों में श्रीकृष्णभगवान् अर्थार्थी को भी गिनते हैं । इसलिए अर्थार्थिभक्तों केलिए पुराणों में कई देवताओं की उपासनाएँ बतायी गयी हैं ।

श्लो. आरोग्यं भास्करादिच्छेत्
श्रियमिच्छेत् हुताशनात्
ऐश्वर्यमीश्वरादिच्छेत्
मोक्षमिच्छेत् जनार्दनात् - ऐसे वाक्यों से पता चलता है कि कई मूर्तियों की उपासना जो है वह वेदान्तशास्त्र के खिलाफ नहीं है । इसलिए उपरोक्त विमर्श जो पुराणों के खिलाफ है वह उचित नहीं है ।

शिवपुराण में यह बात आती कि शिवजीने ब्रह्माजी की सृष्टि की । शिवजी ही विष्णुभगवान् को पट्टाभिषेक करके, वर, भी देते हैं ।

श्लो. अतः प्रभृति लोकेश मन्निदेशादयं हरिः
मम वन्द्यः स्वयंविष्णुः जातः सर्वः शृणोतु च
...इत्युक्त्वाथस्वयंरुद्रोऽनमद्वै गरुड़ध्वजम्

शिवजी ऐसा ब्रह्माजी से कहकर, विष्णुभगवान् से ऐसा कह रहे हैं :-

त्वं कर्ता सर्वलोकानां कर्ताभर्ता मदाज्ञया
दाता सर्वार्थकामानां शास्ता दुर्णयकारिणाम्

जगदीशो जगत्पूज्यो महाबलपरक्रमः
अजेय स्त्वं रणे क्वापि ममापि हि भविष्यसि
शक्तित्रयं गृहाण त्वमिच्छादिप्रापितं मया
मायां चापि गृहाणेमांदुष्प्रणोद्यां सुरादिभिः

ब्रह्माजी, आज से मेरी आज्ञा के अनुसार विष्णुजी मेरेलिए भी माननीय होते हैं। - ऐसा कहकर शिवजीने विष्णुभगवान् को नमस्कार किया। और बोले हैं ‘‘श्रीहरी, मेरी आज्ञा से आप सारे लोकों के कर्ता भर्ता और संहर्ता हैं। धर्म अर्थ काम देनेवाले आप ही है, जो बुरे काम करते हैं उन को आप दण्ड देते हैं, जगत् के ईश्वर हैं जगत् के माननीय हैं महाबल और महापराक्रमवान् हैं। युद्ध में आप किसी से हारनेवाले नहीं हैं। हम से इच्छाशक्ति ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति को आप पायेंगे। मेरी माया को, आपको हम सौंप रहे हैं जो देवताओं के भी वशमें नहीं। इस तरह शिवजी की आज्ञा से शिवजी के वर से विष्णुभगवान् सर्वोपरि विराजमान हैं। (शिवपुराण रुद्रसंहिता २५ अ. १५ श्लोक.)

१३. कूर्मपुराण में हरिहराभेद

कूर्मपुराण में कहदिया कि एक परमेश्वर ही ब्रह्मविष्णुरुद्रात्मक हैं, हरिहर एकदम भेदरहित हैं ।

श्लो. ''ममैव च परा शक्तिः या सा विद्येतिगीयते
...अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः
आधारभूतस्सर्वासां निधानममृतस्य च
एका सर्वोन्तरा शक्तिः करोति विविधं जगत्
आस्थाय ब्रह्मणो रूपं मन्मयी मदधिष्ठिता
अन्या च शक्तिर्विपुला संस्थापयति मे जगत्
भूत्वा नारायणोऽनन्तो जगन्नाथो जगन्मयः
तृतीया महती शक्तिः निहन्ति सकलं जगत्
तामसी मे समाख्याता कालाख्या रुद्ररूपिणी''

शिवजी कहते हैं, ''विद्या जो है वह पराशक्ति है, मैं ही सारी शक्तियों का प्रवर्तक हूँ । निवर्तक भी हूँ । मैं ही अमृत का निधान (स्थान) हूँ । मेरी शक्ति सब मे हैं । वह मेरा ही रूप है, उस का अधिष्ठान मैं हूँ वही सारी जगद्रचना करती है दूसरी मेरी शक्ति नारायण है, वह शक्ति सारे संसार की रक्षा करती है । फिर मेरी तीसरी शक्ति तामसी महच्छक्ति कालनामकरुद्ररूप में रहती है, वह सारे जगत का संहार (नाश) करती है । (कूर्म. उत्त ४ अ १९ श्लो.- २३ श्लोक तक)

तमेव मोचनं रुद्र माकाशे ददृशुःपरम्
सहस्रशिरसं देवं सहस्रचरणाकृतिम्
सहस्रबाहुं जटिलं चन्द्रार्धकृतशेखरम्
उमापतिं विशालाक्षं योगानन्दमयं परम्
श्लो. क्षणेन जगतो योनिं नारायणमनामयम्
ईश्वरेणैक्यमापन्नमपश्यन् ब्रह्मवादिनः

मुनिलोगों ने रुद्रदेव को आसमान में देखा जो दुःखमोचक, परमशिव, हजार शिरवाले दोहजार पैरवाले दोहजार भुजावाले जटाधारी चन्द्रकलाधारी उमापति विशालाक्ष, योगानन्दस्वरूप और सब से परे है । .... फिर दूसरेक्षण में यह भी देखा कि अनामय नारायण ईश्वर में लीन हो गये । रुद्र व नारायण दोनों का एकरूप ईश्वरस्वरूप को देख कर ब्रह्मवादियों में वे सत्पुरुष अपने आप धन्य समझने लगे । (कुर्म. उत्तर ५ अ- ७ श्लो. - १७ श्लोक तक)

इस तरह पुराणों में एक जगह शिवजी का आधिक्य और एक जगह नारायण की महानता भले ही दिखायी देते हैं तथापि जगह जगह पर दोनों की एकता का प्रतिपादन भी मिलता है भगवान् एकही है → इस तरह तत्व का बोधन ही खास बात रह गयी है ।

तरह तरह की मूर्तियों का प्रतिपादन करने वाली कहानियाँ भी अलग अलग कल्पों के संबंधित हैं तभी कथाओं में परिवर्तन पाठक लोगों के मस्तिष्क को खटकता है । व्याख्याकार इन का समन्वय करके कहते हैं कि परमात्मा, एक कल्प में नारायण के रूप में दूसरे कल्प में शिवजी के रूप में सृष्टि की रचना करते हैं । इसीलिए कथाओं में फरक होने पर भी कोई फरक नहीं पड़ता ।

१४. मार्कण्डेयपुराणविमर्श
परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी मार्कण्डेयपुराण में सप्तशती का विमर्श इस तरह करते हैं :-

''मार्कण्डेयपुराण में दुर्गासप्तशती के पाठ से सारी देवताओं के शरीरों से तेजस निकल पड़ा, उस तेजसके राशि से एक देवी निकल पड़ी जिन्होंने महिषासुर का वध किया । रक्तबीजनामक राक्षस के शरीर से जितने भी खून के बूंद जमीनपर गिरते हैं उतने ही रक्तबीज साक्षस पैदा होते हैं । उन की संख्या से सारी जमीन भरगयी । खून, नहरों के रूप में बहने लगा - इस तरह कई असत्य प्रलाप लिखे हैं । अब सवाल यह उठता है कि रक्तबीजों से सारा संसार भरगया तब देवी और उन का वाहन शेर, कहाँ थे ? सारा संसार तो रक्तबीजों से नहीं भर गया न ? अगर भरजाता, पशुपक्षी मनुष्य आदि प्राणी, पानी के अंदर मगर मछिली कछुआ आदि प्राणी, वनस्पति जैसे पेड़ कहाँ थे? दुर्गासप्तशती के रचयिता के घर के अंदर तो नहीं घुस गये । देखिये ये सारी बातें एसी हैं जैसे भंग पीये हुए आदमी के मुह से निकली हैं । यह सारी कहानी बिलकुल काल्पनिक है, प्रामाणिक नहीं ।'' - यह सब स्वामीजीका विमर्श है ।

परिशीलन : दुर्गासप्तशती में इस सिलसिले में श्लोक इस प्रकार है :-

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्त्रावसम्भवैः
सहस्त्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैः महासुरैः

(दुर्गा ८ अ ४७ श्लोक)

अर्थात् वैष्णवी चक्रसे रक्तबीजनामक राक्षस के शरीर खून बहता चला आया, उस में से हजारों से उतनी ऊँचाई के रक्तबीजराक्षस निकले जिनकी संख्या सारे संसार में फैल गयी ।

रक्तबिन्दुर्यदाभूमौ पतत्यस्य शरीरतः
समुत्पतति मेदिन्यां तत्प्रमाणो महासुरः

रक्तबीज के शरीर से खून जब जमीन पर गिरता है, तब, उतना ही ऊँचे रक्तबीज राक्षस हजारों ऊपर उठते थे । (सप्तशती ८ अ ४० श्लोक)

एक व्यक्ति के शरीर में ५ लीटरों का खून रहता है, इस बात का वैद्यशास्त्री खुद कहते हैं । एक मिल्लीलीटर पानी में करीब चार बूंद हैं । पानी की अपेक्षा खून चिकना रहता है । एक मिल्लीलीटर के अंदर दो खून के बूंद होने के हिसाब से पांच लीटर खून से दस हजार पैदा हो सकते हैं । उन से संसार भरगया -अर्थात् वहाँ रणरंग में ज्यादा हिस्सा उनसे भरगया - ऐसा अर्थ लगा सकते हैं ।

कवि की वाक्यरचना में अलंकार होते हैं । ऊपर के विमर्शवाक्यों में स्वामीजी ने कहदिया कि भंग पीकर किसीने (मार्कण्डोयपुराण कविवर ने) इस कथा को लिखा । इन्होंने देखा क्या ? उस प्रकार किसी ग्रन्थ में है क्या ? देखने के बिना सात सौ श्लोकों के एक उत्तम धार्मिकग्रन्थ के खिलाफ असत्यारोपण करना बिलकुल अनुचित है । इस से स्वामीजी के मन के अंदर पुराणों के प्रति व्यतिरेकभावना स्पष्ट हो जाती है । और कुछ नहीं । वाक्यरचना के संदर्भ में इस तरह के वर्णन पाये जाते हैं ।

हमारे साहित्य में अलंकार हैं । उदा :- ''उदात्तं वस्तुनःसम्पद्'' (सम्पत् = समृद्धियोगः) काव्यप्रकाश १० उ ५० वा श्लोक वस्तुओं की समृद्धि का वर्णन उदात्तालंकार कहा जाता है । यहाँ कवि का तात्पर्य यह है कि कई राक्षस जन्मे थे । फिर इतना ही कहा ''हजारों से'' । ''लाखों से या

करोड़ों से'' नहीं कहा न ? इसलिए सारी जमीन का भरजाना नहीं हो सकता। यहाँ ही नहीं बल्कि वेद में भी अलंकार हैं ।

आजकल वैज्ञानिक इस बात पर पहूँच गये कि क्लोनिंगद्वारा शरीर के किसी अंश को बीज बनाकर मनुष्य का निर्माण किया जा सकता है । दुर्गासप्तशती में रक्त को बीज (मूलस्रोत) मान कर एकएक रक्तबीज का आविष्कार कहा गया । इससे समझना है कि वह भी नामुमकिन नहीं है । आखिरी बात यह है कि स्वामीजी का विमर्श ठीक नहीं है ।

१५. शिवलिङ्गपूजा की निन्दा
परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वती शैवमत में जो शिवलिङ्ग की पूजा है - उस के खिलाफ इस तरह आक्षेप उठाते हैं :- ''ये वाममार्गवाले और शैवलोग मिलकर भग और लिंग दोनों की स्थापना करने लगे । न उन में लज्जा थी, न दिमाग न फिकर ।- यहा उनका विमर्श । (सत्यार्थप्रकाश ३९० पृष्ठ)

जवाब : शैव जो हैं वे वेदमार्ग के अनुयायी हैं । वे लोग शिवजी की पूजा करते हैं । शिवलिङ्ग, ब्रह्माण्ड का प्रतीक है । लिङ्गपुराण में शिवलिङ्ग का तत्ववर्णन किया । देखिये :-

श्लो. अलिङ्गो लिङ्गमूलन्तु अव्यक्तं लिङ्गमुच्यते
अलिङ्गः शिव इत्युक्तः लिङ्गं शैवमिति स्मृतम्

(लिङ्ग ३ अ. ४ श्लोक)

शिव का कोई लिङ्ग (प्रतीक = चिह्न)नहीं । प्रकृति लिङ्ग है । उस का मूल शिव है । यह शिवजी के संबंधित चिह्न (निशान) है । व्याख्याता, इसका विवरण इस प्रकार करता है :-

ब्रह्माण्डरूपलिङ्गस्य
सृष्टिस्थित्युपसंहृतीः
संक्षेपेण शिवात्साम्बात्
तृतीयेऽस्मिन्निगद्यते

अर्थात् ब्रह्माण्डरूपी जो लिङ्ग है उसके सृष्टिस्थिति और संहार शिवजी से संभव हो रहे हैं, इस तीसरे अध्याय में संक्षेप में यही बात बतायी जाती है ।

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

इसीलिए रुद्राभिषेक के पहले यह ध्यानश्लोक पढा जाता है :-

श्लो. आपाताळनभस्स्थलान्तभुवनब्रह्माण्डमाविस्फुरद्
ज्योतिस्सफाटिकलिङ्गमौळिविलसत्पूर्णेन्दुवान्तामृतैः

इस में कहागया कि पाताल से लेकर आकाश तक लोकरूपी (चतुर्दशभुवनरूपी) ब्रह्माण्ड जिस् ज्योति से प्रकट हुआ उस में शिवजी का पिण्ड स्फटिकलिङ्ग जैसा है । वह शिवलिङ्ग जेयोतिर्लिङ्ग है - इस तरह का कथन, शिवपुराणके आदि में है ।

(ई.यस्.ए.) - ऐरोपा अन्तरिक्ष संस्था वालों ने ५-६-२०१० को समग्रविश्वचित्र का विमोचन किया । वह एक उपग्रह के ऊपर प्लांकटेलिस्कोप के व्दारा लिया हुआ छायाचित्र है । उसे लेने में एक साल लग गया । उसमें सारा संसार शिवलिङ्ग के आकार में दिखायी देता है । उन्होने लिखा है कि वह हाट्गाससे बनगया है । वह संसार के चारों और आवृत है । संसार शिवलिङ्ग रूप है । उसके अंदर परमात्मचैतन्य जो है वह शिव है । शिवलिङ्गपूजा परमेश्वर की पूजा है इसलिए शिवलिङ्ग की पूजा को परमेश्वरपूजा, समझना ठीक है उसको भगलिङ्गपूजा का नाम देकर आक्षेप करना ठीक नहीं । ''जिसका न आदि है न अन्त, एसा शिवलिङ्ग, अनन्त, अप्रमेय परमेश्वर को सही ढंग से सूचित करता है'' - इस तरह ये पंक्तियाँ परमहंसयोगानन्द की आत्मकथा में मिलती हैं । (एक योगी की आत्मकथा १७८ पुट)

१६. संजीवनीविमर्श – शिवमार्कण्डेयपुराण

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी, शिवपुराण, मार्कण्डेयपुराण और महाभारत आदियों के बारे में इस प्रकार लिखते हैं ।

''भोजराज के समय किसीने शिवपुराण और मार्कण्डेयपुराण को व्यासजी के नाम से लिखदिया । यह समाचार भोजराजा की नजर में आया। तब भोजमहाराजने उन पण्डितों को बुलाया और उन का हाथ काट डालना इत्यादि कठिन सजा दे दी, और घोषणा की कि आगे कोई भी काव्य या इतर ग्रन्थों की रचना करते हैं तो अपने नाम से अंकित करना है किन्तु ऋषिमुनि लोगों के नाम से नहीं'' यह बात भोजराज रचित 'संजीविनी' नामक इतिहासग्रन्थ में है । इसलिए दयानन्दजी का कहना है कि शिवपुराण और मार्कण्डोयपुराण, आधुनिककाल की रचनाएँ हैं । (सत्यार्थप्रकाश -११, स ३९१ पु)

श्रीमल्लादि सूर्यनारायणशस्त्रीजी अपने संस्कृतवाङ्मयचरित्र में इस तरह लिखते हैं :- ''अमरसिंह के जमाने में पुराण, पंचलक्षण कहा गया, और भासकालिदासाश्वघोष आदि कविलोग पुराणों को जानते थे, इसलिए भी ये (पुराण) ईसवीसदी के पहले युग के ही थे, ईसवी के बाद उनको (पुराणों को) लाना उचित नहीं लगता ।''

डा. मुदिगंटि गोपालरेड्डि साहब ने अपने संस्कृतसाहित्यचरित्र में लिखा कि पुराणों की रचना का काल क्री.पू.१२०० से, ई.सदी ५०० तक तय कर सकते हैं । (सं.सा.चरित्र ७७९ पृ)

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

१७. महाभारत में ९० प्रतिशत आधुनिक

परिशीलन

प्रहाभारत के बारे में भी श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी इस तरह लिखते हैं:-

संजीवनी में इस प्रकार है कि वेदव्यासजी ने ४ हजार चारसौ श्लोकों को लिखा था। उनके छात्रों ने पांच हजार छे सौ श्लोकों को, कुल मिलाकर दसहजार शेलकों का महाभारत लिखदिया। वह विक्रमादित्यमहाराज के जमाने में बीस हजार वाला श्लोकग्रन्थ बन गया। अभी मेरी उम्र आधा बाकी है। तीस हजार श्लोकवाला ग्रन्थ मुझे मिल सकता है। इसी प्रकार बढता जायगा तो महाभारतग्रन्थ को एकदिन एकऊंट को ढोना पड़ेगा। - यह सबकुछ भोजराजलिखित ग्रन्थ में है'' सत्यार्थप्रकाश ३९१ पृ।

ऊपर ग्रन्थमें भोजराज का काल इसवी सदी १००५-१०५४-दिया गया। श्रीमल्लादि सूर्यनारायणशास्त्रीजी के मतलब के अनुसार भारतसंहिता काल क्री.पू.११,१२ सदी था। क्रीस्त के पहले ३३० साल के पूर्व काल में ही भारत का हरिवंश, संस्कृतभाषा में था - इस बात को श्री मुदिगंटि गोपालरेड्डिजी परिपुष्ट करते हैं। (संस्कृतसाहित्यचरित्र १९४ पृ)

११ वीं ईसवी सदी में आन्ध्रमहाभारत के रचयिता नन्नयभट्ट महाकवि ने संस्कृतमहाभारत में किस किस पर्व में कितने श्लोक हैं - साफ साफ लिख दिया :- उसके अनुसार हरिवंश को छोड़कर ११७०० श्लोक हैं। पर्वें में श्लोकों का विभाजन देखिये :-

१. आदिपर्व	-	९९८४	श्लोक
२. सभापर्व	-	४३११	श्लोक
३. अरण्यपर्व	-	१३६६४	श्लोक
४. विराटपर्व	-	३५००	श्लोक
५. उद्योगपर्व	-	६९९८	श्लोक
६. भीष्मपर्व	-	५८८४	श्लोक
७. द्रोणपर्व	-	१०९१९	श्लोक
८. कर्णपर्व	-	४९००	श्लोक
९. शल्यपर्व	-	३२२०	श्लोक
१०. सौप्तिकपर्व	-	२८७४	श्लोक
११. स्त्रीपर्व	-	७७५	श्लोक
१२. शान्तिपर्व	-	१४५२५	श्लोक
१३. अनुशासनपर्व	-	१२०००	श्लोक
१४. अश्वमेधपर्व	-	४४२०	श्लोक
१५. आश्रमवासपर्व	-	११०६	श्लोक
१६. मौसलपर्व	-	३००	श्लोक
१७. महाप्रस्थानपर्व	-	१२०	श्लोक
१८. स्वर्गारोहणपर्व	-	२००	श्लोक

महाभारत श्लोक - ९९७००

(आ.म.भा.प्रथमा - ३४ - ६४)

इसके अनुसार भोजराज के समय ही आंध्रप्रदेशमें ९९,७०० श्लोकों का मूलमहाभारत नन्नयभट्टजी को प्राप्त हुआ । उत्तरभारत में हिमालयों में रचाहुआ जो महाभारत, दक्षिणदेश में नन्नय के हाथ में ९९,७०० श्लोकों के साथ मिला, वही किताब उत्तरभारत में भोजराज के हाथ में ३०,००० मात्र श्लोकों के साथ उपलब्ध होना विचित्र लगता है। आचार्य पिंगळि लक्ष्मीकांतंजी ने लिखा कि आन्ध्रभाषा में कवित्रयभारत, मूलसंस्कृतमहाभारत के बहुत ही निकटतम् है और इस बात को महाभारत संशोधितमुद्रण किये हुए विद्वानों ने मान लिया ।

यह मानने की बात नहीं है कि सुंदरकथावाले ग्रन्थ को और शिवमहिमा के कई उपासनाओं से भरे हुए शिवपुराण को जिन्होने रचा, उन पण्डितों के हाथ कटवाये, क्यों कि किसी दूसरे का नाम रख दिया ।

इसकी अपेक्षा यह कह सकते थे कि वहाँ (पुराणों में) व्यासजी का नाम हटाकर उन पण्डितों के नाम ही लिखाये और उनको काफी डांटकर छोडदिया ।

यह नामुमकिन है कि उन पण्डितों के हाथ कटवाने के बाद भी वे पुराण व्यासजी के नाम से ही व्यवहार में हैं और अठारह पुराणों में उन दोनों पुराणों के नाम, व्यासभगवान के कर्तृत्व में ही चल रहे हैं ।

आखिर में दर असलबात यह है कि उस संजीवनीग्रन्थ को श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी ने खुद देखा ही नहीं। उन्होंने सुना है कि किसीने उनसे कहा था कि आपने देखा था और विमर्श करने लगे हैं उस पर पूरा भरोसा करके ।

श्रीदयानन्दसरस्वती लिखते हैं कि ‘‘यह बात भोजराजकृतसंजीवनी

नामक इतिहासग्रन्थ में है । वह ग्रन्थ जो है ग्वालियर् राज्य के अंतर्गत बिण्डनगरवासी तिवारी ब्राह्मणों के घर में है । उस को लखुनराव् साहब और उनका नौकर (गुमास्ता) रामदयाल चौबेजी भी अपनी आँखों से देखे हुए हैं।'' (सत्यार्थप्रकाश - ११ स ३९१ पृ)

यह ताजुब लगता है कि भोजराज जैसे कविराज, पण्डितराज से लिखा हुआ इतिहासग्रन्थ प्रकाश में आया ही नहीं । भोजराजकृत संजीवनी नामक ग्रन्थ जब तक प्रामाणिक इतिहास माना नहीं जाता है तबतक विरुद्ध अंशों के साथ जुडी हुई यह कहानी प्रामाणिक मानी नहीं जा सकती । इस कथा के आधार पर विमर्श भी वैसा प्रामाणिक नहीं माना जायगा ।

१८. ज्योतिर्लिंग - तीर्थक्षेत्रविमर्श

परिशीलन

दयानन्दसरस्वतीजीने ज्योतिर्लिंगों का विमर्शन इस तरह किया :-

“शिवपुराण में बारह ज्योतिर्लिंग बताये गये हैं । उनमें कहीं भी ‘प्रकाश’ नाममात्र भी नहीं हैं । रात को और दिन में भी दीप नहीं जलानेसे लिङ्ग जो हैं दिखायी नहीं देते । (सत्यार्थप्रकाश - ४४९ पु)

जवाब : नाम में ‘ज्योति’ रहने से नहीं समझना है कि शिवलिङ्ग में ज्योति या प्रकाश है । दयानन्दसरस्वती नाम में दया ‘शब्द’ है । लेकिन लगता है उन में तनिक भी ‘दया’ नहीं है । उन्होंने लिखा कि भागवत आदि ग्रन्थों के रचयिता माता के पेट में ही क्यों न मर मिटे हैं ?’’ (सत्यार्थप्रकाश ४४१ पु) इसे हम ‘दया’ कह सकते हैं क्या ?

श्लो. ज्योतिर्लिंगानि यानीह मुख्य मुख्यानि सत्तम

(शिवपुराण, कोटिरुद्रसंहिता १६-२० श्लो.)

(हे श्रेष्ठ, यहाँ के ज्योतिर्लिंग बहुत ही मुख्य हैं इसी ख्याल से ज्योतिर्लिंग नाम बन गया । इसलिए यह आक्षेप उचित नहीं है कि उन में ज्योति (प्रकाश) दिखायी नहीं देता है ।

तीर्थक्षेत्रविमर्श

श्री स्वामीजी का वाक्य : सारे तीर्थ पांच सौ साल से पुराने नहीं, पांच सौ साल के बाद के ही हैं । नहीं तो किसी हालत में एक हजार साल से परे नहीं, लिखितशासनों के अनुसार उससे बढकर नहीं । (सत्यार्थप्रकाश-४३१पु)

श्रीमद्रामायण में वाल्मीकिमहर्षि का तीर्थस्नान साफ साफ दिखायी देता है (बालकाण्ड २ सर्ग २० श्लो.) गङ्गाजी को पार करती हुए सीताजी गङ्गाजी को प्रणाम करती है । पढिये :

श्लो. यानि त्वत्तीरवासीनि
दैवतानि वसन्ति च
तानि सर्वाणि यक्ष्यामि
तीर्थान्यायतनानि च-हे गंगा, आपके किनारे पर जो देवताएँ हैं तीर्थ हैं क्षेत्र हैं, उन सबको मैं प्रणाम करती हूँ ।

यहाँ मणिकर्णिका प्रयाग आदि तीर्थों को काशी जैसे क्षेत्रों की अर्चना करने का प्रस्ताव हैं और उनके उदाहरण भी व्याख्याकारों ने दिखाये । (रामायण - अयोध्या ५२ स ९० श्लो. व्याख्या)

इस से साबित हेता है कि नदीगौरव, तीर्थ, क्षेत्र सब रामायणकाल में ही थे ।

आक्षेप : स्वामीजी का मतलब यह था कि तीर्थों से पाप नहीं मिट जाते हैं । अगर पाप मिट जाते, गरीब धनवान बनते अन्धे लोग दृष्टि शक्ति को पा सकते । ऐसे ही कुष्ठुरोगी भी नीरोगी बनजाते । इस तरह नहीं हो रहा

है । इसलिए तीर्थ, क्षेत्र आदियों से पाप नहीं मिट जाते हैं ।

जवाब : ब्रह्मसूत्रों में ''तदधिगम उत्तरपूर्वाघयो रश्लेषविनाशौ तद् व्यपदेशात्'' - इस सूत्र से समझ सकते हैं कि ज्ञान से संचित कर्मों का नाश होता है, लेकिन आगामि कर्म, ज्ञानी को नहीं छू सकते । (ब्रह्मसूत्र ४ अ १४१, १३, १५ सूत्र) प्रारब्धकर्म जो हैं भोगने के बिना मिटता नहीं । आर्योक्ति यह है कि ''प्रारब्धं भोगतो नश्येत्'' प्रारब्धकर्म को भोगना ही पड़ता है ।

हम देखते हैं कुछ गरीबों को परिश्रम करने से धन प्राप्त होता है । वैद्यों की कृपा से अन्धे लोग देख पाते हैं । कुष्ठ रोग (लेप्रसी) भी ठीक होता है । तब हमें समझना चाहिए कि ये सब प्रारब्धकर्म नहीं हैं । कुछ लोग बीमार ही रहते हैं दवाखाने से भी फायदा नहीं होता है । वे सब प्रारब्धकर्म हैं । अगर कोई भी पाप किसी से धुल नहीं जाता है तब धर्मशास्त्रग्रन्थों में जितने भी प्रायश्चित्त हैं, वे सब विफल हो जाते ।

श्रीमद्रामायण में ''विष्णुपादच्युतांदिव्यामपापां पापनाशिनीम्'' कहदिया कि गंगाजी पाप का नाश करती है (अयोध्या ५० स २४ श्लो.) अर्थात् संचितपाप का ही क्षय होता है ।

१९. भागवतविमर्श

परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी भागवत में सृष्टि का विमर्श इस प्रकार करते हैं :-

भागवत के अनुसार विष्णुभगवान् के नाभि से कमल, कमल से ब्रह्माजी. ब्रह्माजी के दाहिने पैर की अंगूठे से स्वरूपाराणी, ललाट से रुद्र, मरीचि आदि दस कुमार उनसे दस प्रजापति पैदा हुए थे । प्रजापतियों की तेरह कुमारियों से कश्यप प्रजापति की शादी हुई । उनमें से दिति से दैत्य, दनु से दानव, अदिति से आदित्य, विनता से पक्षीगण, कद्रू से सांप, सरमा से कुत्ते, स्वाहा - आदि दूसरी युवतियों से हाथी, घोडे, ऊँट, गधे, भैस, घास, नुकीले पेड़ पौधे पैदा हुए ।

ओह, हाथ, भागवत के ग्रन्थकर्ता मायावी क्या कहना है ? ऐसी झूठी बातें लिखने में आप तनिम कभी शर्मिंदे नहीं होते । आप की आंखे बंद होगयी क्या ? स्त्री और पुरुष - दोनों के संगम से रज और वीर्यकण के मेलन से मनुष्य का पैदा होना स्वाभाविक है । लेकिन ईश्वर के सृष्टिक्रम के खिलाफ पशु, पक्षी और सांप कभी भी पैदा नहीं हो सकते । फिर, हाथी, ऊँट, सेर, कुत्ता, गधा, पेड इत्यादि औरत के पेट में कैसे समा सकते हैं ?.... ऐसे भागवत जैसे ग्रन्थकर्ता क्यों मर मिट नहीं गये ? जन्मते ही क्यों नहीं चल बसे? - इस तरह दयानन्दजी का विमर्श चला आया ।

परिशीलन : जीव (प्राणी) जिस जाति के हो उसी जाति के जीवें का उन से पैदा होना स्वाभाविक है । लेकिन यह नियम नहीं है कि दूसरे जाति के प्राणी पैदा नहीं होते । उस तरह की पैदाइश कभी कभी होती है । घोड़ी और गधे के संपर्क से दोगला पैदा होता है । आजकल वैज्ञानिक संकर जाति के पशु पक्षी और धान को भी पैदा करते हैं । प्रकृति को देखते हुए आदमी विज्ञान को आगे बढाते हैं ।

अब जैसा ही पहले भी जीव (प्राणी) नहीं रहते थे, ऐसी भ्रान्तधारणा से स्वामीजी को भागवतकार की निन्दा नहीं करनी चाहिए ।

जीवशास्त्र के अनुसार सब से पहले पैरंप्रोटोजोवा नामक प्राणी रहा । उस से अमीबा पर्मिषियम् वर्धि से नामक प्राणी निकले । इन में से पैरं प्रोटोजोवा और अमीबा के विषय में मादा और मर्द का अन्तर नहीं था । पेर्मिषयं में यह भेद आया । डार्विन् सिद्धान्त के अनुसार पैरं प्रोटोजोवा ही परिणाम क्रम से सब तरह के जीवों के रूप में परिवर्तित हुआ । सारे प्राणी तीन करोड़ पचासी लाख साल पहले ही रहते थे - इस का प्रमाण नेचर नामक वैज्ञानिकपत्रिका है वार्तापत्रिका (७-११-१९९६) कई करोड़ साल पहले जो बीत गया उसे डार्विन् ने एक तरह से सोचा था । भागवतकर्ता ने दूसरे ढंग से कहा था । इन दोनों ने कहा कि एक ही स्रोत से सब तरह के जीवराशि निकले हैं । हमको नहीं समझना है कि एक जाति की स्त्री से दूसरी जाति की स्त्री निकली तो वह स्त्री आजकल स्त्री के बराबर है या अब पैदा हुआ प्राणी उसी नाम के प्राणी के बराबर है । एक जाति के प्राणी से उसी जाति के प्राणी निकलने का शास्त्रनियम नहीं है । जीवशास्त्र और डार्विन् सिद्धान्त भी उस के खिलाफ ही बोलते हैं । इस बात को भौतिक शास्त्रवादी भी मानते हैं ।

यह अंदाज से कहने की बात है कि परमेश्वर ने संसार की सृष्टि की। परमेश्वर की सृष्टि में आदमी ने रैलगाडी हवाईजहाज और नौकाओं का निर्माण किया। परमेश्वर की सृष्टि में दो जातियों के संयोग से नयी जातियों का सृजन हो रहा है। उदाहरण केलिए घोडी और गधे के संयोग से दोगला पैदा होता है। उसी प्रकार पसमेश्वर की कृपा से कश्यप प्रजापति अपनी पत्नियों में तरह तरह के जीवजन्तुओं का सृजन किया - यही बात भागवत में मिल रही है।

इसलिए इस सिलसिले में भागवतकर्ता की निन्दा नहीं करनी चाहिए।

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी वेदभाष्यभूमिका में पुरुषसूक्तमन्त्रों की प्रस्तावना करके लिखा है कि परमेश्वर ही सारे संसार का सृष्टिकर्ता। सब कुछ सारे संसार में उस परमपिता परमेश्वर से ही निकला है।

तैत्तिरीयशाखा में आठ जगहों पर ''प्रजाःसृष्ट्वा'' है। दो जगहों पर ''प्रजापतिः पशूनसृजत'' है। इन वाक्यों का अर्थ, ''प्रजापति ने प्रजाओं का देव और असुरों का और जानवरों का सृजन किया''।

(२-४-४-१, ५-१-८-९, ६-६-४-१२, ६-६-५-१, ७-२-४-१, ७-५-८-११, ५-५-२-१, ३-३-७-१, २-५-९-१३, २-४-४-६) तैत्तिरीयशाखा में ही ''प्रजापतिरकामयत, प्रजाः सृजेयेति, स तपोऽतप्यत, स सर्पानसृजत, सोऽकामयत प्रजाः सृजेयेति, स तृतीयमतप्यत, स एतं दीक्षितवादमपश्यत्, ततो वै स प्रजा असृजत'' (३-१-१) पहले प्रजापति ने प्रजाओं की सृष्टि को चाहता हुआ दो बार तपस्या की। दीक्षितवाद का आचरण नहीं किया। इसलिए तपस्या में कमी आयी। सांपों की और पक्षियों की सृष्टि की। फिर भी उत्तम, मानव जो है उन की रचना नहीं की। तीसरे दफा दीक्षितवाद से

तपस्या करने से मानवों की सृष्टि की - इस प्रकार उन्होंने अपने से रचे हुए जीवें का विवरण कुछ हद तक बताया ।

भागवत में पुरुषसूक्त का अर्थ द्वितीयस्कन्ध छठे अध्याय में बताया गया । इतिहास और पुराणों से वेदार्थ का उपबृंहण अर्थात् विस्तार करना चाहिए - यही मुनियों का मतलब रहा । 'इतिहासपुराणाभ्यां वेदार्थमुपबृंहयेत्' - यह मुनिवाक्य है । ऊपर तैत्तिरीयवाक्यों में कहा गया कि प्रजापति ने सृष्टि की रचना की । अर्थात् प्रजापति ने तपस्या करके सृष्टि की रचना की ।

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी कहते हैं कि प्रजापति पुरुष इत्यादि वचन सब एक ही परमेश्वर को बतलाते हैं क्यों कि वे, एक निराकार ईश्वर के उपासक थे । फिर भी हमारे ख्याल से यह कहना ठीक नहीं कि परमेश्वर ने तपस्या करके सृष्टि की रचना की । इस की अपेक्षा "ब्रह्मसृष्टि में जो कश्यप प्रजापति थे उन्होंने तपस्या करके परमेश्वर की कृपा से सृष्टि की" - ऐसा कहना उचित प्रतीत होता है । इसलिए भागवत में कश्यप प्रजापति और उनकी पत्नियों की कथा को बताया । भागवत भी वेद के अर्थ को ही कहता है, इसलिए भागवतकर्ता की निन्दा करना ठीक नहीं है ।

शतपथब्राह्मण में एक वाक्य है 'तस्मात् काश्यप्य इमाः प्रजाः' (इस वजह से सारी प्रजाएँ काश्यपी हैं अर्थात् कश्यपप्रजापति के हैं) इस का अर्थ श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी निरुक्त के आधार पर लगाते हैं, जैसे ("कश्यपः कस्मात् पश्यको भवतीति निरुक्त - अ २ खं ।) पश्यक माने पश्य, पश्य ही पश्यक अर्थात् भ्रम के बिना सारे कर्मों का सकलविद्याओं को यथावत् देखते हैं । इसलिए सृष्टिकर्ता परमेश्वर ही कश्यप नाम से विख्यात हैं .... और भी लिखते हैं कि जो इस तरह अर्थ समझते नहीं, वे भंग पीकर पागल होकर

सृष्टिक्रम का विरुद्ध व्याख्यान करते हुए अपना जन्म बेकार गवाते हैं।

'कश्यपः पश्यको भवति यत् सर्वं परिपश्यतीति सौक्ष्म्यात्' सूरज ही रूढि से कश्यप कहलाता है। बहुत ही सूक्ष्मदृष्टि से दिव्यदृष्टि से भूत और भविष्य देखने की वजह से पश्यक ही कश्यप होता है - यह तैत्तिरीयारण्यक के अनुसार है (१-८-८)।

सूरज के किरणों से सृष्टिक्रम हुआ है - इसी बात को भागवतकर्तानें ''कश्यप और उनकी पत्नियोंने सृष्टिक्रम को बढाया'' लिखा है। इस का ध्वन्यर्थ ही सूर्य से सृष्टिक्रम की बात हो सकती है। इसलिए 'कश्यप' शब्द का अर्थ परमेश्वर ही कहना जरूरी नहीं। एक सूर्य ही कश्यप है।

इसलिए भागवत में जो बात है कि कश्यप प्रजापति से सृष्टि निकली है - वह निन्दनीय नहीं।

२०. " बोपदेव भागवतकर्ता "

परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी, बोपदेव को ही भागवतकर्ता के रूप में मानते हुए, इस प्रकार लिखते हैं :-

गीतगोविन्दकर्ता जयदेवकवि के भाई बोपदेवने इस भागवत की रचना की । बोपदेवने इस बात को स्वरचित हेमाद्रि नामक ग्रन्थ में लिखा कि भागवत पुराण (सूची) उनकी अपनी रचना है । इस सिलसिले में उनके दो श्लोकों को हम यहाँ दिखा रहे हैं :-

श्लो. हेमाद्रेः सचिवस्यार्थे सूचना क्रियतेऽधुना
स्कन्धाध्यायकथानाञ्च यत्प्रमाणं समासतः
श्रीमद्भागवतं नाम पुराणं च मयेरितम्
विदुषा बोपदेवेन श्रीकृष्णस्य यशोऽन्वितम् ।।

परिशीलन : ऊपर श्लोकों का भाव यह है कि हेमाद्रिनामक मन्त्री केलिए श्रीमद्भागवत के स्कन्ध अध्याय कथा - इनका संग्रह और प्रमाण, विषय सूचिका के साथ मैंने किया । मैं विद्वान् बोपदेवे हूँ श्रीकृष्ण कीर्तिसमन्वित भागवत का प्रवचन हमने किया । पहले श्लोक में कहा गया कि भागवत में स्कन्ध, अध्याय और कथाओं का परिमाण है । श्रीमद्भागवत में १२वे स्कन्ध

में १२वे अध्याय में भागवत की विषयसूची है और १३वे अध्याय में नवम श्लोक में श्लोकसंख्या भी है। उसी का विवरण बोपदेवजीने किया।

दूसरे श्लोक में है कि बोपदेवने भागवत प्रवचन किया। भागवतप्रवचन अलग और रचना अलग। कई पंडित भागवतप्रवचन करते हैं। वे सब भागवतकर्ता नहीं।

श्रीदयानन्दसरस्वती बोपदेव के और श्लोकों को प्रमाण के रूप में दिखाते अच्छा होता। उन श्लोकों का भाव लेकर स्वामीजी सिर्फ इन दो श्लोकों को ही क्यों लिखते हैं ? पता नहीं।

श्रीदयानन्दसरस्वती और लिखते हैं :-

''जो खोये हुए पत्र हैं उनमें श्लोक इस प्रकार हैं :-

राजा का मन्त्री हेमाद्रि भी पंडित बोपदेवजी से कहते हैं कि मुझे पूरा भागवत सुनने को मन लगता है। इसलिए संक्षेप में श्लोकों के रूप में विषयसूचिका तैयार कीजिये। उसे देखकर भागवतकथा को हम समझने की चेष्टा करेंगे। उन की (मन्त्रिवर हेमाद्रि की) बात मानकर बोपदेवजी ने विषयसूचीपत्र बनाया। खोये हुए पत्र से नौ श्लोकों को इस में शामिल करना चाहिए था। दसवे श्लोक से इस में दिये हुए हैं। ये सब बोपदेवजी के हैं।

श्लो. बोधयन्तीति हि प्राहुः श्रीमद्भागवतं पुनः
पंच प्रश्नाः शौनकस्य सूतस्यात्रोत्तरं त्रिषु ... इस प्रकार सात श्लोकों में प्रथमस्कन्ध के कथांशों को समझाया। ऊपरी श्लोक का भावार्थ यह कि भागवतबोधन चालू किया है इस में शौनक के पांच सवाल हैं। तीन प्रश्नों के जवाब यहाँ हैं। शौनकजी के पांच सवाल हैं।

परिशीलन : श्रीमद्भागवतप्रारम्भ में ऋषियों के छे प्रश्न हैं ।

१. **तत्र तत्रांजसायुष्मन् भवता यद् विनिश्चितम्**

पुंसामेकान्ततः श्रेयः तन्नः शंसितुमर्हसि । (१ स्कं १अ ९श्लोक)

पुराणों में मानवमात्र केलिए शीघ्र ही श्रेय का साधन आपके मतलब से जो है उसको समझाइये ।

२. **अतस्साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया**

ब्रूहि भद्राय भूतानां येनात्मा संप्रसीदति । (१स्कं १अ ११श्लोक)

सुनने योग्य कई चीजें हैं । उन में से जो सारांश है जिससे मन प्रसन्न हो जाता है, उन में से जो सार है उसको आप अपनी बुद्धि लगाकर प्राणियों का कुशल मङ्गल प्राप्त करने केलिए बता दीजिये ।

३. **सूत जानासि भद्रं ते भगवान् सात्वतांपतिः**

देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य चिकीर्षया

तन्नः शुश्रूषमाणाना मर्हस्यंगानुवर्णितुम् ।

सूतजी, आपको मङ्गल होवें । भक्तों के अधिनेता भगवान् जो है जिस कार्य को साधने केलिए वसुदेव की पत्नी देवकी में जन्म लेते हैं - आप जानते हैं, हम को सुनने केलिए दिलचस्पी है; आप उसका वर्णन कीजिये ।

४. **तस्य कर्माण्युदाराणि परिगीतानि सूरिभिः**

ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः । (१स्क १अ १७,१८श्लो)

भगवान् जो हैं अपनी लीला से ब्रह्मा व रुद्र आदि मूर्तियों का धारण करते हैं उनकी औदार्यपरिपूर्ण महाकर्मों का, नारदादि मुनि लोग, गान करते हैं । श्रद्धा

के साथ हम सुन रहे हैं, उन लीलाओं को हमें सुनाइये ।

श्लो. कृतवान् किल कार्याणि रामेण सह केशवः
अतिमर्त्यानि भगवान् गूढः कपटमानुषः ।

(१स्कं १अ २०,२१ श्लोक)

गूढ, (छिपाहुआ) मायामनुष्य भगवान् केशव, बलभद्र के साथ मानवातीत कार्य जो कुछ किये हैं उनको बताइये ।

५. **अथाख्याहि हरेः धीमन् अवतारकथाश्शुभाः ।** (१स्कं १अ १८श्लोक)
हे बुद्धिमन्, अपनी माया से राक्षससंहार आदि लीलाओं के कर्ता होकर जो कथा (उपाख्यान, चरित्र) कर चुके हैं, उन अवतारकथाओं को सुनाइये ।

६. **ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि**
स्वां काष्ठामधुनोपेते धर्मः कं शरणं गतः ।
श्रीकृष्णभगवान् जो हैं धर्म का कवच (संरक्षक) थे; ऐसे महान् पुरुष अपनी निजी स्थान जब पहूँचते हैं धर्म, किसके शरण में आया ?

इस तरह ऋषिमुनियों के छे प्रश्न दिखायी देते हैं। अन्वितार्थप्रकाशिका नामक व्याख्या के रचयिता श्री गंगासहायजी भी छे प्रश्नों की गिनती करके रखे हैं। (१स्कं १अ २३ श्लोक व्याख्या) एवं छे प्रश्न जब मिलते हैं तब पांच ही प्रश्न बोपदेव के श्लोक में हैं। भागवत के अनुसार ऋषियों ने सवाल पूछे। बेपदेव के श्लोकों के अनुसार शौनकजीने पूछा। (भागवत १प्र १अ ६श्लो.) ऊपर श्लोकों का कर्ता एक ही है तो इस तरह फरक नहीं होना चाहिए । इसलिए भागवतकर्ता बोपदेव नहीं हो सकते ।

श्री मल्लादि सूर्यनारायण शास्त्री जी अपने संस्कृतवाङ्मयचरित्र में

लिखते हैं कि श्रीमद्भागवत बोपदेवरचित बिलकुल नहीं है। वे हमें समझाते हैं कि क्री.श. १२७१-१३०९ समय में रामराज, देवगिरि राज्य का पालन करते थे। उन का दूसरा नाम था रामचन्द्र। उन के दरबार में हेमाद्रिनामक ब्राह्मण महामंत्री के रूप में काम करते थे। उनका दोस्त बोपदेव नाम के पंण्डित थे। उस समय बोपदेव नामक पण्डित ने मुक्ताफलनामक ग्रन्थ और कैवल्यदीपिका नामक उसकी व्याख्या भी रचा, उस को होमाद्रि नामांकित किया। उस ग्रन्थ में भागवत में सारे स्कन्धों में विष्णुलक्षण, विष्णुभक्ति, और विष्णुतत्त्व सब कुछ समझने की चेष्टा की। ब और व के बीच में भेद नहीं मानने से बोपदेव और वोपदेव भी कहते हैं। ऐसे ही हिमाद्रि, हेमाद्रि दोनों चलते हैं। ये बातें मूलग्रन्थ और उसकी व्याख्या में स्पष्ट हैं।

श्लो. विद्वद्धनेशशिष्येण भिषक्केशवसूनुना
हेमाद्रिः वोपदेवेन मुक्ताफलमचीकरत्
तेन मुक्ताफलं तेने यल्लोकमनुगृह्णता
तत्र टीकां यथाबुद्धि कुर्वे कैवल्यदीपिकाम्।

इह च स्वकर्तृकेऽपि यदुराजमहामंत्रिणाभ्यर्दितः आचार्यः (वोपदेवः) तत्कर्तृकत्वं (हेमाद्रिकर्तृकत्वं ख्यापितवान्) भले ही दोनों के नाम दोनों ग्रन्थों में दिखायी देते हैं, फिर भी दोनों का कर्ता बोपदेव ही है। इससे बिलकुल स्पष्ट है कि बोपदेव का काम इतना ही था कि भागवत के श्लोकों का उद्धार करके विषयसूची का निर्माण करना और मुक्ताफलनामक ग्रन्थ की रचना करना''... (संस्कृतवाङ्मयचरित्र ७६, ७७ पृष्ठ)।

वाविळ्ळ रामस्वामि शास्त्रीजी ने १९२७ में जिस भागवत का प्रकाशन किया, वहाँ शुरूआत में श्री दंपूरु वेंकटसुब्बशास्त्रीजी ने अपनी सिद्धान्तचन्द्रिका

में कहा कि बोपदेव ने मुक्ताफलग्रन्थटीका के आखिर में अधोलिखितश्लोक को प्रस्तुत किया :-

श्लो. यस्य व्याकरणे वरेण्यघटनाख्याताः प्रबन्धा दश
प्रख्याता वरवैद्यकेषु तिथिभिः व्याख्यास्तथा षोडश
साहित्ये त्रय एव भागवततत्वोक्तेः त्रयस्तस्य तु
ह्यन्तर्वाणिशिखामणेरिह गुणाः के के न लोकोत्तराः ।।

किं च तत्रैव श्रीमद्भागवतग्रन्थः व्दाविंशतिवारमधीत इति... तेनैव बोपदेवेन प्रतिपादितम् । (सिद्धान्तचंद्रिका ९ पु) अर्थात् पण्डितवर बोपदेवजीने श्रेष्ठव्याकरणग्रन्थ दस,वैद्यशास्त्रमें १५, व्याख्यानग्रन्थ १६, साहित्य में तीन, भागवततत्त्व समझने केलिए ३ लिखे हैं। ऐसे पण्डितप्रवर के गुण, लोकप्रख्यात हैं।

बोपदेव ने खुद कहा है कि श्रीमद्भागवत को उन्होने २२बार अध्ययन किया ।

इससे साफ साफ समझमें आया कि भागवतकर्ता बोपदेव नहीं थे, उन्होंने भागवततत्त्वख्यापन केलिए तीन ग्रन्थ लिखे हैं। १) भागवताध्यायसार, २) भक्तिमुक्ताफल और ३) भक्तिलहरि - इस बात को श्रीसुब्बाशास्त्रीजीने विस्पष्ट किया ।

इसलिए यह गलतबात है कि भागवत का कर्ता बोपदेव थे ।

२१. भागवतपुराण में दोष

परिशीलन

और दयानन्दसरस्वतीजीने भागवत का विमर्श इस प्रकार किया :-

१. ब्रह्माजी ने श्रीमन्नारयण से भागवतचतुश्श्लोकी को उपदेश के रूप में ग्रहण किया :-

श्लो. ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ।

(भागवतद्वि. स्कं ९अ ३०श्लोक)

इस श्लोक का विमर्श श्रीदयानन्दसरस्वतीजी इस तरह करते हैं :-

"हे ब्रह्मा, जो परमगोप्यज्ञान है उसे विज्ञानरहस्यों के साथ तुम, हम से ग्रहण करो, वह धर्मार्थकाममोक्ष - चार पुरुषार्थों का अंग है ।

यहाँ ज्ञान को विज्ञानरहस्यों के साथ बताया, फिर से परमशब्द को ज्ञान के विशेषण के रूप में रखना बेकार है । ऐसा ही 'गुह्य' विशेषण जब, है ही, तब 'रहस्य' शब्द का उपयोग करना बेकार । यह पुनरुक्ति है। इस प्रकार जब मूलश्लोक ही व्यर्थ है तब वह भागवतग्रन्थ व्यर्थ क्यों नहीं होगा?" (सत्यार्थप्रकाश - ४४७ पु)

परिशीलन : इस का, अन्वितार्थप्रकाशिका टीका के अनुसार भावार्थ अधोलिखित है :-

यत् परमगुह्यं मे ज्ञानं = जो ज्ञान परमरहस्य है वह मेरा ही ज्ञान है वह शास्त्र के प्रमाण से समझने योग्य है ।

विज्ञानसमन्वितम् = अनुभवज्ञान के साथ जुड़ा हुआ है सरहस्यम्- भक्ति के साथ संयुक्त है । तदङ्गञ्च = ज्ञान का साधन भी, मया गदितम् = मुझ से कहा गया है उसको, गृहाण = ग्रहण करो । शास्त्र में जो है वह ज्ञान है, उसमें भगवान् के साथ जो जुड़ा हुआ है वह परमगुह्य है = ज्यादा गोपनीय है। भगवान् की कृपापात्र होने का साधन भक्ति जो है वह और एक रहस्य है। इस तरह समझने से स्वामीजीने पुनरुक्ति का जो दोषारोपण किया वह नहीं है, गलत है ।

२. स्वामीजी से किया हुआ दूसरा दोषारोप "ब्रह्माजी को वरदान"

श्लो. भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्

(भागवत स्कं २, अ ९, श्लोक ३६)

इस का अर्थ यह है कि आप, सृष्टिकार्य में और प्रलय में भी मोह को प्राप्त नहीं करोगे । लेकिन दशमस्कन्ध में लिखा है कि वही ब्रह्माजी विष्णुमाया से मोहित होगये और वत्सापहरण करते हैं (गायों के बछड़ों को गायब किया) फिर हार गये इन दो वचनों में एक सत्य है और दूसरा असत्य है तो हम को समझना है कि दोनों असत्य हैं। यही इन का वाद है (सत्यार्थप्रकाश ४४७ पु)।

परिशीलन : उस का पूरा अर्थ बतानेवाला श्लोक यहाँ नीचे है :-

श्लो. एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ।

(मन की एकाग्रता से मेरा मतलब जो है उस का हमेशा चिन्तन करते रहो । ऐसा करोगे तो तरह तरह की सृष्टियों में और अवान्तर कल्पों में व्यामोहित

नहीं हो पाओगे ।) ब्रह्मदेव किस का अनुचिन्तन करेंगे ? चतुश्श्लोकी भागवत में नारायण का उपदेश जो है उस का करना चाहिए - यह सूचना इस श्लोक के ऊपर है । वे चारश्लोक और अर्थ इस प्रकार हैं :-

१. **श्लो. अहमेवासमेवाग्रे नान्यत् यत् सदसत् परम्**
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ।

(सृष्टि के पहले मैं ही था, स्थूल, सूक्ष्म और उन से परे प्रधान - इन में से मुझ से कुछ भी अलग नहीं है । सृष्टि के बाद भी में ही रहता हूँ । यह सारा संसार भी मैं ही हूँ मुझसे अलग नहीं । सृष्टि के बाद भी मैं ही रहता हूँ । प्रलयकाल के बाद जो बचता है वह मैं ही)

२. **श्लो. ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि**
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाभासो यथातमः ।

(भले ही असलियत में नहीं है फिर भी आत्मा में जो गोचर होता है, फिर जो है वास्तव में वह गोचर नहीं होता है वही मेरी माया है । उदा : आँख में बीमारी की वजह से दो चांद लगते हैं । अंधेरे में घर में चीजें दिखायी नहीं देती हैं ।)

३. **श्लो. यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु**
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ।

(पांच महाभूत जो हैं उन से बनी हुई सारी चीजों में सृष्टि के बाद उन में दिखायी देती हैं इसलिए लगता है कि महाभूत उन में घुस गये हैं । उन चीजों के कारण महाभूत हैं ही, उन से अलग भी हैं, वे महाभूत, वास्तव में उन में प्रविष्ट नहीं होते। ऐसा ही महाभूतों में और उन से बनीहुई सारी चीजों में मैं रहता हूँ लेकिन इसी वजह से मैं उनमें प्रवेश नहीं करता हूँ ।)

४. **श्लो. एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनात्मनः**
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा ।

(आत्मतत्त्व को जो जानने के इच्छुक हैं उस को इतना ही विचार करना चाहिए। कार्यों में कारण का रहना अनुवृत्ति है, कारणावस्था में कारण जो है वह कार्यों से अलग होना व्यतिरेक है । इस तरह अन्वय और व्यतिरेक दोनों से जो हमेशा रहता है सब जगह रहता है वही आत्मा है ।) (श्रीमद्भागवत २स्कं ९अ ३२,३३,३४,३५श्लोक)

इसी उपदेश को निरंतर जो चिन्तन करेगा, वह माया से मोहित नहीं होगा । - इतना ही भगवान् का वचनसारांश है । अघासुर के अंदर घुसेहुए और मरे हुए ग्वाले बच्चों को श्रीकृष्ण ने फिर से जिलाया । अघासुर का संहार किया, अघासुर का दिव्यतेज श्रीकृष्ण में विलीन हो चुका । यह देखकर ब्रह्मा विस्मित रह गये । इस आश्चर्य से वे भूल गये कि भूत, भविष्य और वर्तमान में भगवान् एक ही है । तब श्रीकृष्ण की लीला और महिमा को परखने केलिए गाय के बछड़ों को और उन के संरक्षक बालकों को ब्रह्माजी ने गायब कर दिया ।

अगर परमात्मतत्त्व और मायाप्रभाव ब्रह्माजी याद रखते उनको अचरज नहीं होता । अगर ताजुब नहीं लगता तब उनकी महिमा को देखने केलिए ब्रह्माजी बछड़ों का अपहरण नहीं करते । इस में असत्य कुछ भी नहीं । श्री दयानन्दसरस्वती पूरे सन्दर्भ को ठीक से पढते समझते, एक ही श्लोक को पकड़कर भ्रान्ति के वश में नहीं आते ।

श्रीस्वामीजी का और एक विमर्श देखिये : -

वैकुण्ठ में राग, क्रोध, ईर्ष्या, दुख इत्यादि नहीं है न । अगर वहाँ भी यही हालत है तो वैकुण्ठ की महिमा क्या है? अगर ईर्ष्या और क्रोध इत्यादिक नहीं रहते सनकादिक मुनिवरों को गुस्सा क्यों आया? अगर क्रोध आता तो वह वैकुण्ठ कैसे होगा? - यह उनका आक्षेप है । (सत्यार्थप्रकाश ४४३ पृ)

परिशीलन : वैकुण्ठ में क्रोध नहीं होता है क्या? कौन बोले हैं? कहाँ लिखा है? तीन कालों में जो है वह एक ही परमात्मा है । फिर भी माया के वश में क्रोध आदि उत्पन्न होते ही हैं । ऐसा ही वैकुण्ठ में भी हो सकता है । जहाँ क्रोध है वहाँ वैकुण्ठ नहीं - समझना स्वामीजी का चिन्तन मात्र है । सत्य नहीं । भगवान् के भक्तों को भगवान् के दर्शन होने के समय उसकी रुकावट है, तो गुस्सा क्यों नहीं आता?

श्लो. ऊचु :- सुहृत्तमदिदृक्षितमङ्ग ईषत्
कामानुजेन सहसा त उपप्लुताक्षाः

(अपने प्रियतम भगवान् के दर्शन करते की प्रबल इच्छा को रोकने से सनकादिकमुनिवर थोड़ासा गुस्से में आ गये । श्रीमद्भागवत - ३स्कं १५अ ३१श्लोक । यहाँ स्वामीजी का ऊहाचित्र केवल यहाँ तक है । दयानन्दजी का और एक विमर्श है :-

जय और विजय जब द्वारपालक थे तब स्वामी (मालिक श्रीमन्नारायण) का आज्ञापालन करना उनका कर्तव्य रहा । तब सनकादिक मुनिवरों को रोकना उनका कसूर कैसे होगा? अगर उनका कसूर ही नहीं शाप कैसे लगेगा? यह उनका मतलब रहा (सत्यार्थप्रकाश ४४४ पृ) ।

परिशीलन : विष्णुभगवान् ने सनकादि मुनियों को बाहर रोकने केलिए हुकुम जारी नहीं किया । दरवाजा के पास रहकर, जिन को अनुमति प्राप्त है उनको अंदर जाने देना उनका फर्ज रहा । जिनको अनुमति प्राप्त नहीं, उनको वही रोकना उनका काम था । जब सनकादिक ऋषिवर आये तब उनको अंदर भेजने की अनुमति केलिए विष्णुभगवान् से पूछना उनका काम था । लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया ।

महायोगी सनकादि मुनिवर, छे प्राकारों को पारकर अपनी अनुमति के बिना सात्वे मंजिल में प्रवेश कर गये इसीलिए द्वरपाल जय और विजय

दोनों को गुस्सा आया । सनकादिक भले ही ज्ञानवयोवृद्ध थे, तथापि आत्मतत्त्व ज्ञानवाले भले ही थे, तथापि पांच साल के बच्चे जैसे लगते थे । जय और विजय उनकी महानता को नहीं जानते हुए डंडा दिखाकर उनको रोकने लगे।

राजा के दरवाजा के पास जो द्वारपालक हैं उनको चाहिए कि ऐसे लोगों को रोके जैसे राजा को कोई आपत्ति हो न पावें । भगवान् को तो दुश्मनों से कोई आपत्ति थी ही नहीं । मामूली तौर से आम जनता को छे दरवाजे पारकर सातवे तक आजाने की उम्मीद है कहाँ? तब विवेक के बिना सोच विचार के बिना द्वारपालकों से सनकादिक मुनिवरों को रोकदिया और उनको शाप मिलने में गलती तो है ही नहीं ।

स्वामीजी का और एक विमर्श इस प्रकार है :-

''सनकादिक मुनियों ने शाप दिया कि भूमि के ऊपर जाइये, अर्थात् वहाँ भूमि है ही नहीं । फिर, वायु, अग्नि, जल ही वहाँ थे तो, वहाँ मन्दिर और उनके दरवाजे कहाँ टिकते थे? - यह उनका सवाल था । (सत्यार्थप्रकाश ४४४ पृ)

जवाब : भूमि की आकर्षणशक्ति की परिधि को पार करने के बाद भी प्राणी (मनुष्य) आसमान में रह सकते हैं । तर्कसंग्रह में कहा है कि वरुणलोक में जलप्रधानदेहवाले, वायुलोकमें वायुप्रधानदेहवाले, सूर्यलोक में तेजोप्रधान शरीरवाले रहते हैं । (तर्कसंग्रह-प्रत्यक्षपरिच्छेद) आधुनिकशास्त्रवेत्ता भी खोज रहे हैं कि दूसरे खगोळों में प्राणी कहाँ हैं और कैसे हैं? वार्तापत्रिकाओं में खबर एलक्ट्रानिकमाध्यम से मिलरहे हैं । और पत्रिकाओं में खबरें हैं कि ऊपर उडती थालियों में दूसरे गोळकों से प्राणी हमारी जमीनपर उतर आये, और इसके सबूत भी मिल रहे हैं । इस प्रकार सोचा ज़ाय तो वैकुण्ठ में भले ही भूमि नहीं है मन्दिर जरूर हो सकते हैं ।

स्वामीजी का दूसरा विमर्श इस प्रकार है :-

जय और विजय भगवन्नारायण के नौकर थे । उन को सहयोग देना और उन की रक्षा करना श्रीमन्नारायण का कर्तव्य रहा । अपने सेवकों को किसी अपराध के बिना जो दण्ड देते हैं, अगर ऐसे लोगों को उनका मालिक दण्ड देता ही नहीं प्रत्युत अपने लोगों को सजा देता है, इस हालात में नौकरों को कोई भी आदरणीय आदमी, तंग करेगा ही तब जय और विजय दोनों को आदर करके सनकादिक मुनिवरों को सजा देना ही श्रीनारायण को उचित था। क्यों करते? नहीं करना चाहिए था । द्वारपालकों से झगड़ा क्यों मोल लेते थे? सनकादि मुनिवरों को भूमि पर भेज देना चाहिए था क्यों कि जयविजयों को उन्होंने शाप दिया । (सत्यार्थप्रकाश ४४४ पृ)

जवाब : जय और विजय दोनों का अपराध था । ज्ञान से उम्र से भी जो बड़े थे सनकादिमुनिवर, उनको अंदर भेजना चाहिए था, भगवान् की अनुमति पाकर । लेकिन ऐसा नहीं हुआ, बालक जैसे जो दीखते हैं ऐसे मुनिवरों को बेंत लेकर जयविजयों ने परास्त किया ।

श्लो. वक्त्रं भ्रुवा कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्याम्
रक्तेक्षणेन च मनाग् रभसं दधानौ ।

(भृकुटी को टेढी करके लाल आँखों से जोर से सास लेते हुए, जय और विजय दरवाजे के पास रोकतेहुए खड़े रहे) श्रीमद्भागवत ३स्कं १५अ २८श्लोक ।

इनके गुस्से में आने का भी कारण था । सनकादिक मुनिवरोंने छे दरवाजे पारकर अंदर प्रवेश किया । जय और विजय चाहते थे कि अपने से पूछकर ही अंदर आ जाना चाहिए । किन्तु सनकादिक ब्रह्मवेत्ताओं के विषय

में अपना हुकुम चलाना, और चलाने की इच्छा करना उचित नहीं था। इसको अनुचित समझते हुए श्रीमन्नारायण ने सनकादिक मुनिवरों से शाप दिलाया।

शापो मयैव निमितः तदवैत विप्राः (उस शाप को हमने आप के द्वारा दिलाया, समझलीजिये) (भागवत ३स्कं १५अ २६श्लोक) श्रीमन्नारायण ने साक्षात् अपने आप कह दिया। इसलिए श्रीमन्नारायण को सनकादिमुनिवरों के प्रति दण्ड देने की आवश्यकता कतई नहीं थी।

श्रीस्वामीजी का और एक विमर्श यह है :-

जय और विजय, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु के रूप में पैदाहुए। उन में से हिरण्याक्ष को वराहस्वामीजी ने खतम किया। कैसे? उसने भूमि को चटाई की तरह लपेटकर तकिया के रूप में रख लिया। और वह जब सो रहा था तब वराहस्वामी ने उसके शिर के नीचे से उगकर अपने दांत के ऊपर से उठालिया तब हिरण्याक्ष की नींद खुली, और उन दोनों के बीच घोर संग्राम शुरूहुआ। उस युद्ध में वराहस्वामीने उस को मारडाला। - इस तरह जो लिखा हुआ है उस के बारे में यह आक्षेप रहा :- भूमि गोल है या चटाई जैसी है? इस सवाल का कोई भी जवाब दे नहीं पायेगा। फिर वराहस्वामी किस के ऊपर पैर रखकर दौडतेहुए आये? भूमि को दांतों के ऊपर रख लिया तो किस के ऊपर दोनों खड़े थे? इत्यादि सवाल स्वामीजी से पूछे गये।

जवाब : भागवत में यह बात नहीं हैं कि भूमि को चटाई के बराबर लपेटलिया (भागवत-३स्कं १६अ) भूमि को दांतों के ऊपर रखकर उद्धार करते हुए वराहस्वामी को देखकर हिरण्याक्ष ने कहा :

श्लो. आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुञ्च नो
रसौकसां विश्वसृजेयमर्पिता
न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः
नराधमासादितसूकराकृते ।।

(भागवत ३स्कं १८अ ३श्लोक)

(''हे मूर्ख, जंग केलिए तैयार हे जाओ, भूमि को छोड़ दो, उसको ब्रह्माजीने रसातलनिवासी जो हम राक्षसलोग हैं उनके वास्ते देरखे हैं। जबतक मैं देखता रहता हूँ तब तक इस जमीन के साथ तुम भाग नहीं सकोगे'') इतना कहकर हिरण्याक्ष, वराहस्वामी के खिलाफ लड़ने में तैयार हुए। भूमि को अपने दांतों के ऊपर रख सकते हैं, वराहस्वामी उनकेलिए और हिरण्याक्ष केलिए भी आधार के रूप में भूमि की जरूरत नहीं थी। भूमि की जो आकर्षणशक्ति है वे दोनों उससे परे थे। किन्तु वे दोनों खगोळ में ऊपर उड़तेहुए जा सकते थे। इस का कारण यह था कि श्रीवराहस्वामी, विष्णुमूर्ति के अवतार थे। हिरण्याक्ष जो था, वह वराहस्वामी के प्रतिपक्ष होकर लड़ने में सक्षम था। - इस तरह इस मामले में श्रीदयानन्दसरस्वती का विमर्श अनुचित था ही।

उनका और एक विमर्श इस तरह है :-

श्रीस्वामीजी ने प्रह्लादजी की कहानी लिखी, उस में प्रह्लाद जो है रामभक्त था, हिरण्यकशिपु उस से पूछता है कि तुम मेरे दुश्मन का सेवक क्यों बन गये हो? हिरणयकशिपु ने प्रह्लाद को बांधकर पहाड़ से नीचे गिरा दिया। कुएँ में गिरा दिया। फिर भी उनको कुछ नहीं हुआ। लोहे के खम्भे को जलाकर तपते हुए खम्भे से गले मिलने केलिए प्रह्लाद को तंग किया। हिरण्यकशिपु ने उस से पूछा कि आपकी इष्टदेवता श्रीरामप्रभु सत्य हो तो तू

इस से छूओगे फिर भी कुछ नहीं होगा'' । प्रह्लाद ने उस को पकड़ना चाहा परन्तु शक किया कि हाथ जल जायगा । नारायण भगवान् ने उस खम्भे के ऊपर छोटी छोटी चींटियों की श्रेणी को चलने दिया । तब उसको भरोसा लग गया उसे छू लिया । वह खम्भा फटाक से फट गया । उस में से नरसिंहभगवान् बाहर निकले हैं और उन्होंने हिरण्यकशिपु को जोर से पकड़ लिया । और उसके पेट को चीर लिया । उस के बाद नृसिंहभगवान् ने प्यार से प्रह्लादबालक को चाटने लगा और वर मांगने केलिए विवश किया । प्रह्लाद ने अपने पिताजी को सद्गति देने का वर मांग लिया । नरसिंहभगवान् ने मानलिया और कहा कि इक्कीस पीढियों तक सारे लोग सद्गति को प्राप्त करेंगे ।(सत्यार्थप्रकाश ४४५ पृ)

परिशीलन : स्वामीजी ने जिस भागवत को पढा, वहाँ प्रह्लाद रामभक्त था । हिरण्यकशिपु ने पूछा कि जलते हुए खम्भे को छूना और प्रह्लाद का हिचकिचाना और चीटियों को ऊपर चलाना-सब कुछ भागवत में नहीं है। (भागवत-७स्कं ४अ-१०अ तक)

यहाँ कुछ कहना जरूरी है - श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी और भी विमर्श करते हैं :- ''ऐसे लोग जिनका स्वभाव गलत लिखना ही है गलत काम करना ही है वे ऐसा ही करते हैं । लेकिन विद्वान लोग ऐसा नहीं करते'' । (सत्यार्थप्रकाश ४४६ पृ)

स्वामीजी ने वेदों के भाष्य लिखे हैं । ऐसे विद्वान् भागवत का विमर्श करते हुए भागवत में जो नहीं हैं उन की कल्पना करते हैं और भागवतकर्ता की निन्दा करते हैं, इसी प्रकार भागवत में जो नहीं हैं उनको हैं कहकर लिखते हैं । और ऐसी बातों को विस्ताररूप से लिखेंगे तो ग्रन्थ बढ जाएगा ।

स्वामीजी ऊपरी कथा को फिर से इस तरह विमर्श करते हैं :-

भागवतकथा को जो पढते हैं और सुनते हैं उनको ऊपर से नीचे गिरा देंगे तो उनको बचानेवाला कोई है ही नहीं। (सत्यार्थप्रकाश ४४५ पृ)

जवाब : प्रह्लाद जो है वह कारणजन्मा है, ऐसे भक्त को भगवान् जरूर बचाते हैं, उस में असंगति नहीं है। लेकिन भागवत पढकर कई लोग भक्त बन गये - यह बात सुनने को मिलती है। भगवान् भक्तों की रक्षा करते हैं - यह भी अनुभव में है। जो भरोसा नहीं करते हैं उन को मनाने केलिए ऐसी बातें उन के सामने कहना बेकार है। भागवत को जो तेलुगु कविता में रचे हैं - ऐसे महान् पुरुष पोतन्न कवि के सामने श्रीरामप्रभु का साक्षात्कार हुआ - यह बात ग्रन्थ के आरम्भ में है।

स्वामीजी का आगे विमर्श इसतरह है :- सनकादिमुनियों का शाप ऐसा था कि तीसरे जन्म के बाद जय और विजय वैकुण्ठ में वापस आयेंगे, तो नारायण इस बात को भूल गये क्या?

१९७० ईसवी साल में छपी हुई सत्यार्थप्रकाश में ऐसा है कि तीसरे जन्म में वैकुण्ठ लौटने का वर सनकादिमुनिवरों का था : यह मुद्रण दोष है ही। १९२३ में किताब छपी थी - उस में ठीक ही था कि सनकादिमुनिवरों ने जय और विजयों को वर दिया - और इस बात को नारायण भूल गये क्या?'' इतना ही था। (११समुल्लास ४८ पृ)

श्लो. एतौसुरेतरगगतिं प्रतिपद्य सद्यः
संरंभसंभृतसमाध्यनुबद्धयोगौ
भूयस्सकाशमुपयास्यतः (भाग-३स्कं १६अ २६श्लोक)

(ये दोनों - जय और विजय राक्षसयोनि प्राप्त करके जन्म से लेकर क्रोधावेश से एकाग्रभाव को पाकर फिर से शीघ्र ही मेरे पास आ जायेंगे) - यह बात

श्रीमन्नारायण की थी । उसी के अनुसार वे दोनों, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु, रावण, कुम्भकर्ण और शिशुपाल, दन्तवक्त्र - होकर बाद में वैकुण्ठ में चले गये। इस में ऐसी बात कुछ भी नहीं जो नारायण भूल गये । श्रीमन्नारायण ने वर दिया, न कि सनकादिमुनिवर । लगता है स्वामीजी ही खुद भूल गये ।

स्वामीजी का विमर्श और एक है : भागवत के अनुसार ब्रह्माजी के बाद मरीचि प्रजापति, बाद में कश्यप प्रजापति का नाम आता है । उन के बाद हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु आते हैं । तब हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु चौथी पीढीके थे । तब नरसिंह भगवान् की जो बात थी कि ''इक्कीस पीढियों के लोग सद्गति पायेंगे'' - यह कैसे लागू हो सकती है? - यह स्वामीजी का विमर्श है । (सत्यार्थप्रकाश ४४६ पृ)

परिशीलन : यह विमर्श सोचने लायक है । अन्वितार्थप्रकाशिका व्याख्यान कर्ता लिखते हैं कि 'प्राक्कल्पगत पित्रभिप्रायेण त्रिस्सप्तभिः सहेत्युक्तम्' (भागवत ७स्कं १०-१८ श्लोक) (पुराने कल्प में पितृदेवताओं को लेकर २१ पीढियों के पितृदेव हो सकते हैं) :- यह समाधान विचित्र सा लगता है । लेकिन षिरिडीसायिबाबा के ७२ जन्मों का स्नेहसंपर्क था श्यामा के साथ । उस संबंध की प्रीति से इस जन्म में उन से श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्र पढवाकर उन का उद्धार किया ।

हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु ही रावण और कुम्भकर्ण बाद में शिशुपाल और दन्तवक्त्र के रूप में पैदा हुए । तब नरसिंह भगवान् का वर कहाँ गया? यह स्वामीजी का प्रश्न रहा । (सत्यार्थप्रकाश ४४६ पृ)

जवाब : जय और विजय को पहले असुर जन्म होने का शाप मिला। बाद में नरसिंहस्वामीजी ने वर दिया । इसलिए शाप का फल पहले भुगतना

है, बाद में नरसिंह भगवान् के वरदान का फल मिलेगा । इस तरह कोई आपत्ति नहीं । श्रीस्वामीजी का और एक सवाल इस प्रकार है :-

अक्रूर, कंसमहाराज के आदेश के अनुसार रथ के ऊपर बैठ गये सवेरे, और शामको अस्तमय के समय गोकुल पहुँच गये । गोकुल और मथुरा के बीच चार किलोमीटर दूरी है । और कहते हैं रथको खींचने केलिए जो घोड़े थे, वे वायुवेगवाले थे । ये घोड़े भागवत रचयिताके चारों ओर मंडराते थे क्या? नहीं तो सारथि और अक्रूर भागवतकर्ता के घर पहुँचकर सो गये क्या? यह उन का आक्षेपसहित सवाल है । (स.प्र. ४४६ पृ)

जवाब : अक्रूर सूर्योदय के समय नन्दगोकुल जाने केलिए निकल पड़े - यह बात भागवत में है ही नहीं ।

श्लो. अक्रूरोपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ।।

(अक्रूर उस रात को मथुरा में रह कर अगले दिन रथ में बैठकर नन्दगोकुल पहूँच गये । अक्रूर नैष्ठिक थे । सवेरे, स्नान, सन्ध्या, अग्निहोत्र, देवतार्चन इत्यादिक करके निकलने में देर लगती है । भागवत के अनुसार नन्दगोकुल लौटते समय यमुना में अक्रूर नहाने गये । इसलिए हमको समझना है कि अक्रूर जो है, नन्दगोकुल पहुचने केलिए कहीं अपराह्ण में निकल पड़े । यह विषय प्रधान नहीं रहा इसलिए भागवत में नहीं बताया । इसलिए ऊपर का, विमर्श अनावश्यक है । और भी हमको समझना है कि मथुरा और नन्दगोकुल के बीच में इतना दूर था । ८०० साल पहले, मचिलीपटनम् 'कडलिपुरम्' नाम से समुंदर के किनारे रहता था । अभी मचिलीपटनम् समुंदर से सात किलोमीटर दूर पर है । हम नहीं कह सकते हैं कि पांच हजार साल पहले भी मथुरा और

गोकुल के बीच में चार किलोमीटर ही दूरी थी । कालचक्र के वेगसे गाव, शहर, नदी, के प्रदेश बदल जाते हैं । इस के अनेक कारण हो सकते हैं । इस को गलती के रूप में समझना, दोषारोपण करना ठीक नहीं । स्वामीजी का और एक विमर्श :- पूतना का शरीर छे क्रोश चौडाई, और लंबाई कहने को नहीं, असीमित थी, ऐसी पूतना को खतम करके बालकृष्णने मथुरा और गोकुल के बाच में फेंक दिया । अगर वहीबात सही है तो दोनों गाव मथुरा, गोकुल मालिक के घर के साथ दब जाते । - यह स्वामीजी की अवहेळना । (स.प्र. ४४६ पृ)

जवाब : जहाँ पूतना गिरी, वहाँ भागवत में वर्णन देखिये :-

श्लो. पतमानोऽपि तद्देहः त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान्
चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत् तदद्भुतम् ।।

(हे राजन् पूतना का शरीर गिरते हुए तीन गव्यूतियों के बीच में पेड़ों को चूरा कर दयिा, यह बहुत ही आश्चर्यजनक घटना हुई)

यहाँ गव्यूतिशब्द के दो अर्थ हैं, एक तो है एक क्रोश, दूसरा अर्थ है दो क्रोश (शब्दार्थकल्पतरु ४६४ पृ) क्रोश माने दो मील । पूतना का शरीर बहुत भारी रहा, बहुत बड़ा विकृत आकार होने की वजह से छे मीलतक सारे पेड़ गिर पड़े - यही उसका अर्थ निकला । छे मील तक भूमि जब कांपने लगी तब वहाँ के पेड़ पौधे चूरचूर हो गये। कुम्भकर्ण जैसा भारी शरीर गिर पड़ा तो वह सारा प्रांत कांपने लगा। नहीं तो अत्युक्ति नामक अलंकार हो सकता है।

श्लो. अत्युक्तिरद्भुतासत्यवीर्यशौर्यादिवर्णनम्

(अद्भुत और असत्य शौर्य, धैर्य जैसे गुणों का वर्णन अत्युक्ति अलंकार है । (चन्द्रालोक १अ २श्लोक)

पूतना का बहुत बड़ा आकार था बहुत भारी शरीर था इतना ही उसका मतलब रहा ।

दयानन्दसरस्वती, खुद उसका विमर्श करते समय खुद लिखते हैं कि पूतना का देह छे क्रोश चौडाई और ऊँचाई अपरिमित । यह अपरिमितशब्द जो है मूलग्रन्थ में है ही नहीं । इसलिए यहाँ भागवतकर्ता की गलती समझना ठीक नहीं ।

स्वामीजी का ही और एक विमर्श रहा :-

अजामीळ की कहानी विस्तृतरूप से लिखी हुई है । नारद की प्रेरणा से अपने बेटे का नाम नारायण रख दिया । प्राण छोडते समय अपने बेटो को बुलाया । इतनी देर में नारायण वहाँ आ टपकें । अजामीळ अपने बेटे को बुला रहा था न कि श्रीमन्नारायण को । तब इतनी सी बात श्रीमन्नारायणभगवान् नहीं जानते क्या? नाम का माहात्म्य इतना बड़ा तो उनका स्मरण करने वालों का दुःखहरण क्यों नहीं करते? यही बात सही है तो जैल में रहते लोग नामस्मरण करते हैं उनको नारायणभगवान् क्यों नहीं छुड़ाये? (स.प्र. ४४७पृ)

जवाब : षिरिडीशायिबाबा के चरित्र में यह विषय है । श्रीसायिबाबा रात और दिन अपने सामने नामसप्ताह कराते थे । सायिबाबा ने एकदफा दासगणु को हुकुम दिया कि नामसप्ताह करो । दासगणु ने कहा ''करूँगा लेकिन विठ्ठल का साक्षात्कार होना है'' । तब बाबा अपने हाथ छातीपर रखकर कहते हैं कि भक्तिभाव हो ते विठ्ठल जरूर दर्शन देंगे । भक्ति और प्रेम जहाँ हैं वहाँ जरूर विठ्ठल प्रत्यक्ष होगा । नामसप्ताह के अन्त में विठ्ठल के दर्शन हुए । बाबा के वचन असलियत में आये । (श्रीशायिसच्चरित्र ४अ. ८३, ८९ तक) अजामीळ के दिल में भलेही भक्ति नहीं थी (भागवत में है कि)

विष्णुदूत तो आये थे । कहते हैं कि चरमवृत्ति माने मरने के पहले मन की प्रवृत्ति । अजामीळ की मनोवृत्ति चरमसमय में नारायण नाम से जुडी हुई थी, इसलिए सत्फल उनको प्राप्त हुआ । ''यान्ते मतिस्सा गतिः'' (मरने के समय जो बुद्धिवृत्ति रहती है उसी के अनुसार आगे गति है)

आजकल जेल में रहते हुए सजा को भोगते हुए कुछ लोग, भगवान् की सेवा करते हैं, ऐसे शान्तिकर्म भी कर लेते हैं । उनको कोई फायदा नहीं तो वे लोग ऐसा क्यों करते हैं? रामदास ने अपनी रामभक्ति की महिमासे जैल से छुटकारा पाया ।

असल में अजामीळ की कहानी में विष्णुदूत आये थे न कि नारायणभगवान् ।

श्लो. निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम्
भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसापतन् ।।
श्लो. यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः

(श्रीमद्भगवद्गीता ८अ ६श्लोक)

(मरने के समय जिस ख्याल से शरीर को आदमी छोड़देगा उसी ख्याल से वह जिसका स्मरण किया अगले जन्म में उसी को प्राप्त करेगा ।) इसका विवरण करती है आजामील की कहानी । विष्णुदूत और यमदूत आपस में विवाद करके चले जाते हैं । उस से आजामिळ मृत्यु से बच गया । उन दूतों के परस्पर सम्भाषण से अजामिळ को पछतावा हुआ । बाद में वह साधक बन गया । उत्तमगति को प्राप्त किया । (श्रीमद्भागवत ६स्कं २अ ३९,४४ श्लोक) इस प्रकार अजामिळोपाख्यान में दोषारोपण करना नामुमकिन है ।

२२. श्रीकृष्णचरित्र विमर्श

परिशीलन

श्रीकृष्ण के प्रति भागवतकार ने उचित रीति को छोड़कर दोषों को दिखाया । दूध, दही, मख्खन, मलाईयों की चोरी करता था बालकृष्ण,और कुब्जा नाम की दासी से व्यभिचार किया परस्त्रियों के साथ रासक्रीडा में भाग लिया । और भी इस तरह की चेष्टएँ की । इन सब बातों को पढकर पढवाकर सुनकर सुनवाकर दूसरे धर्मवाले श्रीकृष्ण की निन्दा करते हैं । अगर भागवत ही नहीं होता महात्मा श्रीकृष्ण की अनावश्यक निन्दा होती ही नहीं। यह उनका सवाल । (सत्यार्थप्रकाश ४४८ पृ)

जवाब : श्रुतिगीताएँ, उद्धवगीताएँ, तत्त्वविषय जो वेद और उपनिषदों में प्रतिपादित हैं वह कई स्तुतियाँ, भक्ति, ज्ञान, विराग - ये सब भागवत में बाढमें जैसा प्रवाहित होते हैं। थोड़ा बहुत हमें सोचना चाहिए कि ये सारी बातें इसमें शामिल कैसे हुई? सुनाने केलिए श्रीशुकयोगी बैठे थे । सुनने केलिए तैयार थे परिक्षित् महाराज, जिनको एक हफ्ते के बाद मरण निश्चित रहा । वे दोनों अश्लील और अनुचित विषयों को क्यों प्रस्तुत करेंगे? अगर हम सोचते हैं कि, यह ग्रन्थकर्ता की कल्पनामात्र है वह ठीक नहीं है क्यों कि इसको (भागवत को) पुराणों में प्रमुख स्थान है, और भागवत सप्ताहों में अनगिनत लोग आज भी सुनते रहते हैं, इस के ऊपर करीब बारह व्याख्याएँ हैं और इस

के अनुवाद प्रमुख भारतीय भाषाओं में आ चुके हैं, इस के अनुसरण भी बहुत आ गये हैं तो इस का कारण सोचना है समझना है। जो इतिहास हैं रामायण और महाभारत, उन के बगल में भागवत बराबर बैठा है।

काम, क्रोध, और लोभ - तीन बहुत भयंकर दोष हैं और द्वेष भी इन के साथ मानव के असाध्य शत्रु हैं। दूसरे दूसरे जन्मों में अपने मन में जोरसे जो लग गये हैं ऐसे दुश्मन हैं ये इनको जीतना बड़े योग्य साधकों को भी बहुत मुश्किल है। ये नरक जाने के द्वार हैं।

श्लो. काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः
महाशनो महापाप्मा विध्य्येनमिह वैरिणम् ॥

(गीता ३अ ३७श्लोक)

(यह काम ही (कामनाही) क्रोध है, यह रजोगुण से पैदा हुआ है। इस को पूरा करना अशक्य है। यह बहुत भयंकर है। मोक्षमार्ग में इनको शत्रु ही समझो)

श्लो. त्रिविधं नरकस्यैतद् द्वारं नाशनमात्मनः
कामः क्रोधश्च लोभश्च तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

(गीता १६-२१ श्लोक)

काम (कामना) क्रोध और लोभ - तीनों नरक के द्वार हैं। ये तीनों नीच जन्म होने के एक एक कारण हैं - तीनों को इसलिए छोड़देना है।

अगर इन तीनों को भी भगवान् के प्रति मोड़ लेते हैं तभी भगवान् की कृपा के पात्र होते हैं, भागवत में यही बात कही गयी। दूध, दही, मख्खन - तीनों को चुराने से बालकृष्ण भगवान् गोपियों के मन को लोभ से हटाकर

अपनी और खींचने के काम में आता है। क्रोध के द्वारा कंस और शिशुपाल अपने मन को भगवान् के प्रति संलग्न कर सके। कामपुरुषार्थद्वारा गोपियों का मन भगवान् की ओर उन्मुख हुआ, और वे अग्रश्रेणी के प्रेमभक्तों में आयी थीं

इस बात को श्रीमद्भागवत में इस तरह स्पष्ट बताया :-

श्लो. कामात् द्वेषात् भयात् स्नेहात् यथाभक्त्येश्वरे मनः
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ।
गोप्यः कामात् भयात् कंसः द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः
सम्बन्धात् वृष्णयः स्नेहात् यूयं भक्त्या वयं विभो ।।

(भागवत ७स्कं १अ २९,३० श्लोक)

जैसे भक्ति का सहारा लेकर मन को भगवान् में संलग्न करते हैं,ऐसे ही काम, द्वेष, भय, स्नेह-जो हैं इन के द्वारा मनको ईश्वर के प्रति आकर्षित करके, कामादियों से जो पाप हेता है उसको धुलाकर कई लोग भगवान् को प्राप्त कर चुके हैं। कामना के द्वारा गोपियाँ, डर के मारे कंस, द्वेष से शिशुपाल आदि, बन्धुत्व से यादव लोग प्यार से पाण्डव, और भक्ति के द्वारा हम (नारद) भगवत्कृपा के पात्र बनगये।

श्लो. तस्मात् केनाप्युपायेन मनःकृष्णे निवेशयेत्

(भा. ७स्कं १अ ३१श्लोक)

इसीलिए कहनापड़ता है कि किसी न किसी तरीके से मन को श्रीकृष्णभगवान् के प्रति संलग्न करना चाहिए।

शारीरककामवांछा और मानसिककामना, दोनों काम के अन्तर्गत हैं। शारीरिककामवांछा उन्नति को प्राप्त नहीं करा सकती है। इस का उदाहरण है कुब्जा। इस सिलसिले में ग्रन्थकर्ता क्या कहते हैं - देखिये :-

श्लो. दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम्
यो वृणीते मनोग्राह्य मसत्त्वात् कुमनीष्यसौ ॥

(भाग-१०, ४८, ११ श्लोक)

जो सर्वेश्वरेश्वर विष्णुभगवान् हैं उनकी आराधना सब से मुश्किल है, उनकी सेवा को पाकर भी, मन को खुश करने केलिए विषयसुख को चाहनेवाला तुच्छ है मूर्ख है - कुब्जा इस का उदाहरण है। कुब्जा की प्रस्तावना भागवत में फिर से नहीं आयी। ऊपर दिये हुए कथांश, जो नरकद्वार काम, क्रोध आदि हैं उनको भगवान् के अधीन करने का संदेशा दे रहे हैं।

ये सारी घटनाएँ श्रीबालकृष्ण की दस साल उम्र के अंदर घटी थीं। उस उम्र में इन को दोष या अपराध के रूप में गिनती नहीं करते। कानून के अनुसार कसूर है तो अपराधी को जेल में डलते हैं, यहाँ तो बच्चों को स्कूल में डाला जाता है।

एक संशय जरूर हो सकता है, वह यह है कि श्रीकृष्ण को भगवान् मानते हैं, तब वे इस तरह के नीच और तुच्छ काम किसलिए कर चुके हैं? परीक्षित् महाराज ने पूछा और श्रीशुकदेवजी ने उसका उत्तर इस प्रकार दियाः

श्लो. धर्मव्यतिक्रमो दृष्टः ईश्वराणां च साहसम्
तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥

गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिनाम्
योन्तश्चारति सोऽध्यक्षः एष क्रीडनदोहभाक
अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः
भजते तादृशीः क्रीडाः याः श्रुत्वा तत्परो भवेत् ।।

(भागवत १०स्कं ३३अ ३०,३६,३७ श्लोक)

समर्थपुरुष जो हैं कभी कभी धर्म का अतिक्रमण करते हैं । चूँकि वे बहुत तेजोवान्(हैं) इसलिए वह दोष नहीं बनता । भले ही आग की लपटें सब तरह की गन्दगी को जलाती हैं फिर भी वह शुद्ध है एकदम पवित्र है । इसी तरह तेजस्वी पुरुषों के संबन्ध में भी समझना चाहिए । गोपियाँ और उनके पतियों के और सारे शरीरधारियों के अन्तरात्मा जो है, बुद्धि साक्षी जो हैं, वही श्रीकृष्णपरमात्मा हैं । भगवान् भले ही आप्तकाम हैं, फिर भी प्राणियों के उद्धार केलिए मनुष्यशरीर को स्वीकृत करलेते हैं । उस तरह की लीलाएँ भगवान् दिखाते हैं जिनको सुनते सुनते भगवान् के प्रति मनुष्यमात्र आकर्षित हो जाता है । भक्तजनों के मनहरण करने केलिए ही श्रीकृष्ण उस तरह की क्रीडाएँ करते हैं । उस से उन को दोष नहीं लगते । उन को तकलीफ है जो श्रीकृष्णको भगवान् का अवतार नहीं मानते; जो मानते हैं उन को कोई तकलीफ नहीं है । श्रीकृष्ण की बाललीलाओं से और रासक्रीडा से लोग आकर्षित हो जाते हैं, तभी श्रीकृष्णकर्णामृत, श्रीकृष्णलीलातरङ्गिणी, जयदेव का गीतगोविन्दकाव्य, भागवतीकथा, क्षेत्रय्यपद, और मधुरभक्तिसिद्धान्त भी प्रसिद्ध हो गये । श्रीकृष्णकर्णामृत जैसी रचनाएँ भले ही कल्पित हैं लोगों को आकर्षित करती हैं ।

अब रह गयी है दूसरे धर्मवालों की बात । वे लोग, स्त्री और पुरुष

शादी के पहले ही मिल जुल कर रहते हैं, सब कुछ जब पसंद है तभी शादी होती है । शादी के बाद स्त्रीपुरुष, अपना पराया-भेद के बिना नाचते हैं गाते हैं चूमते हैं । तलाक देना फिर से दूसरी शादी कर लेना मामूली बात है । वे लोग हमारे अवतारपुरुषों की निन्दा करते हैं तो, हम फिकर करते हैं हम अपने ग्रन्थों की निन्दा करते हैं तो ठीक नहीं है । इसलिए भागवत के प्रति दयानन्दसरस्वती के आक्षेप बिलकुल मान्य नहीं हैं ।

२३. गुरुभक्तिविमर्श

परिशीलन

श्रीदयानन्द सरस्वतीस्वामी गुरुभक्ति का विमर्श प्रश्नोत्तररूप में करते हैं देखिये :-

सवाल : **श्लो. गुरुर् ब्रह्मा गुरुर् विष्णुः**
गुरुर् देवो महेश्वरः
गुरुः साक्षात् परब्रह्म
तस्मै श्री गुरवे नमः ।। (गुरुगीता-१९ श्लोक)

इस श्लोक के आधार पर गुरु की महिमा सत्य है क्या? गुरुजी के पैर धोना उस पानी पी लेना, उस की आज्ञा का पालन करना और गुरुजी के दोषों को गुण समझना कहाँ तक ठीक है? गुरुजी लोभी है तो उनको वामन के बराबर मानना, क्रोधवान् हो तो नरसिंहभगवान् समझना, मोह के वश में चले गये तो श्रीराम समझना, कामुक है तो श्रीकृष्ण समझना, गुरुजी भले ही पापकर्म करें गुरुजी के प्रति शद्धा रखना, गुरुदर्शन केलिए जाते वक्त पग पग पर अश्वमेधफल प्राप्त करना - ऐसी बातें ठीक हैं क्या?

जवाब : ठीक ही हैं । ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर तीनों एक ही परमेश्वर के

नाम हैं। गुरुजी उन के बराबर कभी नहीं बैठते। गुरुमाहत्म्य और गुरुगीताएँ बनावट की बाते हैं। माता, पिता, आचार्य, और आतिथि - ये चार ही गुरु हैं। इन की सेवा करके इन से विद्या को और शिक्षण को पाना ही चेले का कर्तव्य है। इसी प्रकार विद्या को और शिक्षा को देना गुरुजी का काम है। गुरुजी लोभी, क्रोधी, कामी, मोही है तो उसे दण्ड देकर छोड़ देना चाहिए। अगर इन सजाओं से वह गुरु सीधा नहीं होगा तब थप्पड़ लगाना, लात मारना, मृत्यु की सजा देना भी गलत काम नहीं। - इस तरह दयानन्दस्वामी का विमर्श रहा।

परिशीलन : शब्द का वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ तीन तरह के अर्थ होते हैं। शब्द का उच्चारण करने से तुरंत जो अर्थ निकलता है वह वाच्यार्थ है। अगर वह जमता नहीं तब (उस के संबंधित अर्थ) लक्ष्यार्थ है। वाच्यार्थ ठीक लगता है उस से भी जब सुंदर और एक अर्थ लगता है तो वह व्यंग्यार्थ है। यह अलंकारशास्त्र की मर्यादा है। ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर - ये शब्द वाचकशक्ति से गुरु को नहीं बताते। गुरु, ज्ञानजनक है इसलिए ब्रह्मा है सन्मार्ग सिखानेवाला है तो विष्णु है, अज्ञान को मिटानेवाला है तब महेश्वर है। मोक्ष को देनेवाला है तब परब्रह्म के बारबर है। - इस तरह लक्ष्यार्थ बता सकते हैं।

गुरु माने जो विद्या और शिक्षा देता है वही नहीं, कुछ महान् पुरुष हैं जिन को जगद्गुरु कहते हैं या उनके बराबर हैं जैसे शंकराचार्य, रामकृष्णपरमहंस, रमणमहर्षि, षिरिडीशायिबाबा आदि आदि, वे लोग सन्मार्ग दिखाते हैं, लेकिन विद्या को सिखानेवाले नहीं हैं।

श्रीदयानन्दसरस्वती ने जो कहा माता, पिता - वे विद्या को सिखानेवाले

थोड़ी हैं। अतिथि को गुरु मानना है कैसे? अतिथि तो विद्या को नहीं सिखाते हैं न।

ऊपर के सत्पुरुषों के उपदेशों से लोगों को संतृप्ति और शांति मिल जाती हैं, इसलिए लोग उन के पास जाते हैं। भले ही दूसरे लोग मना करेंगे फिरभी वे नहीं मानते। षिरिड़ी बाबा जैसे सद्गुरु चल बसे हैं, फिरभी लोग उनकी आराधना करते ही रहते हैं।

हर एक आदमी (व्यक्ति) में कुछ कमियाँ जरूर हैं। कमियों पर ख्याल करने से गुरुजी के प्रति श्रद्धा घट जाती है। गुरुजी ऐसे शिष्य को नहीं सिखायेगा जो अपने को इज्ज़त नहीं देगा। तभी एक आर्योक्ति या सूक्ति है कि ''गुरौ गुणग्रहीतारः'' उन्हीं को विद्या प्राप्त होती है जो गुरुजनें में केवल गुणों को ही ग्रहण करते हैं। गुरुजी में गुणों को ही जो याद रखते हैं उन्हीं को विद्या, प्राप्त होती है। अगर कोई सोचेगा कि ऐसे गुरुजी को खोज निकालेंगे जो दोषों से बिलकुल रहित हैं, उसे इस जन्म में गुरुजी मिलते ही नहीं। इस मार्ग में रहने केलिए कुछ नियम बताये गये कि अगर गुरुजी लोभी हो, तो इनको वामनावतार समझो इत्यादि।

गुरुजी को मरणदण्ड डालने का अधिकार अपने को कहाँ से आयेगा? यह तो साफ साफ गलतबात है। आजकल की बात नहीं, उस समय के शास्त्र ही नहीं कभी कोई शास्त्र या कानून कभी इस को मान नहीं सकते। न्यायाधीश के अलावा और कोई मरणदण्ड नहीं डाल सकता है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र में कहा है कि आचार्य, यदि नियमों का उल्लंघन करेगा, तब उनको रहस्यरूप में समझा सकते हैं। 'प्रमादादाचार्यस्य बुद्धिपूर्वं वा नियमातिक्रमान् रहसि बोधयेत्' (आपस्तम्बधर्म १प्र ४खं २५सू)

जिस के पास दण्ड चलाने का अधिकार है वह क्या करेगा - यह एक सवाल है । यह तब की बात है जब गुरुजी का दोष क्या है उस का उचित दण्ड क्या है? सब समझना पडेगा । भीष्मपितामह जो धर्मवेत्ता थे, उन्होंने अपने गुरुजी परशुरामजी से युद्ध किया, अर्जुन अपने गुरुजी के खिलाफ लड़ने केलिए तैयार नहीं थे । अर्जुन ने अपने गुरुपुत्र अश्वत्थामा का शिरोमणि छीनकर उनको बाहर निकाल दिया लेकिन खतमकरने की सजा को नहीं दिया।

गुरु की आज्ञाका पालन धर्मशास्त्र में है ही । ''गुरुजी के काम करना पड़ता है । हरदिन रात को गुरुजी के पैर धोना है और पैर दबाना है । उन की अनुमति लेकर सो जाना है । गुरुजी जब कहते है तब पढना है । गुरुजी के सामने पैर पसारना गलत है । खुद लेटते हुए गुरुजी से बात नहीं करनी चाहिए । अगर गुरुजी बात करना चाहते हैं तो बैठकर बात करना है । गुरुजी खड़े होकर बात करते हैं तो स्वयं चलना चाहिए । गुरुजी दौड़ते हैं तो स्वयं दौड़ना है । चप्पल के साथ गुरुजी के पास नहीं आना चाहिए । शिर के ऊपर टोपी रखकर गुरुजी के पास नहीं जाना चाहिए । चाकू जैसे परिकरों को हाथ में लेकर गुरुजी के पास नहीं जाना है । जैसे भगवान् की सेवा करते हैं वैसे गुरुजी की सेवा करनी पड़ती है'' - इत्यादि कर्तव्यों का पालन आपस्तम्ब महर्षिने बताया (आपस्तम्बधर्मसूत्र -१प्रश्न ८खण्ड) इसलिए गुरुसेवा का विमर्श नहीं करना चाहिए ।

२४. तिलकधारणविमर्श

परिशीलन

सत्यार्थप्रकाश में भस्म, तिलक आदि धारण के बारे में है। (सत्यार्थप्रकाश ३८९-४७२)

शून्यललाटेन यत्कृतं तदल्पम् (शून्यललाट से किया हुआ पुण्य अल्प है)

श्लो. स्नात्वा मृत्तिकया चोर्ध्वपुंड्रं कुर्यात् प्रयत्नतः
जपकाले मृदा कुर्यात् सन्ध्याकाले च वारिणा
भस्मना होमकाले तु चन्दनं सार्वकालिकम् (स्मृतिरत्नमहोदधि)

स्नान करके मिट्टी से फालभाग में प्रयत्न के साथ ऊर्ध्वपुंड्रधारण करना है। सन्ध्याकाल में पानी के साथ तिलक लगाना है। जपकाल में मिट्टी से ऊर्ध्वपुड्रधारण करना है। होमकाल में भस्म (राख) से तिर्यक्पुंड्र(टेढी लकीर) का धारण करना है।

श्लो. देवानभ्यर्च्य गन्धेन सर्वपापापनुत्तये

सब पापों का क्षय होने केलिए देवताओं का पूजन करके चन्दन से त्रिपुंड्रधारण करना है। एक आराधना के बाद प्रसाद स्वीकरण होता है। तब जमीन पर जो जल है उस से स्नान करते समय मिट्टी से, जल से जब सन्ध्योपासना करते

हैं तब पानी से, अग्निमें हवन करते समय भस्म से, पुण्ड्रधारण करना पड़ता है । गन्ध जब भगवान् को समर्पित करते हैं तब फाल में चन्दनधारण करके अलंकार करलेना धर्मशास्त्र में कहा गया । पुराने जमाने में धर्मशास्त्रों का आदर करते थे और तरह तरह के तिलकधारण करते थे ।

श्लो. आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः

आचार से धर्म पैदा होता है । धर्मकाप्रभु अच्युत है - यह महाभारत में है (अनुशासनपर्व १४९अ १३७श्लोक) । उसके बाद कई संप्रदाय निकले हैं, कुछलोग भस्म का कुछ लोग श्वेतमृत्तिका का कुछ लोग श्रीचूर्ण को, कुछ लोग गन्ध का कुछ लोग कुंकुम का - धारण करने लगे । इन सब का मूलकारण स्मृतिरत्नमहोदधि का वाक्य है और उसके पहला वाक्य ''शून्यललाटेन यत् कृतं तदल्पम्'' ।

इस सिलसिले में पुण्ड्रधारण करने का प्रयोजन समझने लायक है :-

आयुर्वेद में विभूति (भस्म) के बारे में इस तरह कहा गया :- इस का धारण करने से रक्त के दोष शान्त होते हैं और रक्तप्रसार ओज को बढावा देता है । शरीर की उष्णता बाहर नहीं निकलती, और जठराग्नि दीप्त होता है । प्रधान जो ओज है वह बढेगा । यह शीतवीर्य है, इसलिए पित्त का और रक्त का संरक्षण करता है । एक पित्त है त्वचा का आशय लेता है, वह भ्राजकपित्त कहलाता है, रक्त का जो आशय लेता हैं वह रजकपित्त कहलाता है । इन दोनों को बढावा नहीं देकर निर्मलस्वभाव पाकर विभूति जो है ओजोवर्ण देती है । ठंड से बचाने केलिए मददगार होती है'' । (आचार-शास्त्रीयता ५६ पृ)

ऊर्ध्वपुंड्र का धारण करने से शरीर से शरीर का उष्णांश एक ही तरह

रहता है और शरीर के नीचे हिस्से में अर्थात् जठरकोश, पित्तकोश, हृदय, श्वासकोश इत्यादियों को अपनी जरूरत के अनुसार उष्णांश को पाने केलिए मदद मिलती है। करीब बीस साल पहले एल्लोपति में श्वासकोश के रोग में आंटिप्लजस्टन् नामक मलाम का लेपन पृष्ठभाग पर करते थे। आजकल विज्ञानक्षेत्र में प्रगति होने के नाते उसके बदले में आंटिबयोटिक्स् इस्तेमाल कर रहे हैं। आंटिप्लजस्टन मलाम पट्टी जो है मिट्टी से ही बनती है। इस से पता चलता है कि मिट्टी और भस्म का लेप शरीर को फायदामंद होता है। - (आचार-उनकी शास्त्रीयता ५६ पृ)

गोपीचन्दन - यह भगवान् श्रीकृष्ण के पवित्र पादस्पर्श से पवित्र हो गया।

श्रीगन्ध - यह भी शरीर की उष्णता को बचाता है। इस में खुशबू रहती है, शरीर के दुर्गन्ध को हटाता है। ज्यादा ठण्डाई करता है; पित्तदोष का शमन करता है। रक्तदोषों का हरण करता है, वीर्य को बढाता है। विषकृमियों का संहार करता है, प्यास बुझाता है कांतिप्रदान करता है, चर्मरोगों को ठीक कर देता है। ताकत और तेज का उत्पादन करता है, घावों को ठीक करता है।

अक्षत - गन्ध के ऊपर अक्षत और हल्दी के टुकडे को घिसने के बाद केले के फूल जलाकर राख बनाकर उस से मिलाकर अक्षत की तैयारी करते हैं। इस के अलावा श्रीगन्ध का टुकडा घिसकर अक्षत करने की पद्धति है। और भी एक तरीका है कि ललाट के बीच में तिलकधारण जो चलता है वह श्रीचूर्ण हल्दी से किया जाता है। आखिर में बात यह है कि हल्दी को या श्रीगन्ध को अलग अलग रूपों में ललाट में धारण कर रहे हैं। हल्दी जो है शरीर को कान्तिप्रदान करती है। स्त्रियों केलिए आरोग्य देनेवाला आभूषण

जैसा है । खून को साफ करनेवाली चीजों में इस से बढकर और कुछ है ही नहीं । घाव को ठीक करती है कुष्ठ रोग की दवा है क्रिमिसंहारक है सारी जहरीली चीजों को ठीक कर देती है । कफ और वात दोनों को जीतती है ।- (आचारालु-शास्त्रीयता ५७, ५८ पृ)

इसी तरह लालरंग के कुंकुमतिलक पर सूर्यकान्ति जब प्रसारित होती है भ्रुवें के बीच में इडा और पिंगळा नाडियाँ सूर्यकान्ति का ग्रहण करके प्राणशक्ति को शरीर केलिए देती है । - यह बात आयुर्वेद वैद्यविद्वान् भिषङ्मणि पाटिल नारायणरेड्डि की है । (आचारालु-शास्त्रीयत ६० पृ)

एवं तिलकधारण भगवदुपासना का न केवल अंग है अपितु आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थता केलिए भी तरह तरह का तिलकधारण चलरहा है । इसलिए उसका निरसन करना जरूरी नहीं है ।

२५. उपवासविमर्श

परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वती, उपवास रखना जो है उसको भी गलत समझते हैं, ''शिवपुराण में त्रयोदशीसोमवार, आदित्यपुराण में रविवार, चन्द्रखण्ड में सौम्यग्रह जो हैं मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु, केतुओं के ग्रहणसमय, वैष्णवैकादशी,वामनद्वादशी, नृसिंहचतुर्दशी चन्द्रमा की पौर्णमी, दिक्पालकों की दशमी, दुर्गानवमी, वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, कुमारस्वामी की षष्ठी, नागपंचमी, गणेशचतुर्थी, गौरीतृतीया, अश्विनीद्वितीया, आद्यादेवी की प्रतिपदा, पितृदेवताओं की अमावास्या - ये सारे दिन पुराणों में उपवासव्रत रखने के दिन होते हैं । और लिखागया कि इन दिनें में और तिथियों में जो अन्न खाता है और पानी पीता है वह नरक में जायगा, - इत्यादि उनके विमर्श हैं । ये सारी बातें कहाँ किस जगह बतायी गयी हैं? उन्होंने नहीं लिखा । विवरण नहीं दिया ।

स्वामीजी के वाक्यों से लगता है कि ये सारे उपवास अनिवार्य हैं । जो लोग जिसकी आराधना करते हैं उसदेवता को पूजते हुए उन दिनों में अर्थात् जिस देवता को जो तिथि पसंद है तब पूजा के अंग या साधन नियम के रूप में उपवास रखते हैं । अगर उपवास पूर्णरूप से नहीं कर सकते हैं तो इस श्लोक के अनुसार नियम को ढीला कर सकते हैं :-

श्लो. अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः
हविर् ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ।।

(बोधायनवचन, शब्दकल्पद्रुम २६० पृ)

उपवास के दिन पानी पीकर रह सकते हैं, हविस् खा सकते हैं, दवा ले सकते हैं, गुरुजी का वचन मान सकते हैं किसी ब्राह्मण की इच्छा को पूरा कर सकते हैं अर्थात् गुरुजी का वचन मानकर उपवास तोड़ सकते हैं, कोई ब्राह्मण अतिथि के रूप में आता है और चाहता है कि उस के साथ घर का मालिक भोजन करें, तब खा सकते हैं । गुरुशब्द माता, पिता और विद्यादाता को कहता है ।

उपवास रखते समय क्या क्या छोड़ देना है?

अञ्जन, रोचन, गन्ध, पुष्प, फूलों की माला, सजावट दातून करना, अभ्यंगस्नान, पान, प्याज जैसी चीजें जो कामना को जगाती हैं, दिन में सोजाना, जुआ, मैथुन, स्त्रियों को प्यार से देखना, छूना - इत्यादि वर्जित हैं। उपवास के एक दिन पहले कुछ नियमों का पालन करना है; वे ये हैं कि थाली में खाना, मांसाहार, मद्यपान, कंजूसी करना, झूठ बोलना, व्यायाम करना, दिन में सो जाना, काजल लगाना, दूसरों के घर में भोजन, तेल और चने खाना, ज्यादा पानी पीना, शिलापिष्ट खाना, मसूर खाना, दुबारा खाना, सफर करना, वाहन पर चढना, थकान, जुआखेलना, सब्जी खाना - ये सब वर्जित हैं, अर्थात् भोग, और थकावट - मना है (एकादशीव्रत, शब्दकल्पद्रुम २६०पृ) 'लंघनम् परमौषधम्' (उपवासरखना बहुत बडी दवा है) यह आयुर्वेद का वाक्य है ।

क्री.पू. ४००० सालों पहले वैद्यविज्ञान के पिता, ग्रीक्देशवासी हिपोक्राटिन नामक विद्वान् ने ''उपवास को ही वैद्यचिकित्सा है'' बताया । इस बात को लेकर आज भी ''है - नहीं'' करके लोग बहस कर रहे हैं ।

इस बात पर पूरा यकीन होकर आर्मेनिया देश के ग्रिटस् कीषियन्

नामक सज्जन, कई रोगों की इलाज केलिए नियमितरूप से उपवास कर रहे हैं। डी. हेच्. डेट् २९-१९७८ । (आचारालु - शस्त्रीयत ७७० पृ)

आजकल अधिक आहार खाने से गोश्त बढता है, पेट उफनता है, शरीर बेहद बढजाता है, इस से डयाबिटीस आदि बीमारियाँ - इस केलिए डइटिंग करने वाले बहुत हो गये। पहले जमाने में उपवास नाम लेकर आहार नियमों का पालन करते हुए भगवान् का पूजन भी करते रहें ।

ऊपर दयानन्दसरस्वती से दिये हुए जो उपवासदिन थे - उनमें केवल भगवान् की पूजा करने के दिन भी हैं। अमावास्या के दिन पितृश्राद्ध करतेहैं, लेकिन उपवास नहीं रखते। गणेशचतुर्थी के दिन गणेशजी की पूजा होती है लेकिन उपवास करने का विधान नहीं है । इन का बताया हुआ चन्द्रखण्ड किस ग्रन्थ में है - पता नहीं। मङ्गल आदि ग्रहों के वार (दिन) हैं लेकिन राहु और केतु के दिन नहीं हैं, कही भी प्रसिद्ध नहीं। सातग्रहों केलिए सात दिन हैं, राहु व केतु केलिए दिन कहाँ हैं? सूर्य और चन्द्र को प्रसन्न करने केलिए उपवास करना दुनियाँ में है, लेकिन दूसरे ग्रहों को संतुष्ट करने केवास्ते उपवासविधि कहाँ बताया?

चन्द्रमा की पूर्णिमा, कुमारषष्ठी, नागपंचमी, काम्यव्रत - ये सब कामना के साथ करने केलिए हैं - सब केलिए करना अनिवार्य नहीं। मुनियों की सप्तमी, अश्विनीकुमारों की द्वितीया आद्यादेवी की प्रतिपदा, दिक्पालकों की दशमी - उपवास के दिन हैं क्या? प्रमाण कहाँ है यह स्वामीजी खुद कह देते कितना अच्छा होता? पहले जमाने में इन तिथि व दिनें के संबन्ध के बिना कई महीने तक आहार नियम का पालन करते हुए, तपस्या करते थे । वासिष्ठगणपतिमुनि कई साल तक, कुछ महीने आहार नियम के साथ तपस्या करके सिद्धि को प्राप्त किये । यह बात उनके जीवितचरित्र 'नायन' नामक ग्रन्थमें है ।

मामूली लोग भी स्वस्थता केलिए देवतानुग्रह केलिए इष्टदेवताकी आराधना केलिए पुराने लोग इन त्योहारों के दिनों में उपवास रखते थे। रंजान् - पूरा महीना मुस्लिम लोग उपवास रखते हैं न ।

इसलिए स्वास्थ्य और आध्यात्मिक विकास केलिए उपवास रखना अच्छी बात है, उस का कुविमर्श करना उचित नहीं है ।

२६. एकादशीव्रतविमर्श

परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी एकादशीव्रत का भी खण्डन करते हैं। ''कुछ लोग परमस्वार्थी हैं वे ही दयारहित होकर एकादशी के दिन का प्रचार कर रहे हैं। वे लोग मानते हैं कि एकादशी दिन सारे पाप अन्न का आश्रय लेते हैं।''एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति'' - पद्मपुराण - अ-१५ श्लो.-११ एकादशी के दिन (उपवास रखने से) किसी को भी दुःख नहीं होना चाहिए। इसलिए खाना बन्द करना पाप है। एकादशी व्रत को बहुत ही महत्व लादा गया इत्यादि उनका विमर्श रहा। (सत्यार्थप्रकाश ४६३ पृ)

परिशीलन : 'एकादश्यामन्ने पापानि वसन्ति' ऊपर के वाक्य में यह नहीं है कि सबके पाप अन्न में रहते हैं। उस का मतलब एकादशी में भोजन करना पाप है।

ऊपर के वाक्य में ऐसी बात नहीं कि एकादशी के दिन किसी को दुःख ही नहीं होगा।

ऊपर हमलोगों ने देखा कि उपवास करना स्वास्थ्य केलिए बहुत अच्छा है। उपवास परिमितरूप में हैं तो अच्छा है।

अब सवाल यह है कि किसदिन उपवास रखना है। भगवान् की आराधना केलिए आहारनियम मददगार होता है। मन जो है भगवान् के प्रति

नहीं दौडता है जब दाल नमक और कारा, आहार में रहते हैं । इसलिए आराधना के दिन आहारनियम का पालन करना है ।

किस दिन आहारनियम का पालन करना है? एकादशी की अधिष्ठानदेवता धर्मदेवता है । (कालमृतम् - १बिं २श्लो) इसीलिए एकादशी के दिन उपवासविधान धर्मशास्त्र में हैं ।

इस सिलसिले में दयानन्दसरस्वती एक कहानी सुनाते हैं - ब्रह्मलोक में एक वेश्या ने किसी अपराध की वजह से भूमि पर जन्म लेने का शाप प्राप्त किया । उसका शापमोक्ष तभी होगा जब कोई उनको अपना एकादशीव्रतफल देगा । वह (वेश्या) विमान में जमीन पर उतर आयी । वेश्या की प्रार्थना से एक स्त्री ने अपना पुण्यफल समर्पित किया जो एकादशी के दिन खाना बन्द करने से उनको मिला था । और हवाई जहाजको छूआ भी । वह (वेश्या) पुण्यलोक में चली गयी । - यह कहानी किस ग्रन्थ में है - स्वामीजी ने नहीं बताया ।

ऐसी कथाओं को अर्थवाद कहते हैं । कथा का सत्यत्व मानना, मतलब की बात नहीं । ''एकादशीव्रत का पालन करना बडी बात है'' - इतना ही वहाँ सारांश है ।

एकादशीव्रत के बारे में स्वामीजी का विमर्श आगे भी है :- 'चौबीस एकादशियों के अलग अलग नाम है, एक धनदा, दूसरी निर्जला, तीसरी कामदा, चौथी पुत्रदा - इत्यादि । कई गरीबलोग, कामीलोग, अपुत्रलोग भी एकादशीव्रत का पालन करते करते बूढे होगये । मर भी गये । फिर भी किसी की कामना पूरी नहीं हुई । तेलुगु में सुमतिशतककर्ता कहता है कि जिसदेवता की पूजा करना बेकार होती है उस की पूजा नहीं करनी चाहिए वे लोग बूढे होकर मरने तक एकादशीव्रत का पालन करते थे - इस का मतलब उनको कुछ फायदा हुआ । तभी तो आखरीक्षण तक करने लगे । जो आचरण करते

हैं उनको जरूर फल मिलता है उसको व्यर्थ कहना ठीक नहीं । रुचि पैदा करने केलिए ही प्रयोजन कहते हैं जिस का नाम अर्थवाद है । अर्थात् आसक्ति को पैदा करके सत् कर्म का आचरण करानेवाली कहानियाँ हैं । ये व्यर्थ होते ही नहीं।

श्लो. अशक्तानां तु नक्तं हविष्यान्नं अनौदनम्
वा फलं क्षीरं तिला अथाम्बुचाज्यम् ।।

उपवास रखने केलिए जिन की ताकत कम है वे लोग दिन में भोजन नहीं करेंगे और रात को भोजन करेंगे । नमकीन कारा और दाल छोड़कर हविष्यान्न खाना और अन्न छोड़कर दूसरी चीजें खाना अच्छा होगा । दूसरी चीजें माने दूध व घी थोड़ा लेना ठीक रहेगा । (धर्मसिन्धु १२पृ)

इस प्रकार जो उपवासव्रतपालन नहीं कर सकते उनकेलिए बिलकुल खाना मना नहीं है । एकादशीव्रत भगवदाराधना केलिए और स्वास्थ्य केलिए भी ठीक है ।

२७. ज्योतिषविमर्श

परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वतीने ज्योतिष के अंशों का भी विमर्श किया । ये (ग्रहमन्त्र)ग्रहों के वाचक हैं बल्कि ग्रहों के बोधक नहीं । इनका अर्थ नहीं समझते हुए लोग भ्रान्ति में फस गये हैं । 'आकृष्णेन रजसा' - यह मन्त्र, भूमि और सूर्य का आकर्षण बताता है । (सत्यार्थप्रकाश ४५०,४५१ पृ)

मन्त्र :आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यश्च
हिरण्ययेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ।।

परिशीलन : संप्रदाय के अनुसार यह सूर्यको संबोधित करने का मंत्र है । दयानन्दजी कहते हैं कि यह मंत्र भूमि और सूर्य का आकर्षण बताता है। इन के विषय में स्वामीजी ने जो अर्थ लगाया और दूसरे भाष्यकारों का व्याख्यान दोनों का परिशीलन करेंगे । दयानन्दसरस्वती का अर्थ :-

सविता परमात्मा सूर्य लोको वा रजसा सर्वैः लोकैः सहकृष्णेन कर्षणगुणेन सह वर्तमानोऽस्ति कथंभूतेन गुणेन? हिरण्ययेन ज्योतिर्मयेन, पुनः कथंभूतेन? रमणानन्ददिव्यव्यवहारसाधकज्ञानतेजोरूपेण रथेन, किं कुर्वन् सन्? मर्त्यं मनुष्यलोकममृतं सत्यविज्ञानं किरणसमूहं वा स्वस्य कक्ष्यायां निवेशयन् व्यवस्थापयन् पथा च मर्त्यं पृथिव्यात्मकं लोकं प्रत्यमृतं मोक्षमोषध्यात्मकं

वृष्ट्यादिकं रसं च प्रवेशयन् सूर्यो वर्तमानोऽस्ति । स च सूर्यो देवः द्योतनात्मको भुवनानि सर्वान् धारयति तथा पश्यन् दर्शयन् सन् रूपादिकं विभक्तं याति प्रापयतीत्यर्थः । (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका १४२ पृ) इन्होंने रस के दो अर्थ लगाये :- पहला अर्थ परमात्मा दूसरा अर्थ, सूर्यलोक ।

परमात्मा सब लोकों के साथ आकर्षणगुण के साथ रहते हैं । उनका ज्ञानरूपी रथ, रमण, आनन्द इत्यादि व्यवहार का साधक है । इस के साथ सूर्यदेव, मनुष्यलोक को सत्यविज्ञान देते हुए मर्त्य लोक को अमरत्व प्राप्त कराते हैं । यह परमात्मा का अर्थ ।

स्वामीजी संस्कृत में परमात्मा और सूर्यलोक - दो अर्थ भले ही लगाते हैं हिन्दी में ''परमात्मा, वायु और सूर्यलोक है''- वायु को भी जोड़ देते हैं । लेकिन बाद में वायुप्रसक्ति इस मंत्रार्थ में नहीं है ।

यहाँ सूर्यमंडल के अर्थ में इन्होंने जो अर्थ लगाया वह इस प्रकार हैः

सूर्यलोक सारे लोकों को आकर्षित करने का गुण रखता है । इन का सूर्य का रथ अपने तेजोरूप रथ से किरणपुंज को अपनी कक्ष्या में रखता हुआ, भूलोक में बारिस जैसे रसों को प्रवेश कराता हुआ चमक रहा है । और वे इस प्रकार लिखते हैं :-

''स च सूर्यदेवो द्योतनात्मको भगवान् भुवनानि सर्वान् लोकान् धारयति। तथा पश्यन् दर्शयन् सन् रूपादिकं विभक्तं याति प्रापयतीत्यर्थः । (वह सूर्यतेजोमय है सब लोकों का धारण करता है । रूपादिक दिखाता है और विभक्त करके (अलग अलग) सामने रख देता है) ।

परिशीलन : श्रीस्वामीजी अपने आप इस का अर्थ सूर्यग्रह के बारे में लगाते हैं, इसलिए इन का स्ववचनव्याघात, हो रहा है ।

इस का महीधरभाष्य इस तरह हैः- सविता नामक देवता, हिरण्मयरूपी रथ में रहकर बारं बार भ्रमण करता हुआ परख रहा है कि रात और दिन कौन मनुष्य आदियों में कौन सा प्राणी क्या गलत कर रहा है क्या सही कर रहा है।

मन्त्र में ''सविता देवः'' इतना ही है, द्योतनात्मक (प्रकाशस्वरूप) सूर्यलोक इस का अर्थ है महीधर के अनुसार । दयानन्दस्वामीजी के अनुसार ''आकृष्णेन'' इस का अर्थ आकर्षणगुण है । इसलिए दोनों भाष्यों के अनुसार यह मंत्र सूर्यप्रशंसापरक ही है । फिर स्वामीजी खुद इस का खण्डन कैसे कर सकते हैं?

इमं देवा असपत्नगँ् सुवध्वम् (शुक्लयजुर्वेद ९-४०) यह चन्द्रमन्त्र के रूप में उपयुक्त किया जारहा है । श्रीस्वामीजी कहते हैं कि यह राजाओं के गुणों को बता रहा है ।

आन्ध्रप्रदेश में यह मन्त्र, चन्द्रमन्त्र के रूप में प्रसिद्धि में हैः-

''आप्यायस्व समेतु ते विश्वतस्सोमवृष्णियम् भवा वाजस्य संगधे'' यजुर्वेद १२-११२ मं (हे चन्द्र तुम सब जगह बढते चलो, सब भूतों का उत्पत्तिबीज आप के यहाँ पहुँचेंगे । उस वीर्य से तुम सब जगह पनपते रहो। इसलिए कि आप केलिए हमारेलिए भी आहार प्राप्ति हो । इस तरह यह चन्द्रस्तुतिपरक है । मत्स्यपुराण में इसी मन्त्र को चन्द्रमन्त्र कहा गया । (मत्स्यपुराण ९३अ. ३९ श्लोक)

ज्योतिश्शास्त्र में सूर्य, ग्रहों का राजा है । उसके बाद, चन्द्र प्रधान होता है । चन्द्र जिस राशि में है वह जन्मराशि कहलाता है । इस के आधार पर ही गोचारफल, देखते हैं । इसलिए मानना पड़ेगा कि नव, ग्रहों में

प्रधानग्रह जो सूर्य व चन्द्रमा हैं उन के मन्त्र वेद में हैं ।

फिर स्वामीजी ने जिस चन्द्रमन्त्र का प्रस्ताव किया उसके आखिर में ''सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा'' (यह चन्द्र ब्राह्मणों का राजा है) - इस तरह की सोमस्तुति है । इसलिए यह भी चन्द्रस्तुतिपरक है । सोमशब्द चन्द्रशब्द का पर्यायवाची है । बृहस्पति का मन्त्र :-

''बृहस्पते अतियदर्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु यद्दीदयच्छवसर्तप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्'' हे बृहस्पती, आपका जन्म ब्रह्म से हुआ, आप वेद के संरक्षक हैं कई तरह के द्रव्यों को यजमान केलिए दीजिये आप ऐसा धन दीजिये जो धन राजा का आदरपात्र हो, जो धन कई लोगों के घरों में तरह विराजमान हो, जिस धन से यज्ञ कर सकते हैं, जो धन दूसरे धन को कमा सकता है (शुक्लयजुर्वेद २६अ, ३मं) ।

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी, बृहस्पतिशब्द का अर्थ 'वेदपालक' और 'ऋतप्रजात' शब्द का अर्थ वेदप्रतिपादित लगाते हैं । (ऋग्वेदादि, भाष्यभूमिका ३२१ पृ)

'जनी-प्रादुर्भावे' - धातुपाठ से प्रजातशब्द का अर्थ ''ब्रह्म से पैदा हुआ'' - लगता है । यह संसार में प्रसिद्ध है । प्रजातशब्द का अर्थ 'प्रतिपादित', प्रसिद्ध नहीं है । वाच्यार्थ जहाँ जमता नहीं वहाँ लक्ष्यार्थ काम में आता है । पहले ही लक्ष्यार्थ को बताने से किसीशब्द का सही अर्थ नहीं निकाल सकते हैं । किसी निघंटु में बृहस्पतिशब्द का वाच्यार्थ, वेदों का 'संरक्षक', और 'प्रजात' शब्द का अर्थ 'प्रतिपाद्य' नहीं है । ऐसा अर्थ जो कहीँ भी नहीं है, उसको बताकर, यह कहना ठीक नहीं कि उस मंत्र में 'बृहस्पति' अर्थ है ही नहीं । इसलिए पूर्णशुभग्रह जो है ज्योतिश्शास्त्र के अनुसार, उसका संबन्ध

रखनेवाला मन्त्र भी वेद में हैं - इसे मानना ठीक है ।

वेद में ग्रहराज, सूर्य के मन्त्र हैं, प्रधानग्रह चन्द्र के भी हैं, और पूर्णशुभग्रह बृहस्पति के भी हैं । इन का प्रभाव मनुष्यों पर गिरता है - यह मानने की बात है इस को प्राचीनखगोळपरिशोधकों ने पहचान लिया । अपने ग्रन्थों में परिशीलन के फलितों को दर्शाया । फिर पुणसे सौरकुटुंब में और कुछ ग्रह उनकी नजर में आये । पुराणों में उनकी गिनती है । (अग्निपुराण १६४अ. ७श्लोक)

उन ग्रहों को सूचितकरनेवाले मन्त्र वेद में उपलब्ध हैं । नीचे दिये हुए मन्त्र में पांच ग्रहों की प्रस्तावना है कुछ ज्योतिष विद्वानों के अनुसार ।

अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः

(ऋक्संहिता १मं, १०५सू, १०मं)

पांच देवताएँ विस्तीर्ण द्युलोक के बीच में हैं; ज्योतिषविद्वान कहते हैं कि ये पांच जो हैं मंगल, बुध आदि पांच ग्रह हैं । इस मंत्र में राहु और केतु की प्रस्तावना विस्पष्ट है :-

मंत्र : शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्या च राहुणा
शं नो मृत्युः धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ।।

(अथर्व १९-९-१०)

चन्द्रमंडल को चीरनेवाले मंगल आदि ग्रह हम को शान्ति प्रदान करें । राहुग्रस्त सूर्य, हमें शान्ति देवें । मारक धूमकेतु हमें शान्तिप्रद होवे । तीक्ष्णतेजोवान् रुद्र, हमारेलिए शान्तिकारक होंगे ।

इस में आदित्य, राहु, धूमकेतु - तीनों का प्रसंग है । चन्द्रमण्डल को चीरनेवाले दूसरे ग्रहों का भी प्रस्ताव है । इस तरह कुछ जगह स्पष्टरूप से कुछ

जगहों पर अस्पष्टरूप से ग्रहों का वर्णन वेदमंत्रों में मिलता है । उनके फल लोक में दिखायी देते हैं । शुभफल आनन्दकारक हैं, अशुभफल दुःखदायी हैं। दुष्टफल जब सूचित हैं, तब शान्तिकर्म करना वैदिकों का तरीका है । 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वात् आनर्थक्य मतदर्थानाम्' - यह पूर्वमीमांसदर्शन का सूत्र है १-२-१; यह पूर्वपक्ष में है । प्रवृत्तियाँ निवृत्ति के बोधक हैं सारे मन्त्र, उस तरह जो नहीं हैं वे मन्त्र निरर्थक हैं ।

इसलिए इन ग्रहों के दोषफल जब होते हैं तब शान्तिकर्मों को कर लेना चाहिए । आराधना करते समय मन्त्र का उच्चारण करने से, कर्म, सुसंपन्न होता है । मन्त्र के उच्चारण के बिना, कर्म का आचरण करने से वह वैदिककर्म, संपन्न नहीं होता है ।

व्यर्थं वा एतद्यज्ञस्य यदयजुष्केण क्रियते

मन्त्र के बिना क्रिया के द्वारा संपन्न यज्ञाङ्ग-समृद्धि के बिना होता है । (तैत्तिरीयसंहिता - ५-१-२)

इसलिए थोड़ा सा देवतासंबंधित मंत्र का उच्चारण करके ग्रहदेवताओं की आराधना करना वेदसंप्रदायानुसारी होता है । भले ही प्रत्यक्षरूप से ग्रहदेवता का नामोच्चारण नहीं है फिर भी लक्ष्यार्थ से ग्रहों को जब कहते हैं तभी उन को ग्रहमन्त्र के रूप में काम में ले रहे हैं । इसीलिए लोग उन मन्त्रों से ग्रहशान्तिकर्मों का संपादन करते हैं । ऊपर सूर्यचन्द्रबृहस्पतिमन्त्रों को हमने देख लिया ।

अंगारक का मंत्र :- अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अपागँ् रेतागँ्सि जिन्वति (शुक्लयजुस् ३-१२)

यह अग्नि, पृथिवी का पालक होकर जलसार भूमि को देकर संतुष्ट होता है। यह द्युलोक का शिर जैसा है । यह पृथिवी का पालक है, वृषभ के ऊपर ककुद् जैसा है । अग्नि माने आगे चलनेवाला - सेवा को आगे से 'अग्रि' कह सकते

हैं । तैत्तिरीयोपनिषद् कहती है कि जल से जमीन निकली है । ''अद्भ्यः पृथिवी'' (तैत्तिरीयराण्यक २-१) कुज शब्द का अर्थ है भूमि से पैदाहुआ । ज्योतिश्शास्त्र के अनुसार कुजग्रह, जमीन, मकान, सोना और अग्नि का कारक है । ये बातें इस मंत्र से सूचित की जाती हैं । कुजग्रह जो है आग जैसा लालरंग का होता है । अंगार माने जलता हुआ कोयला; इस का नाम ही अंगारक है । चूँकि अग्नि के समान है इन को अग्नि कह सकते हैं । भूमि के ऊपर रहने से उस का ककुद् (उच्चस्थान) जैसा है । स्वर्गलोक का शिर जैसा है । कहते हैं कि स्वर्गलोक हमारी दृष्टि से ऊपर का नीचा, और नीचा ऊपर लगता है । इस मंत्र को कुज के संबंधित कहा गया ।

बुधग्रह का मंत्र : उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सगँ्सृजे थामयञ्च, पुनः कृण्वग्त्वा पितरं युवान मन्वातागँ्सीत्त्वयि तन्तुमेतम् (तैत्तरीयसंहिता ४-७-१३)

हे अग्नी, हमारे बारे में ज्ञानवान् हो जाओ, इस यजमान को हर रोज सचेत कर दो, आप और वह दोनों मिलकर इष्टापूर्तकर्म कीजिये । हे यजमान, यह अग्नि, आपको पालक और युवा बनाकर बार बार इस तन्तु का (प्रवाह को) विस्तृत करेगा ।

निरुक्त में सवाल उठाया कि 'अग्निः कस्मादग्रणीर्भवति' अग्नि किसलिए अग्रणी (आगे ले चलनेवाला) होता है? 'अग्रे नयति' - आगे ले जाता है । ज्योतिश्शास्त्र के अनुसार बुधग्रह - बुद्धिकारक है । जो बुद्धिमान् है वही तो रास्ता दिखाते हुए आगे ले चलेगा । इसलिए यहाँ अग्निशब्द का यौगिकार्थ 'बुध' कह सकते हैं । बुधग्रह जो है वेद, गणित, गान्धर्व, शिल्प इत्यादि का ज्ञानप्रदाता है । इस विद्यातन्तु का विस्तार करने केलिए प्रार्थना है, इस तरह इस मन्त्र को बुध के अर्थ में लागू कर सकते हैं ।

शुक्र का मन्त्र : शुक्रमन्धसः इन्द्रस्येन्द्रिय मिदं पयोमृतं मधु (सोमपान

शुद्ध है वीर्यप्रद है, बुढापे को हटाता है अमरत्व लाता है मधुर है, क्षीरपान भी उस तरह का होवें) यजु - १९-७२)

वराहसंहिता में मधुरमृष्टान्नभोजन, पानी, शुक्र के कारकत्व में हैं। ('मृष्टान्नमधुरभुजः उद्यानसलिलकामुकयशः' अद्भुतसागर २१६ पृ)

ईश्वर का शुक्र ही शुक्रग्रह है जो मधुराहार और पानी को भी देता है। मन्त्र का भावार्थ यह है कि अजर और अमर जिसकी वजह से आदमी बनेगा उस शुक्रग्रह का मण्डल, मेरे ध्यान में रहें। (इस का अर्थ संस्कृत में इस प्रकार बता सकते हैं - 'अन्धसः मधुरस्य पयसः कारकं इन्द्रस्य ईश्वरस्य इन्द्रियरूपमजरामरत्वप्रद मिमं शुक्रं ध्यायामि) शुक्र जो है ईश्वर के पेट में प्रवेश करके उनके शुक्र (इन्द्रिय) के स्थान में प्रवेश करके उनके शुक्रस्थान से बाहर निकल आया - यह एक पुराणकथा है। यहाँ मधुर और पयस् शब्दों को षष्ठीविभक्ति में परिवर्तन करके हमने लिखा। चूँकि शुक्रसंबंधलिंग (चिह्न= निशान) हैं, इस को शुक्रमन्त्र के रूप में ले रहे हैं।

यहाँ विभक्ति को बदल देने से और 'कारक' शब्द को अध्याहार करने से(ला देने से)मेरी गलती को नहीं पकड़ना। श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वमीजीभी - कई जगह लक्ष्यार्थ और अनेक अध्याहारों से यहाँ व्याख्यान कर चुके हैं। देखिये - शुक्रम्=आशु सुखकरम्, अन्धसः=शुद्धान्नस्य <u>इच्छाहेतुकम्</u>, पयः=सर्वपदार्थसार <u>विज्ञानयुक्तं</u>, अमृतम्=<u>मोक्षसाधकम्</u>, मधु=मधुरम्, सत्यशील<u>स्वभावयुक्तम्</u> मनः प्राप्य, इदं=सर्वं व्यावहारिककपारमार्थिकम्, सुखम्=<u>प्राप्नोतु</u> (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका ३२१ पृ)

इस तरह कई लक्ष्यार्थों से कई अध्याहारों से अर्थ लगाये हैं। अधोरेखांकित शब्द उन्हीं के अध्याहार हैं।

राहु का मन्त्र : कया न श्चित्र आभुव दूती सदा वृधस्सखा, कया शचिष्ठया वृता (प्रजापति संबंधित रक्षण से चित्रस्वभाववाला राहु, हमारे

रक्षण के काम में आ जावें, वह प्रजापतिसंबंधितशक्ति से हमारा सखा बन जावें। वह हमारी वृद्धि केलिए हमेशा तैयार होवें।) राहु विचित्रग्रह है। इन का नाम तमस् है। तमस् माने अंधेरा। अन्धेरा ही इन का स्वरूप है। फिर इन का दूसरा नाम ''स्वर्भानु'' है। स्वर्भानु माने स्वर्गलोक में प्रकाशमान। जो प्रकाशवान् सूर्य और चन्द्रमा है उनको अंधेरे में डालनेवाला है राहु। तभी वह विचित्र है। सदावृधः=सदाकालं वर्धयिता (उव्वटभाष्यम् २-४९)

ज्योतिश्शास्त्र के अनुसार राहुग्रह पूर्णपापी है। इसीलिए प्रजापति के संरक्षण में वह हमारे लिए मित्र बनकर रहेगा अपकार नहीं करेगा। तभी हम चाहते हैं कि वृद्धि को प्राप्त करानेवाला हो। इस तरह इस मंत्र का राहुपरक अर्थ निकलता है।

केतु का मन्त्र : केतुं कृण्वन्न केतवे पेशो मर्या अपेशसे समुषद्भिरजायथाः (शुक्लयजुर्वेद -४९-३७)

(तुम अज्ञानियों को ज्ञान देते हुए गरीबों को धन देते हुए अग्निहोत्र आदि कर्म करनेवालों केलिए पैदा हुए हो) केतु के कारकत्वों में ''बहुदानः, मोक्षदः है। (कारक निघण्टु मुहूर्तदर्पण -८ पृ) ज्ञानमन्त्र मोक्षदाता होना दान करना - इन लक्षणों से यह केतुमन्त्र बन गया है।

शनिग्रह का मन्त्र : शं नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शं योरभिस्रवन्तु नः (यजु - २७-३९)

जो जल देवताएँ देदीप्यमान हैं वे हमारे अभीष्ट वस्तुओं को पाने केलिए और पीने केलिए सुखरूपी होवें। बीमारियों को शांत करने के वास्ते भीति को दूर करने केलिए प्रवाहित हो जावें)

शनिग्रह जो है ज्योतिश्शास्त्र के अनुसार पूरा पापकारी है। इसीलिए शनिग्रह से जो दोष उत्पन्न होते हैं उनको हटाने केलिए जलदेवता से प्रार्थना, इस मंत्र से करते हैं।

कुछ मंत्र साक्षात् ग्रहों को बताते हैं । कुछ मंत्र ग्रह देवता के लक्षणों को समझाते हुए उनकी स्तुति केलिए काम में आते हैं । कुछ मंत्र जातककुण्डली में ग्रहस्थिति से जो दोष सूचित हैं उन को परास्त करने के वास्ते प्रार्थना के रूप में काम में आते हैं । इसलिए यह नहीं सोचना है कि ग्रहों का संबंध उन मन्त्रों से नहीं है ।

श्रीदयानन्दसरस्वती स्वामीजी सवाल उठाते हैं कि ''अगर दान करने से ग्रह जो हैं प्रसन्न होते हैं और नहीं करने से अप्रसन्न होते हैं तो हमें प्रत्यक्षरूप से दिखायी देना चाहिए । उदाहरण केलिए एक की कुण्डली में सूर्य या चन्द्रमा आठ्वे घर में या तीसरे घर में रहता है तब दोनों ज्येष्ठमास में चप्पल के बिना दोनों धूप में तपती हुई जमीन पर पैदल चलें, जिस के ऊपर ग्रह, प्रसन्न हैं, उसके पैर न जलेंगे, जिस के प्रति अप्रसन्न हैं, उस के पैर जरूर जलेंगे ।

ऐसे ही दो व्यक्तियों को दिगम्बर करके पुष्यमास की पूनम की रात को घूमने को कहा जाय उन में से एक को अगर सरदी जुकाम नहीं लगेंगे और एक को लगेंगे तो ग्रहों की दृष्टि क्रूर है या सौम्य है - हम भरोसा कर सकते हैं'' । (सत्यार्थप्रकाश - ११ स ४५१ पृ)

जवाब : हर एक शास्त्र के कुछ सीमाएँ रहती हैं । उन सीमा रेखाओं को समझने के बिना मनमानी बातें लेकर अपनी मर्जीसे शास्त्रों के अनुसार होने की उम्मीद रखना ठीक नहीं । ज्योतिश्शास्त्र के कई ग्रन्थ हैं लेकिन किसी में यह बात नहीं है कि सूर्यग्रह के अनुकूलराशि में रहने से धूप में नही जलेगा, एवं चांद के अनुकूलराशि में रहने से सरदी जुकाम नहीं लगेगा ।

जन्मलग्न से तीसरे स्थान में सूर्य जिस की जन्मकुण्डली में हो वह बुद्धिविक्रमवान् होता है । ''मतिविक्रमवान् तृतीयगेऽर्के'' ''निधनगे विकलेक्षणश्च''- अष्टमस्थान में सूर्य, जिस की कुण्डली में हो उस की आँखों

में दोष होता है-वराहमिहिचाचार्य (बृहज्ञातक - भावफलाध्याय २, ३ श्लोक)

जन्मलग्न से तीसरे स्थान में चांद हो तो प्राणिहिंसक होता है ''हिंस्रो भ्रातृगते''- अष्टमस्थान में चंद्रमा हो तो उस की दिमाग में कई विचार विमर्श होते हैं, व्याधियों से पीडित होता है, ''बहुमतिः व्याध्यर्दितश्चाष्टमे'' बृहज्ञातकम् -भावफलाध्याय ४१५ श्लो)

शास्त्रकार जो हैं कई जातककुण्डलियों का खूब परिशीलन करके इस तरह की ग्रहस्थिति का फल इस तरह होता है - इस तरह की ग्रन्थरचना करके छोड़े हैं । इसके अनुसार फलितों का परिशीलन करना है न कि मनमानी कल्पनाओं से कुतर्कों से वाद विवाद करना है । चिकित्सा करने से बीमारी ठीक होती है लेकिन मुर्दा है तो चिकित्सा क्या कर सकती है? चिकित्साशास्त्र सत्य है तो मुर्दा क्यों नहीं उठेगा? - इस तरह सवाल से कोई फायदा नहीं है। जैसे चिकित्साशास्त्र के कुछ नियम हैं ऐसे ज्योतिश्शास्त्र के भी अपने नियम हैं। इस बात को समझना है, कुतर्क नहीं करना है ।

श्रीदयानन्दसरस्वती और भी कहते हैं कि सूर्यादिलोक जडात्मक हैं उन में चेतना नहीं है, उन से दूसरों को न सुख मिलेगा न दुःख । (सत्यार्थप्रकाश- ४५२ पृ)

जवाब : जडात्मक औषध जो हैं वे तबीयत खराब करते हैं जब वे लोग इस्तेमाल करेंगे जिनका स्वास्थ्य ठीक ही है । जिनकी तबीयत खराब है उन को तो फायदा करेंगे ही । इस से साबित होता है कि जडात्मक वस्तु भी सुख और दुःख जरूर कर सकते हैं ।

योगशास्त्र में कहा गया कि सूर्य के बारे में संयम करने से ब्रह्माण्ड का ज्ञान हो जाता है, ''भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात्'' (पातञ्जलयोगदर्शन ३-२६ सू)

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् - पातञ्जलयोगदर्शन ३-२७ सू चन्द्रमा में संयम करने से ताराओं का विशिष्ट सन्निवेशज्ञान प्राप्त होता है । इसलिए सूर्य और चन्द्र आदियों की पूजा से प्रयोजन जरूर है । तैत्तिरीयारण्यक में शिशुमारध्यान है वह सारे विश्वरूप का ही ध्यान है । उस का ध्यान जो हर रोज करते हैं उन केलिए सत्फल यहाँ बता रहे हैं :-

'स वा एष दिव्यः शाक्वरः शिशुमारः तगँ ह य एवं वेद, स पुनः मृत्युं जयति, जयति स्वर्गं लोकं नाध्वनि प्रमीयते नाग्नौ प्रमीयते नाप्सु प्रमीयते नानपत्यः प्रमीयते लघ्वन्नो भवति' यह दिव्य और शक्तिमान् शिशुमार है । इस का ध्यान करने से अपमृत्यु नहीं है । स्वर्गलोक पहूँचता है । रास्ते में मर जाना, अग्नि में मर जाना पानी में मर जाना - ऐसी बातें नहीं हो सकती हैं । वह सन्तान के बिना नहीं रहेगा । इसको (उपासक को) आसानी से आहार मिल जायगा (- तैत्तिरीयारण्यक - प्रश्न - १९६ पृ)

छान्दोग्योपनिषद् में षोडशकलब्रह्म की उपासना बताते हैं । चार दिशाएँ चार कलाएँ । ये परब्रह्म में एकपाद है (एक हिस्सा है) इस का नाम प्रकाशवान् । इसको प्रकाशवान् समझकर ध्यान करनेवाला प्रकाशवान् होता है ।

पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक और समुद्र - चार ब्रह्म का दूसरा पाद है जो, अनन्तवान् कहलाता है । इस को अनन्त समझकर उपासना करने वाला अनन्तवान् होता है ।

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् - ये चार परब्रह्म का और एक पाद है । इस का ध्यान करनेवाला ज्योतिष्मान् होता है ।

प्राण, चक्षुस्, श्रोत्र, मन - चार कलाओं का परब्रह्म का और एक पाद

होता है। इस की उपासना करनेवाला आश्रय पा लेता है। (छान्दोग्य ४ अ, ५,६,७,८,खं)

इस तरह सोलह कलाओं के चार पादों में ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया गया है । इस उपासना से सत्फल मिल जाते हैं । इसलिए ब्रह्मदृष्टि से जडात्माओं की उपासना करना गलत काम नहीं है ।

भले ही विश्व जड है लेकिन उस का आधार होकर उस में सर्वव्यापी चैतन्यरूप परमेश्वर है, इसीलिए विश्व का ध्यान करने से अच्छे फल मिलने में कोई आपत्ति या शंका नहीं है। ऊपर योगशास्त्र में सूर्य, चन्द्र आदियों से जो सत्फलित मिलते हैं उन का वर्णन दिया गया इसलिए हमें समझना है कि विश्व में कुछ अंश (भाग=हिस्सा) का ध्यान करने पर भी सत्फल जरूर मिलेगा इस में अनहोनी बात नहीं है ।

स्वामीजी का विमर्श :- 'जब तक आप के पैर.....(दुःखी) लोगों के घर में नहीं रखते हैं तब तक उनको नवग्रह स्मरण में नहीं आते। (सत्यार्थप्रकाश ४५२ पृ)

जवाब : मामूली तौर से जीवन में जब संकट आते हैं तभी उन से छुटकारा पाने केलिए जोषीजी के पास जाते हैं। उन को अपनी जन्मकुण्डली दिखाते हैं। जोषीजी जो उपाय बताते हैं वह समुचित लगता है तो आचरण करते हैं। भविष्य को जानने की इच्छा से जोषीजी के पास जाकर पूछते हैं। जोषीजी यजमानों के घर जाकर उनकी जन्मकुण्डली बताना थोड़ी होता है । जोषीजी का वचन भले ही अनुचित है फिर उस का चेहरा देखनेवाला है ही नहीं । इसलिए स्वामीजी का विमर्श ठीक नहीं है ।

स्वामीजी का वाद - धनवान्, गरीब, राजा, रंक सब अपने अपने कर्म के अनुसार बन जाते हैं। ग्रहों के प्रभाव से नहीं। (सत्यार्थप्रकाश ४५७ पृ)

परिशीलन : कर्म जो हैं आगामि संचित और प्रारब्ध तीन तरह के हैं। यह बात ब्रह्मसूत्र ४ अ, पा-१४,१५ सू के अनुसार है । प्रारब्धकर्म अनुभव से ही क्षीण होता है इस का प्रमाण है ''प्रारब्धं भोगतो नश्येत्'' । इस जन्म में जो कर्म करते हैं उन का फल बाद में आयगा- यह 'आगामी' कहलाता है । एक जीवन में जिन कर्मों का अनुभव होता, वह सब प्रारब्ध नहीं है । कुछ जो हैं, संचित कर्म का फल हैं, कुछ आगामीकर्मों का फल इस जन्म में प्राप्त करना जरूरी नहीं है ।

कर्म के अनुसार धनप्राप्ति, गरीब होना जो है - इसे स्वामीजी भी मान लेते हैं । जीवन में किस कर्म का अनुभव कब होता है? एक व्यक्ति अपने जीवन में एक ही समय सुख का फल या दुःख का फल भोगता है? - इस मामले में ग्रह सूचित करते हैं - अर्थात् कर्मफल और ग्रहगति जिस को सूचित करती है - इन दोनों में फरक नहीं पड़ता है । यह विषय प्रमुख ज्योतिषविद्वान् वराहमिहिर ने अपने लघुजातकग्रन्थ में बताया ।

श्लो. यदुपचितमन्यजन्मनि शुभाशुभां तस्य कर्मणः पंक्तिम्
व्यञ्जयति शास्त्रमेतद् तमसि द्रव्याणि दीप इव

(एम्.ए. ज्योतिष-करस्पांडेन्स कोर्स । सं १४-२८९ पृ)

जैसे अंधेरे में चीजों को दिया प्रकाशित करता है वैसे ही पूर्वजन्म में संपादित कियेहुए शुभ और अशुभ कर्मों को यह शास्त्र प्रकाश में लाता है - लघुजातक। ग्रह हैं यदि प्रभावशाली, कर्मसिद्धान्त और ज्योतिषफलों का समन्वय जो किया गया वराहमिहिर से वह युक्तियुक्त ही है । श्रीस्वामीजी के मत में ग्रह के प्रभाव से अमीर और गरीब नहीं बनते । (सत्यार्थप्रकाश ४५३ पृ)

परिशीलन : ग्रहों के असर पर स्वामीजी का भरोसा जब नहीं है, कुछ भी कहें वे मना करेंगे ही । यहाँ कुछ प्रमुख विद्वानों के ग्रन्थों को प्रमाणित कर रहे हैं जो जन्मतः ज्योतिषज्ञान को कमाई के काम में नहीं लाते थे ।

श्री चेळ्ळपिळ्ळ वेंकटशास्त्रीजी प्रमुख विद्वान् और कविराज थे । उन्होंने अपने जीवन के कुछ सन्निवेशों को अपनी जन्मकुण्डली से मिलाकर 'जातकचर्या' नामक ग्रन्थ लिखा ।

श्री मुलुकट्ल नरसिंहशास्त्रीजी रामायणशास्त्री नाम से प्रसिद्ध थे । उन्होंने भारतदेश में कई प्रांतों में घूम घूमकर रामायणप्रवचन करके कई सत्कारों को बिरुदों को भी पाया । उन्होंने भी अपने जीवन के संदर्भों को अपनी जातककुण्डली से मिलाकर एक ग्रन्थ लिखा । वे भी जोषीजी नहीं थे, पुरोहित भी नहीं थे । ज्योतिषफल बताने से कमानेवाले नहीं थे । फिर भी वे लोग इस तरह ग्रन्थरचना करके मशहूर हुए । अपने अनुभवों को लोगों के सामने रखने केलिए ही लिखें ।

श्री कूनपुलि शेषावतार शास्त्री की रचना थी ज्योतिषरत्नावलि । उस के दूसरे भाग में बारह लग्नों के लक्षण उन लग्नवालों को, ग्रह, जो फलितों को योगों को दृष्टियों को भी समझाते हुए संघ में कुछ प्रमुख महापुरुषों के जीवितों को उदाहरणों के रूप में दिखाया । उन का जीवन असत्य नहीं था। वे प्रसिद्ध पुरुष थे इसलिए रचयिता असत्य नहीं लिख सकते थे ।

मेषलग्न के उदाहरण थे माजी भारतराष्ट्रपति श्रीवराहगिरि वेंकटगिरि, आन्ध्रप्रदेश माजी मुख्यमन्त्री टंगुटूरि प्रकाशं पंतुलु, प्रमुख संस्कृतान्ध्रविद्वत् कवि काशीकृष्णाचार्य, प्रख्यात चलचित्रदर्शक श्री पी. पुल्लय्य, प्रसिद्ध तेलुगु कवि करुणश्री, इन की जातककुंडलियाँ, कुण्डलियों के अनुसार जीवितों में ग्रहगतियों के फलित समन्वय करके श्रीशेषावतारशास्त्रीजी ने दिखाया । जातककुण्डलियों के साथ जीवितों का संबंध नहीं हैं तो, उदाहरण दे नहीं पाते थे न?

इसलिए ''ग्रहों का प्रभाव नहीं'' कहना वास्तविकता से बहुत दूर है (ज्योतिषरत्नावली २ भाग ८५ पृ. से)

इस तरह वराहमिहिर का कर्मसिद्धान्त और जातककुण्डली के समन्वय को पक्का समझना है। स्वामीजी का विमर्श - कई जोषीजी अपने पुत्र और बेटियों की शादी, मुहूर्त देखकर ही करते हैं कराते हैं ग्रहों की अनुकूलता क्यों नहीं है? शादी के बाद पति-पत्नी के बीच में विरोध और तलाक हो रहे हैं, पतिदेव मर जाते हैं, पत्नी कहाँ मर जाती है - यह सब देखते देखते समझना चाहते हैं कि ऐसा क्यों होता जा रहा है? (सत्यार्थप्रकाश - ४५७ पृ)

परिशीलन : यह सोचने की बात है। कर्म तीन तरह का होता है। प्रारब्ध, संचित और आगामि। तीनों में प्रारब्धकर्म को ज्ञानी को भी भोगना पड़ता है। संचितकर्म, ज्ञान से दग्ध हो जाता है। आगामिकर्म, ज्ञानी को छूता ही नहीं। देखिये - 'तदधिगम उत्तरपूर्वाघयो रश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात्'' (प्रारब्धकर्म की अपेक्षा पहले संचितकर्म और आगामिकर्म नष्ट होते हैं, शरीर पात ही मोक्ष का अवधि कहलाता है, प्रारब्धकर्म से पहले ही दूसरे कर्म संचित और आगामिकर्म नष्ट हो जाते हैं) अर्थात् प्रारब्ध कठिन है तो चिकित्सा करने के बावजूद, बीमारी ठीक नहीं होती। जोषीजी भी इसी तरह अपने सन्तान के दुःखों को कभी कभी हटा नहीं सकता। वह तो कर्मबल का निशान है, लेकिन ज्योतिश्शास्त्र की कोई गलती नहीं है।

शान्तिकर्मों के फलभोग कर सकते हैं। इस जन्म में कियेहुए कुछ कर्मों का फल, इसीजन्म में भोगने को मिलते हैं। ''अत्युत्कटैः पुण्यपापैः इहैव फलमुच्यते'' (अत्यधिक पुण्य और अत्यधिकपापों का फल इसी जन्म में भोगनापड़ता है) इसीलिए जोषीजी के बच्चों को भी कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

स्वामीजी का वाद : ग्रह और भूमि आसमान में आपस में बहुत दूर पर है। उनग्रहों का, भूमि पर जो कर्ता है जो कर्म है उन से साक्षात् संबन्ध नहीं है। (सत्यार्थप्रकाश - ४५७ पृ)

जवाब : सूरज, यद्यपि जमीन से बहुत दूर पर है तथापि अपनी आकर्षणशक्ति से सारे ग्रहों को आकर्षित करता है। उसी प्रकार भूमि की आकर्षणशक्ति से चन्द्रमा भूमि की चारों ओर मंडराती है। इस से यह स्पष्ट है कि बहुत दूर पर रहने से ग्रहों का असर जमीन पर रहनेवाले लोगों के ऊपर नहीं गिरने का सवाल ही नहीं उठता। चन्द्रमा की आकर्षणशक्ति से पूर्णिमा के दिन समुंदर उफनता है। सूर्यकान्ति जहाँ कम है वहाँ पौधे क्षीण होते हैं। सूर्यकान्ति के प्रसार से मन प्रसन्न होता है नहीं तो जब बादलछा जाता है तब मन नहीं लगता है। ''मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनम्'' (बादल जब छा जाता है तब दुर्दिन कहा जाताहै) यह निघंटु का वचन है। (अमरकोश - दिग्वर्ग १२ श्लो) चूँकि सूर्यकान्ति अत्यधिक है वह (सूर्य) अधिकप्रभाव दिखाता है। सूर्य से कान्ति ग्रहण करके चन्द्रमा भी समुंदर को पूर्णिमा के दिन लहरों से बढाता है। इसी तरह भूमि से कुछ दु पर रहने से कम कान्तिमान् लगनेवाले ग्रह भी कुछ न कुछ प्रभाव व्यक्तियों पर जरूर डालते हैं। उस प्रभाव का वर्णन करनेवाले ग्रन्थ ज्योतिश्शास्त्र में मिलते हैं।

ज्यादा लिया हुआ औषध जितना प्रभाव डालता है उस से छोटीमात्रा में लिया हुआ (होमियो) औषध ज्यादा प्रभाव डालता है। इस का विवरण होमियोपति चिकित्सा क्षेत्र में प्रसिद्ध है। सूक्ष्म औषध, मन पर असर डालता है। मन पर उस का असर किस तरह होता है - इस का विवरण होम्योपती के मेटीरिया मेडिका विवरण करते हैं। इसी तरह शनिचर आदि ग्रहों का विद्युदयस्कान्त शक्ति सूक्ष्म होने से मन पर प्रभाव डालते हैं, तब आदमी के मन में आलोचन, उस के बर्ताव पर प्रभाव डालते हैं। ग्रहों का विद्युदयस्कान्त शक्तियों का सम्मेळनों का प्रभाव, ज्योतिश्शास्त्र से हम समझ पाते हैं।

एक परमाणु से उदजनि लेकर नोबेलियम् जो १०२ परमाणुओं को रखता है - उन अणुओं तक संसार में कई करोड के तरह तरह के पदार्थ

उत्पन्न होते हैं । इसी प्रकार नक्षत्रमार्ग से विविधस्थानों पर निकलते हुए विद्युदयस्कान्तशक्तियों से विलक्षणफल मिलते हैं । उन विषयों का विवरण ही ज्योतिश्शास्त्र बन गया। इस से हमें समझना है कि सुदूरवर्ति ग्रहों का मानवाळि के साथ संबन्ध जरूर है । इसे नहीं समझना गलत बात है ।

श्री स्वामीजी का सवाल :- अगर ग्रहों के फल सत्य हैं तो, इस का जवाब दीजिये - एक मनुष्य जब जन्म लेता है इसी क्षण को ध्रुवत्रुटि मान कर जातककुंडली को बनाते हैं, तभी और एक जन्म लेता है कि नहीं? अगर नहीं बोलते हैं तो गलत है । अगर पैदा होता है फिर दूसरा चक्रवर्ती क्यों बनता है? (सत्यार्थप्रकाश-४५७ पृ)

एक राशि के ३० डिग्री हैं । उस में ६० अंश हैं । हर एक१/६० अंश में फलभाग का फरक पड़ता है ।

ग्रहों से जो मौलिक विद्युदयस्कान्त शक्ति निकलती है वह सूक्ष्मरूप है। मन इन्द्रिय बहुत सूक्ष्म हैं और उस के ऊपर उसका प्रभाव पहले गिरता है। उस के बाद व्यक्ति में उसके वंशक्रमागत प्रभाव, परिसर प्रभाव सब गिरते हैं। इस प्रकार उस में (व्यक्ति के) आलोचनाओं में बर्ताव में फरक हो सकता है। इस प्रकार, एकव्यक्ति और दूसरे व्यक्ति में फरक है, एक की तरह दूसरा नहीं है - इस को समझना और मानना है कि ग्रहों का प्रभाव है ।

स्वामीजी का विमर्श :- ग्रहदोषशान्ति के बारे में भी स्वामीजी के विमर्श हैं :- ''किसी दूसरे के हाथ में ग्रहदान करने के बदले में, वहीं ग्रहदान ले लेगा अनुभव करेगा जिस का ग्रह दोषशान्ति केलिए दान किया जाता है, तब क्या नुकसान है? ऐसी बात नहीं । जिस के हाथ में ग्रहदोषशान्ति केलिए दान करना चाहिए उन्हीं को देना है दूसरों केलिए नहीं - तो (तब) ऐसा लगता है कि ग्रहों को आप अपने पकड में रखते हैं क्या? ऐसी बात हो, तो सूर्य आदि को अपने घर में रख लीजिये और जलकर राख हो जाइये'' ।

जवाब : यह कटुविमर्श जो है असावधानी से और नासमझदारी से ही होता है। अगर एक ग्रह अनुकूल न हो, उस ग्रहदोष की शान्ति केलिए उस ग्रह के संबंधित रत्नों का धारण करना चाहिए। जिनका आर्थिकबल कम हो, वे लोग उन ग्रहों के संबंधी जड़ीबूटियों के साथ स्नान कर सकते हैं। नहीं तो चांदी, लोहा आदि अल्प मूल्यवस्तुओं का धारण कर सकते हैं। उन ग्रहों के संबंधी देवताओं को पूजा, जाप और स्तोत्र कर सकते हैं। ग्रह दोषशान्ति के वास्ते एक रास्ता है वही है - दान करना- ऐसी बात है ही नहीं। लेकिन अमीर लोग अपने से जब नहीं होता है तब दूसरों से जाप आदि कराते हैं और दान देकर ग्रहदोषशान्ति को पा लेते हैं। श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी ज्योतिश्शास्त्र पर जो सवाल किये हैं उन सब के जवाब हम दे चुके हैं। इसलिए ज्योतिश्शास्त्र को प्रामाणिक नहीं मानना ठीक नहीं।

२८. यति (सन्यासी), पीठ, विमर्शन

परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वती स्वामीजी सन्यासियों का और पीठों का भी विमर्श कर चुके हैं :-

सवाल :- गिरि, पुरी, भारती इत्यादि गोसायी (सन्यासी) अच्छे हैं क्या? यह पूछना पड़ता है क्यों कि वे झुंडों के झुंड बनकर कहीं कहीं इधर उधर घूमते फिरते हुए सैकड़ों संतों को खुश कर रहे हैं । वे सब जगह अद्वैत मतप्रचार करते रहते हैं । ऐसा ही थोड़ाबहुत पढते हैं और पढवाते हैं, शायद इस मामले में वे लोग अच्छे हो सकते हैं ।

जवाब : ये दस नाम, सन्यासियों के हैं ये नये हैं लेकिन पुराने नहीं हैं । वे लोग झुंड होकर भोजन के समय पधारते हैं और किसी काम में नहीं। कई साधु लोग पेट भरने के वास्ते झुंडों में रहते हैं । उन में कुछ दाम्भिक लोग भी हैं। उदा उन में से एक मुखियाँ 'महान्त' नाम पाकर शाम को एक गद्दीपर विराजते हैं । यह दिखावट दुनिया के सामने काम में आती है उन का मतलब यह है कि उस से जग में प्रतिष्ठा बढती है और धन इकट्ठा कर सकते हैं ।

पंचम समुल्लास में जो लिखा गया वह सन्यासियों का कर्म है । वे लोग उस का आचरण नहीं करते हुए बेकार समय गवाते हैं । कोई भी उपदेश देगा वह उन का शत्रु बनता है । अक्सर ये लोग भस्मत्रिपुंड्र और रुद्राक्षधारण करते हुए शैवसंप्रदाय में अभिमान रखते हैं । शास्त्रार्थ करते समय वे लोग

अपना मत शंकराचार्यसंप्रदाय का स्थापित करते हैं और शंखचक्रांकण आदि का खण्डन करते हैं । लेकिन वेदमार्ग की उन्नति केलिए पाखण्डमार्ग जितने भी हैं उन के खण्डन केलिए तकलीफ नहीं उठाते । ये सन्यासी समझते हैं कि हम महान हैं, हम को खण्डन और मण्डनों से कोई मतलब नहीं । - ऐसे लोग इस जमीन पर भारी हो गये । ... इत्यादि ... स्वामीजी का विमर्श रहा ।

परिशीलन : मोतीलालबनारसीदास प्रेस और प्रकाशकों ने उपनिषत् संग्रह नामक ग्रन्थ छपाया । उस में श्रीशंकराचार्य रचित मठाम्नायोपनिषद् नामक ग्रन्थ उपलब्ध है । उस में तीर्थ, आश्रम, वन, गिरि, अरण्य, पर्वत, सागर, सरस्वती, पुरी - ये दस नाम हैं । (४८ पृ) इसलिए दस नाम आजकल के नहीं हैं ।

स्वामीजी के ख्याल से धन का सञ्चय करना ही उनका (सन्यासियों का) ध्येय (लक्ष्य) रहा । लेकिन ये ही लोग विद्वानों केलिए परोपकारी पुरुषों केलिए योग्य सन्यासियों केलिए दान करते हैं तो, वह दोष (पाप) नहीं लगेगा। कभीभी नहीं लेगेगा ।

''विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्'' मनु-११-६

तरह तरह के रतन और सुवर्णादि धनराशी को सन्यासियों को देना चाहिए । यह मनुस्मृति में बताया गया है ।

अगर स्वामीजी कहते हैं कि :- सन्यासियों केलिए धन दे सकते हैं लेकिन पैसे इकट्ठा करना उनको नहीं चाहिए ।

जवाब यह है कि उनके दिल में क्या है स्वामीजी को कैसे पता लगेगा? उन सन्यासियों के मन में धनसंचय करने का इरादा है या परोपकार करने का मतलब है । ''परहृदयमप्रत्यक्षम्'' ।

इन का विमर्श यही है कि उस तरह का कर्म नहीं करते हुए वृथा कालयापन करते हैं । कुछ लोग बेकार समय गवाते हैं, लेकिन सब से कठिन

सर्वसंगपरित्याग करके जो बैठे हैं ऐसे सन्यासी कभी समय को व्यर्थ नहीं करेंगे।

पीठाधिपति जो सन्यासी हैं वे, वेदशास्त्रसंरक्षण, धर्मोपदेश, भगवान् की आराधना, विद्यालयों का और चिकित्साकेन्द्रों का रक्षण पालन, पोषण अपने शिष्यों के द्वारा कराना और मन्दिरों में आराधना को क्रममार्ग से निभाना, भगवद्भक्ति को आगे ले जाना - इत्यादि करते हैं ।

इन का आरोपण यह भी एक है कि पाषण्डमार्गों का खण्डन नहीं करते । ब्रह्मसूत्रों में पाखण्डमार्गों का खण्डन किया हुआ है । श्रीशंकरभाष्य में उस का विवरण मिलता है । ये पीठाधिपति अपने पास जो आते हैं उनको पाखण्डमत खण्डन जरूर समझाते हैं । लेकिन आजकल भारत में प्रजातंत्र चल रहा है । दूसरे धर्मों का खण्डन करने से मतकलहों को उठाने के नाम पर गिरपफदार हो जाने की शंका है । उस से धर्म के आचरण में अड़चन हो जाता है और कोई प्रयोजन नहीं है ।

इन का विमर्श और भी है कि, ये सन्यासी ''खण्डन और मण्डन से हमारा क्या मतलब'' - समझकर अपने को महात्मा घोषित कर लेते हैं ।

परिशीलन : मोक्ष को पाने केलिए जो वास्तविकरूप में तत्पर हैं वे भूमि के ऊपर कभी भारी नहीं होते । उन के द्वारा लोगों को शांति मिल जाती है । महात्माओं का लक्षण भगवद्गीता में है :-

श्लो. ''वासुदेवस्सर्व मिति स महात्मा सुदुर्लभः''

आखरी जन्म में ज्ञानवान् होकर इस चराचर सृष्टि को वासुदेव के रूप में मानने की दृष्टि से जो मेरी सेवा करता है, उस तरह का महात्मा जिस की दृष्टि असीमित है बहुत ही दुर्लभ है, मिलना मुश्किल है ।

भगवान् के ध्यान में जो महात्मा हमेशा केलिए टिके हुए हैं उन के दर्शन, स्पर्श, संभाषण, दूसरों को पावन करते हैं । इसलिए उन को जमीन पर

भारी समझना गलत बात है ।

श्रीदयानन्दसरस्वती, मामूली सन्यासियों का विमर्श इस तरह करते हैं:- बचपन में ही सन्यास का स्वीकार करके घूमते फिरते हैं । पढाई को बंद करते हैं । ऐसे सन्यासी जल स्थल और पाषाण मूर्तियों के दर्शन करते हुए पूजन करते हुए घूमते हैं । थोड़ा बहुत विद्यावान् और मौनी रहते हैं । एकान्तवास में अपनी मर्जी से खा पीकर सो जाते हैं । उत्तम कार्य नहीं करते। ऐसे सन्यासी इस संसार में बेकार जिंदगी बिताते हैं । ''सन्यासी के धर्म, कुछ हैं देखिये :-

श्लो. एकरात्रं वसेद् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम्
महाक्षेत्रप्रविष्टानाम् विहारस्तु न विद्यते

(धर्मसिन्धु उपरि ४३२ पृ)

सन्यासी को चाहिए कि गाँव में एक दिन (रात) शहर में पांच रात केवल रहना । महाक्षेत्र में जो प्रवेश करते हैं उन केलिए यह नियम लागू नहीं है । इसलिए घूमते हुए सन्यासियों का विमर्श नहीं करना । ''नित्यं भिक्षां यतिश्चरेत्'' सन्यासी को चाहिए कि हर रोज भीख मांगना है । - यह उन का धर्म है (धर्मसिन्धु ४३२ पृ) इस तरह, भीख मांगना इनका कर्तव्य धर्म है - इस हालत में उनकी निन्दा करना गलत है ।

'न चाध्ययनशीलः स्यात्' (अध्ययन करना ही उन का स्वभाव नहीं होना है धर्मसिन्धु ४३२ पृ)

इस की वजह से उन की निन्दा नहीं करनी चाहिए कि वे लोग विद्याविहीन हैं । परमात्मानुसन्धान केलिए आवश्यक उपनिषद् केवल, उन के काम में आती हैं । उन्होंने गृहस्थकर्मों को त्याग दिया । इसलिए कर्मकाण्ड संबंधी वेदभाग भी उन को अनावश्यक है । उन केलिए आचरणयोग्य धर्म दूसरे हैं । 'अध्यात्मरतिः' मनुस्मृति ६-४९ (सन्यासी परमात्मा से प्यार रखता है)

वे लोग परमात्मा का अनुसन्धान जरूर करेंगे । उस केलिए मौनव्रत सहायक होता है । इसीलिए उन का विमर्श नहीं करना है कि ये लोग मौनी रहते हैं। सन्यासी नियम के साथ भिक्षा मांगेगा। स्वेच्छा से वे खा नहीं सकते । मामूली तौर से सन्यासाश्रम ग्रहण करने केलिए उम्र में चौथा हिस्सा उपयोगी है। अर्थात् अगर उम्र सौ साल माना जाय, छिहत्तर साल की उम्र में सन्यासग्रहण करना है। उस उम्र का आदमी अपने काम अपने आप कर लेगा तो बहुत है, दूसरे सत्कर्म क्या कर सकेगा? ''परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्'' दूसरों की भलाई करने से पुण्य मिलता है, दूसरों को तंग करने से पाप लगता है । सन्यासी केलिए पुण्य भी प्रतिबन्धक है। उस को भोगने केलिए फिर से जन्म लेना पड़ेगा। मोक्ष केलिए जो सन्यास ग्रहण करता है उस के रास्ते में पुण्यकर्म भी अड़चन होगा ही । परमात्मा के ज्ञान से जो जीवन्मुक्त होता है उन को पुण्य और पाप नहीं छूते । ऐसे लोगों को पुण्यकर्म भी प्रतिबन्धक नहीं होता है ।

जो पूर्णविराग से, नहीं तो आतुरसन्यास ग्रहण करने से, बचपन या जवानी में सन्यासी बनता है उस का लक्ष्य मोक्ष ही है, जब तक ज्ञानसिद्ध नहीं, तबतक दूसरे सत्कर्मों के प्रति ख्याल नहीं कर सकेगा । कई जन्मों तक साधना करने से उसको लक्ष्य पाना पड़ता है । ज्ञानसिद्ध सन्यासी, लोकोपकार करेगा तो हम लोग खुशी मना सकते हैं । इसलिए सन्यासियों के ऊपर लोकोपकार करने केलिए और सत्कार्य करने केलिए, दबाव डालना ठीक नहीं है ।

२९. सायणभाष्यनिन्दा और उस का निराकरण

श्रीदयानन्दसरस्वती खुद दूसरी वेदभाष्यभूमिका में प्रकट करते हैं क्यों कि सायणाचार्य भाष्य ठीक नहीं है। उस का निरूपण करते हुए एक मन्त्र का उदाहरण देते हैं।

इन्द्रं मित्रं वरुण मग्निमाहुरथो दिव्यस्ससुपर्णो गरुत्मान्, एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः। (ऋक्संहिता १मं १६४सू ४६मंत्र) श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी, इस मन्त्र का सायणभाष्य का धिक्कार करके खुद अर्थ लगाते हैं। और कहते हैं कि यास्कमुनि का निरुक्त भी अपना दिया हुआ अर्थ ही बताता है। हम ठीक से दोनों का परिशीलन करते हैं :- श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामी के वाक्य इस प्रकार हैः- ''तेनेन्द्रशब्दो विशेष्यतया गृहीतः मित्रादीनि च विशेषणतया, अत्र खलु विशेष्यः अग्निशब्दः, इन्द्रादीनां विशेषणानां सङ्गेऽन्वितो भूत्वा पुनस्स एव सद्वस्तु विशेषणं भवति। (ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका ३३६ पृ)

(इस मन्त्र में सायणाचार्य ने इन्द्रशब्द को विशेष्य और मित्रादिशब्दों को विशेषण करके भाष्य की रचना की। लेकिन दयानन्दजी के मत में अग्निशब्द विशेष्य है और इन्द्रादिविशषणों से सहित समन्वय पाकर फिर से 'सद' शब्द का विशेषण होता है) ''तथैवास्मिन् मन्त्रे परमेश्वरेणाग्निशब्दो

द्विरुच्चारितः विशेष्य विशेषणाभिप्रायत्वात् (ऋग्वेदभाष्यभूमिका ३३७ पृ)

(इस मन्त्र में परमेश्वर अग्निशब्द का उच्चारण दो बार करता है। वह इन्द्र आदि शब्दों का विशेष्य सद्वस्तु का विशेषण होने से दो बार उच्चारण किया गया) इसलिए दयानन्दजी का मतलब यह है कि सायणाचार्यभाष्य गलत है। असलियत यह है कि सायणाचार्य इन्द्र शब्द को 'विशेष्य' कही नहीं कहते हैं। 'आदित्य' को विशेष्य बताया। ''अमुमादित्यमैश्वर्यविशिष्टमग्निमाहुः'' ऋक्संहिताभाष्यम् । (१में १६४सू ४६ऋ २९६पृ)

इस आदित्य को ऐश्वर्यसहित अग्नि के रूप में बताया । इसलिए दयानन्दसरस्वती के ख्याल से सायणाचार्य का अभिप्राय अलग रहा। असल में सायणाचार्य भाष्य का मतलब ही दूसरा था। इस मामले में दयानन्दस्वामीजी का विमर्श असत्य ही है ।

इस मंत्र में सायणाचार्य में आदित्य को विशेषरूप से कहने के कुछ कारण हैं। अनुक्रमणिका में ''इंद्रं मित्रं सौर्यौ'' लिखा हुआ है। सायणभाष्य में उस का विवरण इस प्रकार है :- 'इन्द्रं मित्रं वरुणं कृष्णं नियानमित्येते सूर्य देवते' ('इन्द्रं, मित्रं, वरुणम्') कृष्णं नियानम्' - इन दोनों मन्त्रों का सूर्य ही देवता है । ऋक्संहिता भाष्य २ संपुट २५६ पृ) इस अनुक्रमणिका को सायणाचार्य ने इस सूक्त के पहले (प्राथमिक परिच्छेद में) लिखदिया ।

इसलिए यहाँ सायणभाष्य गलत है तो अनुक्रमणिका गलत हो जाती है। 'इंद्रं मित्रम्'-मंत्र के बाद जो मंत्र है उसका भी देवता सूर्य है- ऐसा कहने के बाद का मंत्र संवत्सर का संबन्ध रखता है। संवत्सर, सूर्य से बनता है यह प्रकरण जो है ऊपर के मन्त्र को सूर्यदेवताक, के रूप में निरूपित करता है।

''निरुक्तकार यास्काचार्य ने भी अग्निश्ब्द को विशेष्यविशेषण के रूप में अन्वित किया'' - यह दयानन्दसरस्वती का आरोपण भी सही नहीं है- ''निरुक्तकारेणापि अग्निशब्दः विशेष्यविशेषणत्वेनैव वर्णितः'' (ऋ ग्वेदादि

भाष्यभूमिका ३३६, ३३७ पृ) यास्काचार्य ने जो बताया वह देखिये :-'किं च तमेव वृष्ट्यादिकारणमादित्यात्मानमग्निं यमं नियन्तारं मातरिश्वानमन्तरिक्षे श्वसन्तं वायुमाहुः' (वर्ष आदि का कारण आदित्यरूपी जो अग्नि है वही यम है वही नियन्ता है, वही अन्तरिक्षलोक में श्वास लेनेवाला वायु है निरुक्तव्याख्या ३७२ पृ) निरुक्तव्याख्याकार मुकुन्दशर्मा ने लिखा कि निरुक्त में भी अग्निशब्द से आदित्य कहलाता है ।

निरुक्तकार ने इस मंत्र का जो अर्थ लिखा है उस का परिशीलन करेंगे :- निरुक्त में 'अग्निः पृथिवीस्थानः' - इन शब्दों से शुरू करके अग्निदेवता की स्तुति करनेवाले कुछ मंत्रों का विवरण किया (निरुक्तम्- देवताकाण्ड ७अ ४पा ३६८पृ)

उस के बाद निरुक्त में 'स न मन्येतायमेवाग्निरिति अप्येते उत्तरे ज्योतिषी अग्नी उच्येते (इस पार्थिवाग्नि को केवल अग्नि नहीं समझना, इस से अलग मध्यमज्योति वैद्युताग्नि और उत्तमज्योति सूर्य को भी अग्नि समझना है।(निरुक्त ७अ ४पा १८ख) वैद्युताग्नि केलिए अभिप्रवन्त मन्त्र का उदाहरण देते हैं, जिस में वैद्युताग्नि केलिए अग्निशब्द का प्रयोग किया गया। उत्तमज्योति जो सूर्य है - उस केलिए भी सूर्यवाचक मन्त्रों को उदाहरण देते हैं)

'समुद्रादूर्मिः मधुमाँग् उदाहरत् इत्यादित्यमुक्तं मन्यन्ते' (समुद्रादूर्मिः इत्यादि मंत्र से आदित्य कहा गया- इस तरह समझते हैं) निरुक्त ३७१ पृ. निपातमेवैते उत्तरे ज्योतिषी अनेन नामधेयेन भजेते (लक्षणावृत्ति से इस अग्निशब्द से मध्यमज्योति जो वैद्युताग्नि, उत्तमज्योति जो आदित्य-दोनों बताये जाते हैं निरुक्त ३७२ पृ) इस तरह यास्कमुनि ने 'इन्द्रं मित्रम्' मन्त्र में अग्निशब्द आदित्य का बोधक बता दिया । इसलिए 'इन्द्रं मित्रम्' मन्त्र, पार्थिवाग्नि या परब्रह्म को नहीं बताता है, इस तरह दयानन्दसरस्वती का यास्क के ऊपर आरोप झूठा है ।

श्रीदयानन्दसरस्वती लिखते हैं कि तथैवात्र मन्त्रे परमेश्वरेणाग्निशब्दो द्विरुच्चारितो विशेष्यविशेषणाभिप्रायत्वात् । इदं सायणाचार्येण नैव बुद्धम् । अतस्तस्य भ्रान्तिरेव जातेति वेद्यम् (''इंद्रं मित्रम् मंत्रं'' मत्र में अग्निशब्द परमेश्वर से दो बार उच्चारित हुआ, एक इन्द्रादिशब्दों का विशेष्य है । दूसरा अग्निशब्द सद्वस्तु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ । यह बात सायणाचार्य को मालूम नहीं थी । इसलिए उन की भ्रान्ति हुई- ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ३३६,३३७ पृ)

लेकिन सायणाचार्य भी इस मन्त्र की एक व्याख्या अग्नि के अर्थ में मानते हैं । देखिये :-

'अत्र केचिदग्निस्सर्वादेवता इति श्रुतितः अय मेवाग्निरुत्तरे अपि ज्योतिषी इति श्रुत्या अग्नेरेव सार्वात्म्यप्रतिपादकोऽयं मन्त्र इति वदन्ति । एतत्पक्षे प्रथमोऽग्निशब्द उद्देश्यः, तमग्निमुद्दिश्य इन्द्राद्यात्मकत्वं कथयन्ति ।' (ऋक्संहिताभाष्यम् २९७पृ २संपुट) (यहाँ कुछलोग 'अग्नि सर्वदेवतास्वरूप है'-इस श्रुति से अग्नि ही वैद्युताग्नि, और सूर्य समझकर इस मंत्र को अग्नि का सर्वात्मत्वप्रतिपादकमन्त्र मानते हैं । उस पक्ष में ''पहला अग्निशब्द उद्देश्य है, और दूसरा अग्निशब्द इंद्राद्यात्मा है''- इस तरह कहते हैं)

इस अभिप्राय को सायणभाष्यकार ने खण्डन नहीं किया । उन्होने अग्निशब्द के विशेष्यत्व का नकार नहीं किया, प्राचीन विद्वानों के मतलबों को प्रकट किया । इसलिए इस मन्त्रार्थ के सिलसिले में सायाणाचार्य की गलती नहीं है । उनको गलत समझना गलती है ।

श्रीदयानन्दसरस्वती ने कहा कि यह मन्त्र सद्वस्तु ब्रह्म को समझाता है । (ऋग्वेदभाष्यभूमिका ३३६ पृ) स्वामीजीतो स्वतन्त्र रहें । वे अपनी मर्जी से जो अर्थ निकालते हैं उसे व्याकरण से सिद्ध करके लिख देते हैं ।

सायणाचार्य जी पुराने प्रामाणिक ग्रन्थों के अनुसार अर्थ लगाते हैं । इसलिए सायणाचार्य को मना करने का मतलब यास्कनिरुक्त और अनुक्रमणिका

जैसे प्राचीनप्रामाणिकग्रन्थों का तिरस्कार करना है ।

चूँकि सायणभाष्य प्रमाणवचनपूर्वक लिखा हुआ है दयानन्दसरस्वती के वेदभाष्यों के पश्चात् भी पण्डित श्रीरामशर्मा आचार्य ने सायणभाष्य के अनुसार ही हिन्दी भाषा में वेदों का व्याख्यान किया । पद्मभूषण डा. श्रीपाद दामोदर सात्वलेकरजी ने प्रधानतया सायणभाष्य का ही अनुसरण किया । श्रीदयानन्दस्वामीजी ने सायणाचार्य के वाक्यों के नाम पर, कुछ वाक्यों का खण्डन किया लेकिन नहीं बताया कि वे वाक्य कहाँ से लाये गये हैं ।

“तस्मात् सर्वैरपि परमेश्वर एव हूयते यथा राज्ञः पुरोहितः सदाभीष्टं सम्पादयति, यद्वा यज्ञस्य सम्बन्धि पूर्वभागे आहवनीयरूपेणावस्थित मित्युक्तम्”। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ३३७ पु)

(इसलिए सब, परमेश्वर का ही आह्वान कर रहे हैं । जैसे पुरोहित राजा का मनोभीष्ट सम्पादन करता है वैसे अग्नि भी परमेश्वर का काम सम्पादित करता है । नहीं तो यह कहना पड़ता है कि यज्ञसंबन्धित प्रदेश के पूर्वभाग में आहवनीय के रूप में अग्नि का स्थान बताया गया) श्रीदयानन्दजी के ख्याल से अग्नि को समर्पित करने से परमेश्वर को ही पहूँचता है, और वह अग्नि भौतिकरूप में यज्ञवेदिका के पूर्वभाग में आहवनीयाग्निरूप में है ।

इन वाक्यों का खण्डन दयानन्दसरस्वती ने इस प्रकार किया :- ‘इदमपि पूर्वापरविरुद्धमस्ति’ तद्यथा - सर्वैः नामभिः परमेश्वर एव हूयते चेत् पुनस्तेन होमसाधकाहवनीयरूपेणावस्थितो भौतिकोऽग्निः किमर्थं गृहीतः? तस्येदमपि वचनं भ्रममूलकमेव । (यह भी पूर्वापरविरुद्ध है । यह विरोध इस प्रकार है :-

सब नामों से जब परमेश्वर ही ध्यान में लाया जाता है फिर, उसे होमसाधक आहवनीयाग्नि के रूपमें मानकर सायणाचार्य फिर से भौतिकाग्नि को क्यों ग्रहण करते हैं? उन का यह वाक्य भ्रममूलक है । (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

३३७ पृ) अग्नि का पर्यायवाची वह्निशब्द, विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र में है। (२५४लो) 'रुद्रो वा एष यदग्निः' (यह अग्नि रुद्र है)-यह बात वेद में है। सब नामों के वाच्यार्थ लोगों में प्रसिद्ध है। 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' जैसे वाक्य परमेश्वर को सब जगह सूक्ष्मरूप से व्यापक बतलाते हैं। इस तरह लक्षणावृत्ति से व्युत्पत्ति से भी अग्नि आदि नाम भगवान् को बताते हैं। इसी की वजह से भगवान् का सहस्रनामस्तोत्र बन गया।

यज्ञ के सिलसिले में अग्नि का आहवनीयाग्नि का अर्थ वाच्यार्थ मानकर परमेश्वर का अर्थ विशेषार्थ मान सकते हैं। इस प्रकार यहाँ विरोध (व्यतिरेक नहीं है।)

श्रीदयानन्दसरस्वती और एक पूर्वपक्ष की शंका करके खण्डन करते हैं। ''कोऽपिब्रूयात् सायणाचार्येण यद्यपीन्द्रादयस्तत्र तत्र हूयन्ते तथापि परमेश्वरस्यैव इन्द्रादिरूपेणावस्थानादविरोधः इत्युक्तत्वाददोषः इत्येवं प्राप्ते ब्रूमः। यदीन्द्रादिनामभिः परमेश्वर ऐवोच्यते तर्हि परमेश्वरस्य इन्द्रादिरूपावस्थिति रनुचिता, तद्यथा- 'अज एकपात् सपर्यगात् शुक्रमकायमव्रणम्' - इति मन्त्रार्थेन परमेश्वरस्य जन्मरूपवत्वशरीरधारणादिनिषेधात् तत्कथनमसदस्ति। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ३३७पृ)

कोई ऐसा बोलेगा कि (पूछेगा) इन्द्र आदि नामों से परमेश्वर ही पुकारा जाता है, तो परमेश्वर का इन्द्रादिरूपों में रहना गलत है। परमात्मा जन्मरहित है। वह परिशुद्ध है। उस का शरीर नहीं है। सब जगह व्यापक है - इस तरह मंत्रों के अर्थ के अनुसार, परमेश्वर के जन्म, रूपधारण, शरीरधारण - असंभव हैं। इसलिए उस तरह कहना ठीक नहीं - इन शब्दों से श्रीदयानन्दसरस्वती, सायणाचार्यभाष्य का खण्डन करते हैं।

जवाब : परमात्मा के सगुण और निर्गुणतत्त्व, दोनों वैदिकसम्प्रदाय में हैं। जैसे निर्गुणब्रह्म के बारे में 'अजः' जन्मरहित कहा गया, वैसे सगुणब्रह्म

के विषय में 'पूर्वो हि जातः' (हिरण्यगर्भरूप में सब से पहले जन्म लिया) (श्वेताश्वतरोपनिषत् २अ १६मं) इत्यादि वाक्य सगुणब्रह्म का जन्म बताते हैं। 'या ते रुद्र शिवा तनू रघोराऽपापकाशिनी तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि' (हे इन्द्र, आप का मङ्गलमय, शान्त, पूर्णानन्दकारक पूर्णव्यक्तिकारक शरीर से हमारे ऊपर कटाक्ष रखिये । श्वेताश्वतरोपनिषद् ३अ, ५मं) - इत्यादिमंत्र, परमात्मा के शरीर का अस्तित्व मानते हैं । निर्गुणब्रह्म का शरीर नहीं । सगुणब्रह्म का शरीर है । अगर कुछ श्रुतियाँ हमारे मतलब के खिलाफ हैं तो उन को अप्रमाण कहना गलत है ।

श्रीमद्रामायण और महाभारत - दोनों हमारेलिए इतिहासग्रन्थ हैं । उन में श्रीरामप्रभु और श्रीकृष्ण दोनों सगुणब्रह्म के अवतार हैं । वहाँ परमात्मा के जन्म, नाम, और रूप समुचित हैं । इसलिए सायणाचार्य जब परमेश्वर के जनन, रूप और शरीरधारण कहते हैं तो गलती नहीं है ।

श्रीदयानन्दसरस्वती लिखते हैं कि 'यत् सायणाचार्येण वेदानां परमार्थमविज्ञाय सर्वे वेदाः क्रियाकाण्डतत्पराः सन्तीत्युक्तम् । तदन्यथास्ति । तेषां सर्वविद्यान्वितत्वात् । तच्च पूर्वं संक्षेपतो लिखितमस्ति । एतावतास्य कथनं व्यर्थमस्तीत्यवगन्तव्यम् ।'

(सायणाचार्य के ख्याल से सारे वेद, क्रियाकाण्डतत्पर हैं वे, वेदों का परमार्थ नहीं जानते, वेद तो दूसरे प्रकार के हैं किसलिए? वेद जो हैं, सर्वविद्यानिधान हैं । यह विषय, पहले हम बता चुके हैं । इतना कहने से पर्याप्त है कि सायणभाष्य व्यर्थ है । :- इस तरह दयानन्दसरस्वती, सायणभाष्य का निरसन करते हैं ।

जैमिनिमुनि पूर्वमीमांसादर्शनकर्ता है । वे कहते हैं कि वेद, जो हैं क्रियाकाण्डपरायण हैं । 'आम्नायस्य क्रियार्थत्वात् आनर्थक्यमतदर्थानाम्' (वेद का प्रयोजन कर्मों का बोधन ही है । जहाँ कर्म नहीं बताया वहाँ वेदवाक्यों की व्यर्थता आ जाती है । मीमांसादर्शन १अ २पा १सू) - इस तरह शंका करके उन्होंने दूसरे वाक्य अर्थवाद भी प्रामाणिक हैं । 'विधिनात्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः ।' (१अ, २पा ७सू)

यहाँ जैमिनि स्वीकार करते हैं कि वेद में कर्मविधायक वाक्यों के अलावा और कुछ वाक्य हैं जहाँ दूसरे विषय हैं उन को कर्मस्तुतिपरक मानते हैं पूर्वमीमांसक ।

सायणाचार्य भी अपने भाष्य में कर्म, उपासना, और ज्ञान आदि अनेकविषयों का विवरण करते हैं । अथर्वणवेदभाष्य के आरंभ में उस वेद के गोपथब्राह्मण के अनुसार नक्षत्रकल्प, वैतानकल्प, संहिताविधि, अंगीरसकल्प और शान्तिकल्प हैं - इतना कहकर सायणाँचार्य उन सूत्रों की विशेषताएँ और कई विषयों को अपने भाष्य में लिखते हैं । ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद - तीनों का यज्ञसंबन्धित अर्थ बताते हैं । वह भी ऋषियों के सूत्रों के अनुसार ही लिखते हैं । सायणभाष्य के प्रामाणिक मूलग्रन्थ होते हैं - बोधायनकल्पसूत्र, आपस्तम्बकल्पसूत्र और आश्वलायनकल्पसूत्र । सायणाचार्य, अथर्वणवेदभाष्य में करीब १०८ चिकित्साशास्त्रविषय इत्यादियों को लिखते हैं ।

इस तरह सायणायार्य भले ही पूर्वमीमांसाशास्त्र के अनुसार खास तौर से कर्मकाण्ड परक व्याख्या करते हैं फिर भी उस में कई विषयों को वे समझाते हैं । सायणाचार्य कुछ भी लिखते हैं, ऋषिप्रोक्तसूत्रों के अनुसार ही

उदारहरण देते हुए लिखते हैं, लेकिन स्वतन्त्ररूप से नहीं। इसलिए सायणभाष्य का तिरस्कार करना अनुचित है।

श्रीसायणाचार्य के जमाने में श्रुतिस्मृति और इतिहासपुराणों पर शिक्षाव्याकरण आदि वेदांगों पर पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा आदि उपांगों पर लोग प्रामाण्यबुद्धि रखते थे। तभी उन्होंने उन शास्त्रों का उदाहरण प्रमाणवचन देकर भाष्यों की रचना की। इसलिए उन के बाद की पीढी के लोग उन को प्रमाणित करके मानने लगे। इस तरह भाष्य का तिरस्कार करने का मतलब भाष्य से प्रमाणित किये हुए ग्रन्थों का तिरस्कार करना ही है।

श्रीदयानन्दसरस्वती को अपने मन को जो भाता है उसी के आधार पर सायणभाष्य का खण्डन करना अनुचित है।

३०. शारीरकमीमांसासूत्रों में अद्वैत का खण्डन ठीक नहीं

श्रीदयानन्दसरस्वती अपने सत्यार्थप्रकाश में व्यासजी के शारीरकसूत्रों में अद्वैतसिद्धान्त (जीव और ब्रह्म की एकता) का प्रतिपादन है ही नहीं - बोलते हैं (लिखते हैं) उस का परिशीलन करेंगे। अपना पूर्वपक्ष निभाने केलिए उन्होंने कुछ सूत्रों को उदाहृत किया :- संपद्याविर्भावः स्वेन शब्दात् ४अ, ४पा, १सू - इस सूत्र का शंकरभाष्य इस प्रकार है :- "केवलेनैव आत्मना आविर्भवति न धर्मान्तरेण" केवल अपने स्वरूप के साथ आविर्भूत होता है, दूसरे धर्म से नहीं, किसलिए? वेद में "स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते" अर्थात् स्वशब्द का प्रयोग है। इस के अनुसार मतलब यह हुआ :- मुक्ति या मोक्ष उसके पहले का अपना रूप है या नया मिलनेवाला है? जवाब यह है कि मुक्ति माने अपने रूप में ठहरना।

श्रीदयानन्द जी की व्याख्या :- जीव जो है वह पाप से विमुक्त होकर पवित्र बनकर जब तक योग के द्वारा ऐश्वर्यसहित होकर परब्रह्म को नहीं पाता जो अन्तर्यामी के रूप में है तबतक आनन्द का अनुभव उसका नहीं होगा। (सत्यार्थप्रकाश ३८५ पृ)

परिशीलन - संपद्य - इस का अर्थ है आत्मसाक्षात्कार पाकर आविर्भाव माने आत्मा के रूप में आविर्भाव होना ही मुक्ति है, उपनिषद् में स्वेनशब्द के

रहने से, (स्वेन शब्दात्) छान्दोग्य - एवमेंवैष संप्रसादः अस्मात् शरीरात् समुत्थाय परंज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेण अभिनिष्पद्यते । ८-१२-३.

(जीव को उद्‌बोधित किया गया कि तुम आत्मा हो जिस के । न देह के धर्म हैं न इन्द्रियों के । इस तरहर आत्मबोध होने के पश्चात् वह आत्मरूप से अभिनिष्पन्न होता है - इस वाक्य में 'स्वेन' पद के रहने से समझ में आता है कि आत्मरूप में रहना ही मुक्ति है । यहाँ स्वर्गादि फल जैसा कुछ नयी चीज पाने की बात है ही नहीं)

यहाँ शङ्करभाष्य में ब्रह्मसूत्रों में जो चार शब्द हैं 'सम्पद्य' 'आविर्भावः' 'स्वेन' शब्दात्' उस का विवरण है । वेद में जो 'स्वेन' शब्द है उस को हेतुरूप में दिखाया गया ।

श्रीदयानन्दजी ने जो अर्थ लगाया उस में 'स्वेन शब्दात्' - का अर्थ नहीं लगाया । सूत्र में ऐसेशब्द है ही नहीं जिनका अर्थ निकलता है कि जबतक शुद्धस्वरूप को प्राप्त नही करेगा तब तक आनन्द का अनुभव नहीं कर सकेगा । उनके अर्थ में सूत्र का उपनिषद्वाक्य के साथ संबन्ध नहीं है । जीव और ईश्वर दोनों का भेद बतलाने केलिए दयानन्दजी ने लिखा कि ''अन्तर्यामी जो ब्रह्म है'' इस का मूलशब्द सूत्र में है ही नहीं ।

''ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः'' ब्रह्म सू २-४-१-५ इस सूत्र का शङ्करभाष्य इस तरह है :-

स्वामस्य रूपं ब्राह्मम् - अपहतपाप्मत्वादि सत्यसंकल्पावसानम् तथा सर्वज्ञत्वम्, सर्वेश्वरत्वं च, तेन स्वरूपेणाभिनिष्पद्यत इति । जैमिनिराचार्यो मन्यते कुतः? उपन्यासादिभ्यः तथावगमात्, तथाहि यआत्मा अपहतपाप्मा (छा. ३-८-७-१) इत्यादिना सत्यकामस्सत्यसंकल्प (छा.३-८-७-१) इत्येव मन्त्रेणोपन्यासेन एवमात्मकता मात्मनो बोधयति (सू. शङ्करभाष्यम् ४-४-५)

इन का स्वरूप जो है ब्रह्म के संबंधित अपहतपाप्मत्व से लेकर

सत्यसंकल्प तक। किसलिए? छान्दोग्योपनिषद् में 'य आत्मा अपहतपाप्मा' - से लेकर'सत्यकामः सत्यसंकल्पः' तक जो शब्द हैं उसके आधार पर जैमिनि आचार्य मानते हैं कि स्वरूप को सर्वज्ञत्व को अपने रूप में पाता है।)

इस का व्याख्यान, दयानन्दसरस्वतीने इस प्रकार किया :- ऐसा ही, योगी, पापों से रहित और ऐश्वर्यसहित जब होगा, तब ब्रह्म से एकता का अनुभव करता हुआ ब्रह्मा के साथ मोक्षानन्द को पायेगा - यही जैमिनिमुनि का अभिप्राय है। (सत्यार्थप्रकाश ३८५ पृ)

परिशीलन : यहाँ शङ्करभाष्य में सूत्रों के तीन शब्दों का अर्थ बताया। ब्राह्मेण = ब्रह्मसंबंधिरूप से (ब्रह्म से मिल जायगा) क्यों कि उपन्यासादिभ्यः=छान्दोग्योपनिषद् वाक्यों के अनुसार जैमिनिः=जैमिनिमुनि ने सोचा।

श्रीदयानन्दस्वामी के अनुसार, इस सूत्र का अर्थ यह है कि जब तक जीव शुद्ध रूप को नहीं पाएगा तब तक आनन्द का अनुभव नहीं प्राप्तकरेगा, वह, पापादियों को हटाने के बाद ही आनन्द पाएगा। उपरोक्तसूत्र में वह दूसरे रूप में था। समझ में नहीं आता है कि जैमिनि ने इस में अपनी ओर से क्या कहा, ''उपन्यासादिभ्यः - इस का अर्थ नहीं बताया। इनके ख्याल से उस का अर्थ है ''ब्रह्म के साथ''। इस का प्रामाणिक मूलरूप नहीं है।

और एक सूत्र :-''चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः'' (ब्रह्मसूत्र-४-४-६) इस का शंकरभाष्य इस प्रकार है :-

चैतन्यमेव त्वस्यात्मनः स्वरूपमिति तन्मात्रेण स्वरूपेण अभिनिष्पत्तिर्युक्ता इत्यौडुलोमिराचार्यो मन्यते।

(यह आत्मस्वरूप चैतन्यमात्र है। इसलिए चैतन्य में चैतन्यमात्रस्वरूप में जब तक जीव रहता है तब तक वह ब्रह्मस्वरूप का संबंध पाता है, यही औडुलोमिआचार्य का मान्य मत है। (सत्यार्थप्रकाश ३८५ पृ)

परिशीलन : श्रीदयानन्दस्वामी, ''तदात्मकत्व का अर्थ उस का ब्रह्मस्वरूप संबंध पाना'' इतना ही अर्थ लगाते हैं । तदात्मक का मतलब चिदात्मक ही यहाँ का अर्थ है । इन के पक्षमें जैमिनि के अभिप्राय और औडुलोमि के अभिप्राय के भेद को नहीं समझाया ।

श्रीशंकरभाष्य के अनुसार जैमिनिपक्ष में अपहतपाप्मत्व, सत्यकामत्व, सत्यसंकल्पत्व इत्यादि मुक्त के लक्षण हैं । औडुलोमि के पक्ष में वह केवल चैतन्य मात्र ही रहता है - इतना फरक पड़ता है । इसलिए यहाँ शंकरभाष्य, लागू होता है । अगर फरक नहीं पड़ता तो दूसरे सूत्र और दूसरे मुनियों के नाम क्यों रहते हैं?

और एक सूत्र :- 'एव मप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ।' इस का शंकरभाष्य इस तरह है, ''एवमपि पारमार्थिकचैतन्यमात्र स्वरूपाभ्युपगमेऽपि व्यवहारापेक्षया पूर्वस्याप्युपन्यासादिभ्यः अवगतस्य ब्राह्मस्य ऐश्वर्यरूपस्य अप्रत्याख्यानादविरोधं बादरायण आचार्यो मन्यते ।

(पारमार्थिकचैतन्यमात्रस्वरूप का अंगीकार करने पर भी व्यवहारदृष्टि से उपन्यासादियों से जो ब्राह्म ऐश्वर्य, उसे नहीं बोलते हैं । इसलिए ऊपर विवादों के बीच में विरोध नहीं है - यह बादरायण का मतलब है)

श्रीदयानन्दस्वामीजी की व्यख्या इस प्रकार है :- ब्रह्मसाक्षात्कार के साथ, ऐश्वर्य, शुद्धविज्ञान, अपने जीवनकाल में पाकर जीवन्मुक्त होते ही अपना निर्मल पूर्वस्वरूप प्राप्तकरके आनन्द का अनुभव करेगा - यही व्यासजी का मतलब रहा । (सत्यार्थप्रकाश ३८५ पृ)

परिशीलन : श्रीदयानन्दस्वामी की व्याख्या में ''एवमपि उपन्यासादिभ्यः, अविरोधः'' इत्यादिपदों के अर्थ नहीं मिलता । जैमिनिमत में सत्यसंकल्पादि का रहना, औडुलोमिमत में उसको चिन्मात्र मानना एवं आपस में विरोध प्रतीत होता है । पारमार्थिक सत्ता में चैतन्यमात्र होने पर व्यवहार में

सत्यसंकल्पादियों को स्वीकारने पर विरोध नहीं। इस तरह बादरायणजी का समन्वय रहा, यही शंकरभाष्य से प्राप्त हुआ प्रयोजन है।

श्रीदयानन्दस्वामी व्याख्या के अनुसार जैमिनिमत और औडुलोमिमत के बीच में विरोध है ही नहीं। तब इस हालत में बादरायण का समन्वय जो रहा, ''परमार्थ में चिन्मात्र, और व्यवहार में सत्यसंकल्प आदि गुणवान्'' - उस की जरूरत है ही नहीं।

और एक सूत्र है - अत एव चानन्याधिपतिः ४-४-९ इस का शंकरभाष्य इस प्रकार है :- अत एव चावन्ध्यसंकल्पत्वात् अनन्याधिपति र्विद्वान् भवति नास्यान्योऽधिपतिर्भवतीत्यर्थः।

जिस का संकल्प बेकार नहीं, वही विद्वान् अनन्याधिपति होता है। उस का कोई दूसरा अधिपति नहीं है। इस की दयानन्दव्याख्या इस प्रकार है:- योगी का जब सत्यसंकल्प होता है खुद परमेश्वर को प्राप्त करता है और मोक्षसुख पाता है। वहाँ स्वाधीन और स्वतन्त्र रहता है (स.प्र. ३८६ पृ)

परिशीलन : 'अतः' अव्यय के अर्थ हैं हेतु, तादर्थ्य, पद्धति, सम्पत्ति, मिष, निर्देश और चिन्ता - (शब्दार्थकल्पतरु ३१ पृ) श्रीशंकरभाष्य में इस का अर्थ 'हेतु' बताया गया। श्रीदयानन्दसरस्वती, कहते हैं कि यह कालार्थक है अर्थात् जब सत्यसंकल्प होता है तब। और लिखते हैं कि परमेश्वर को प्राप्त करके मुक्तिसुख पाता है। लेकिन उस अर्थ में कोई शब्द सूत्र में नहीं। दयानन्दजी, केवल जीव और ईश्वर का भेद समझने केलिए इस वाक्य को जोड़ देते हैं।

दयानन्द व्याख्या में उपनिषद्वाक्यों के साथ संबन्ध नहीं है, एक नया अर्थ लादा जाता है जिस से जीव और ईश्वर का भेद प्रगट हो सकता है, और 'अविरोध' जैसे पदों का अन्वय नहीं करते। इस तरह करने से दयानन्दस्वामी की व्याख्या, शारीरकसूत्रों में जीव और ब्रह्म की भिन्नता को स्थापित करने में

असफल रही है ।

नेतरोनुपपत्ते :- ब्रह्म सू-१-१-१६ सृष्टि के पहले और पश्चात् ध्यान करना और सब की सृष्टि करना परमात्मा से किसी दूसरे के वश की बात नहीं, तभी जीव जो है आनन्दमय कभी नहीं हो सकता ।

भेदव्यपदेशाच्च - १-१-१७ (''रसग्ँ हयेवायं लब्ध्वानन्दी भवति' - इस श्रुति से जीव को और आनन्दमय को भिन्नता से निर्देश किया गया । इसलिए जीव और आनन्दमय, एक ही चीज नहीं है) इस सूत्र से भी जीव और ब्रह्म, दोनों का भेद बताया गया, इसलिए ब्रह्मसूत्रों में दयानन्दसरस्वती के अनुसार, अव्दैतसिद्धान्त नहीं है ।

इस सूत्र के भाष्य में श्रीशंकराचार्य यूँ कहते हैं:- आत्मन : अप्रच्युतात्मभावस्यैव सतः तत्वानवबोधनिमित्तमिथ्यैव देहादिष्वनात्मस्वात्मतत्वनिश्चयो लौकिको दृष्टः तेन देहादिभूतस्यात्मनः भेदव्यपदेश उपपद्यते, प्रतिषिध्यत एव परमार्थतः सर्वज्ञात् परमेश्वरात् अन्यो द्रष्टा श्रोता वा ''नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा इत्यादिना) बृ. ३-७-२३) यथा वा घटाकाशा दुपाधिपरिच्छिन्नादनुपाधिपरिच्छिन्न आकाशोऽन्यः ईदृशं च विज्ञानात्मपरमात्मभेदमाश्रित्य नेतरोऽनुपपत्तेः भेदव्यपदेशाच्च इत्युक्तम् (आत्मा जो है अपने से नहीं हटकर अपने तत्व को जो समझ नहीं पाता है, इसी की वजह से देहादियों में आत्मनिश्चय से रहता है जो असत्य है और यह लोक में सब के अनुभव में है । इसी के स्तर पर आत्मा का भेदनिर्देश लागू होता है। वास्तव में सर्वज्ञ परमेश्वर से दूसरा कोई देखनेवाला और सुननेवाला है ही नहीं नान्योऽतोस्ति द्रष्टा - आत्मा से अलग कोई दूसरा देखनेवाला नहीं इस श्रुति से मना किया जाता है ।

घड़े में आसमान और बाहर का आसमान एक ही है, अलग नहीं, इस प्रकार विज्ञानात्मा और परमात्मा का भेद है ही नहीं । इस तरह का भेद

जो प्रतीत होता है उसे तात्कालिकरूप में स्वीकार करके 'नेतर उपपत्तेः भेदव्यपदेशाच्च' (ब्रह्मसूत्र १-१-१७) - कहा गया है ।

श्रीशंकराचार्यजी के मत में ऐसे सूत्र जो भेद का प्रतिपादन करते हैं, वे व्यावहारिकसत्ता से संबंध रखते हैं और जीव - परमात्मा का अभेद जो बताते हैं वे पारमार्थिकसत्ता को बताते हैं ।

श्रीदयानन्दसरस्वती के ख्याल से 'नेतरोऽनुपपत्तेः' सूत्र का व्याख्यान इस प्रकार है :- ब्रह्म के अलावा और कोई जीव, सृष्टिकर्ता नहीं हो सकता है । इसलिए कि जीव जो है उस की ताकत कम है और वह अल्पज्ञ है । (स.प्र. ३८६ पृ)

परिशीलन : यह सूत्र, आनन्दमयाधिकरण में है । 'तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् अन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः' - तैत्तिरीयोपनिषद् के इस वाक्य का अर्थ लगाना है तो, आनन्दमय जीव है या परमात्मा है? - यह शक होता है । श्रीशंकराचार्यजी अपने भाष्य में कहते हैं कि आनन्दमय जो है वह परमात्मा है, जीव, नहीं । (इतश्च पर एवात्मा नेतरः इतरः ईश्वरादन्यः संसारी जीव इत्यर्थः) - इस तरह श्रीशंकराचार्य, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र के अर्थ के साथ समन्वय करके लिखते हैं । सारे ब्रह्मसूत्रों का अर्थ इसी प्रकार है ।

श्रीदयानन्दसरस्वती, उपनिषद्वाक्यों के साथ संबंध के बिना ब्रह्मसूत्रों का स्वतन्त्ररूप से अर्थ लगाते हैं । सारे ब्रह्मसूत्रों का स्वतंत्रता से अर्थ लगाया कि मालूम नहीं ।

सत्यार्थप्रकाश में तो नहीं लगाया । सन्दर्भ छोड़कर सूत्रों का अपने मनमानी अर्थ जोड़ने में उचितत्व या सामंजस्य प्रतीत नहीं होता है । सन्दर्भ को हटाकर उस के कई विरुद्धार्थ लगा सकते हैं ।

शंकरभाष्य जो है सूत्र से जो जीवेश्वर भेद प्रतीत होता है उसे लिखकर, जीव और ईश्वर का अभेद बतानेवाले सूत्रों का, उपनिषद्वाक्यों के

साथ समन्वय केलिए, समाधान भी बताता है । अगर कोई उस के खिलाफ सिद्धान्त करना चाहेंगे तो उन को चाहिए कि सारे (पूरे) ग्रन्थ का समन्वय करके दिखावें । ऐसा नहीं करके अभेदश्रुतियों का भी समन्वय करें । ऐसा नहीं करके सिर्फ कुछ सूत्रों केलिए अपनी मर्जी से समन्वय करने से वह, सिद्धान्त थोड़ी हो सकता । इसलिए यहाँ श्रीदयानन्दसरस्वती का व्याख्यान सिद्ध नही हो सकेगा ।

श्रीदयानन्दसरस्वती के ख्याल से जीव और ईश्वर का भेद दर्शानेवाले और कुछ सूत्र इस प्रकार हैं :-

भेदव्यपदेशाच्च नेतरौ (ब्रह्मसूत्र १-२-२२) इस का श्रीशंकरभाष्य इस प्रकार है :- इतश्च परमेश्वर एव भूतयोनिः नेतरौ शारीरः प्रधानं वा कस्माद् विशेषण भेदव्यपदेशाभ्याम् (इस कारण से भी परमेश्वर ही भूतयोनि है बल्कि प्रधान (प्रकृति) नही है । किस कारण से?

भेदव्यपरदेशाभ्याम् - इस कारण से वह परमेश्वर ही भूतयोनि है न कि शारीर न वा प्रधान । किसलिए? (विशेषण और भेद बताने से ।)

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः (मुण्डक २-१-२) - यहाँ मुण्डकोपनिषद् में दिव्य अमूर्त आदि विशेषण परमात्मा के बारे में प्रयुक्त हुए हैं । ये विशेषण नाम और रूप से परिच्छिन्न और उन में अभिमान जो रखता है उन धर्मों को अपने में जो ला देता है, वह जीव नहीं हो सकता है । अक्षरात् परतः परः (श्रेष्ठ अव्याकृत जो है उस से भी परमात्मा उन्नत है मुण्डक-२-१-२) - इस तरह यह वेदवाक्य, भूतयोनि को प्रधान से भिन्नरूप से निर्देशित कर रहा है, इसलिए जीव और प्रधान भूतयोनि कभी नहीं हो सकते हैं । भूतयोनि तो केवल परमात्मा ही है ।

यहाँ अदृश्यत्वाधिकरण में (यत्तदद्रेश्यमग्राह्य मगोत्रम् मुण्डक २-१-२) - इस वेदवाक्य में भूतयोनिशब्द किसको बता रहा है? प्रधान या जीव या

ईश्वर? - इस तरह चर्चा करके निर्णय किया कि ईश्वर ही यहाँ वर्णित है। जीव और प्रधान बिलकुल नहीं।

अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति १-१-१९ (इस आनन्दमय में, वेदवाक्य, जीव का तादात्म्य बताता है) इस का शंकरभाष्य इस प्रकार है :- 'इतश्च न प्रधाने जीवे वा आनन्दशब्दः स्यात्, यस्मादस्मिन् आनन्दमये प्रकृत आत्मनि प्रतिबद्धस्यास्य जीवस्य तद्योगं शास्ति तदात्मना योगः तद्योगः तद्भावापत्तिः मुक्तिरित्यर्थः, तद्योगं शास्ति शास्त्रम् तदात्मना योगः तद्योगः तद्भावापत्तिः मुक्तिरित्यर्थः। तद्योगं शास्ति शास्त्रम् (इस कारण से भी आनन्दशब्द 'प्रधान' को या जीव को नहीं बताता है (समझ पाता है) उस स्वरूप से संबंध पाना ही मुक्ति है : इसी को शास्त्र, बताता है, इसीलिए आनन्दशब्द जीव का या प्रधान को नहीं बताता है। आनन्दमयात्मज्ञान को जो पाता है उसी को मुक्ति प्राप्त होती है। तभी आनन्दमय, जीव, या प्रधान नहीं हो सकता है।)

इस की दयानन्दस्वामी की व्याख्या इस प्रकार है :- सर्वव्यापक ब्रह्म से जीव का, और जीव का ब्रह्म का संबंध प्रतिपादित हो रहा है, तभी हमें समझना है कि दोनों अलग हैं, क्यों कि संबंध भिन्नभिन्न पदार्थों का ही होता है (स.प्र. ३८७)

परिशीलन : स्वामीजी की व्याख्या, न सूत्र से संबंध रखती है न अधिकरण से, न श्रुतिवाक्य से। इन की व्याख्या में जीव और ब्रह्म, अलग हैं। मूलग्रन्थ में ये शब्द नहीं हैं।

अन्तस्तद्धर्मोपदेशात् १-१-२० इस का श्री शंकरभाष्य इस प्रकार हैः-

'य एषोऽन्तरादित्ये य एषोऽन्तरक्षिणि च' श्रूयमाणः परमेश्वर एव, न संसारी, कुतः? तद्धर्मोपदेशात् तस्य हि परमेश्वरस्य हि धर्मा इहोपदिष्टाः (सूरज के अंदर "हिरण्मयपुरुष और आँख के अंदर पुरुष" - इस तरह श्रुति में जो पुरुष, सुनायी देता है वह परमेश्वर ही है, संसारी नहीं। किसलिए?

इसलिए कि परमेश्वर के धर्म यहाँ प्रस्तुत किये गये हैं) इस तरह श्रुतियों से प्रतिपादित परमेश्वर के लक्षणों को ही श्रीशंकराचार्य लिखते हैं । इस की व्याख्या के अनुसार, यह सूत्र, आदित्य अक्षि पुरुषोपासनाओं के सिलसिले में उपयुक्त होता है । इस सूत्र की व्याख्या में दयानन्दसरस्वती लिखते हैं कि ब्रह्म के अन्तर्यामित्व आदि लक्षण बताये गये हैं । चूँकि जीव में ये धर्म व्याप्त हैं, व्याप्य जीव है व्यापकब्रह्म से अलग ही है । क्यों कि व्याप्यव्यापक संबंध जो है वह भिन्नता को ही निरूपित करता है । (सं.प्र. ३८७ पृ)

परिशीलन : श्रीदयानन्दसरस्वती, इस सूत्र का विषयवाक्य वेद में जो है उस को छूते भी नहीं । इस सूत्र का ब्रह्मपरक अन्वय करते हैं । सरस्वतीजी का जो मतलब है - व्यापकब्रह्म से व्याप्य जीव अलग होता है - यह बात सूत्र में नहीं है । सूत्र में भलेही धर्मशब्द व्याप्यव्यापकधर्म को बताता है स्वामीजी ‘उपदेश’ शब्द का अर्थ छोडकर रखते हैं ।

अन्तः=आदित्य के अंदर अन्तरादित्ये इत्यादिश्रुतिवाक्यों से जो प्रतिपादित है वह परमेश्वर ही है । तद्धर्मोपदेशात् - श्रुतिवाक्यों में परमेश्वर के धर्म ही उपदिष्ट हैं - इस प्रकार शंकरभाष्य के अनुसार सभी शब्दों के अर्थ बता सकते हैं ।

भेदव्यपदेशाच्चान्यः १-१२१ - इस सूत्र का शंकरभाष्य इस प्रकार हैः ‘‘अस्ति चादित्यादिशरीराभिमानिभ्यः जीवेभ्यः अन्यः ईश्वरः अन्तर्यामी, ‘आदित्यादन्तरोयमादित्यो न वेद’ इति वेदितुरादित्यात् विज्ञानात्मनः अन्योऽन्तर्यामीति स्पष्टं निर्दिश्यते (आदित्यादि शरीरों के अभिमानी जीवों से अलग अन्तर्यामी ईश्वर है । ‘जो आदित्य के अंदर है, जिसको आदित्य भी न जानता है : इस तरह की श्रुति में विज्ञानात्मा आदित्य से परे दूसरा अन्तर्यामी स्पष्टरूप से निर्देशित किया जा रहा है)

यहाँ, वही अन्तरादित्ये हिरण्मयः - इत्याकारक श्रुति में आदित्यमंडल

का निवासी कहा हुआ पुरुष है : इस तरह श्रीशंकरचार्य का विवरण है। यह सूत्र अन्तरधिकरण अन्तर्गत के है। 'अन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषः' - इस श्रुति में जो पुरुष कहा गया, वह जीव है या परमात्मा? - इस सन्देह का समाधान यह सूत्र बताता है।

श्रीदयानन्दजी की व्याख्या :- जैसे परमात्मा, जीव से भिन्नस्वरूप है, वैसे ही इन्द्रियों से अन्तःकरण से, भूमिआदि पांचभूतों से दिशाओं से वायु से, सूर्य से, दिव्यगुणानुभवसहित विद्वनों से भी परमात्मा अलग है ही। (स.प्र. ३८७ पृ)

परिशीलन : 'अन्यः' - शब्द का अर्थ दयानन्दजी अपनी मर्जी से लिखते हैं। 'भेदव्यपदेशात्' - इस का अर्थ बिलकुल नहीं लिखते हैं। और नहीं कहते हैं कि इस सूत्र का संबंध किस वेदवाक्य से है। गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् १-२-११ इस का शंकरभाष्य इस तरह है :-

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति (कठ १-३-१)

(कर्म से जो शरीर उत्पन्न होता है उस में सब से उत्तमस्थान जो हृदय है, उस में प्रवेश किये हुए हैं और कर्मफल भुगतनेवाले हैं - दोनों धूप और छाया जैसे परस्पर भिन्न हैं। इन के बारे में पञ्चाग्नि और त्रणाचिकेता - कहते हैं यहाँ सवाल उठता है कि बुद्धि और जीव बताये गये हैं या जीव और परमात्मा?

विज्ञानात्म परमात्मानाविहोच्येयाताम् कस्मात्? आत्मानौ हि तावुभावपि चेतनौ समानस्वभावौ श्रवणेन च समानस्वभावेष्वेव हि लोके प्रतीतिः दृश्यते। (यहाँ शक होता है - बुद्धि और जीव गुहा में (बुद्धि में) प्रविष्ट हैं या जीव और परमात्मा? - यहाँ विज्ञानात्मा (जीव) और परमात्मा ही बताये गये हैं। किसलिए? क्यों कि दोनों आत्मा चेतन हैं। जहाँ संख्या सुनायी देती है वहाँ

समानस्वभाववालों की प्रतीति संसार में प्रचलित है) इस के अनुसार भावार्थ यह निकला कि गुहा में प्रविष्ट किये हुए हैं जीवात्मा और परमात्मा। एक ही संख्या समानस्वभाववालों केलिए ही लागू होती है ।

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः-१-२-३ सर्वं खल्विदं ब्रह्म-मनोमयः प्राणशरीरः - इत्यादिश्रुतिवाक्य में मनोमयत्वादिलक्षण जीव के हैं या ब्रह्म के?-यह एक शंका है। इस सूत्र का शंकरभाष्य इस प्रकार हैः-अनेन शारीरे तेषामनुपपत्तिरुच्यते। तुशब्दः अवधारणार्थः, ब्रह्मैवोक्तेन मनोमयत्वादिगुणम्, न तु शारीरो जीवः मनोमयत्वादिगुणः, यत्कारणसत्यसंकल्पः आकाशात्मा अवाकी अनादरः ज्यायान् पृथिव्या इति चैवंजातीयका गुणा न शारीरे सामञ्जस्येन उपपद्यन्ते (इस सूत्र से यह बताया गया कि मनोमयत्वादिगुण, जीव में नहीं बनते । तु शब्द, निश्चयार्थक है, सत्यसंकल्प, आकाशात्मा, इन्द्रियरहित, आदररहित, कामरहित, भूमि से भी बड़ा-ऐसे विशेषण जीव के सिलसिले में लागू नहीं होते ।)

इस की व्याख्या दयानन्दजी की ओर से इस प्रकार है :- शरीरे भवः शारीरः, शरीरधारी जीव जो है ब्रह्म कभी नहीं हो सकता, क्यों कि गुण कर्म और स्वभाव जीव में कभी नहीं होते । (स.प्र. ३८७ पृ)

परिशीलन : यहाँ भी स्वामीजी उपनिषद्वाक्य से सूत्र का संबंध अपनी व्याख्या में नहीं दिखाते । उपनिषद्वाक्य से संबंध अगर छूट जाता वह (जीव) शारीर नहीं बनता इतना ही अर्थ निकलता है, 'ब्रह्म' का अध्याहार किया गया ।

अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् १-२-१८ - यह सूत्र, अन्तर्याम्यधिकरण में है । यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो, यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम् यः पृथिवी मन्तरो यमयति एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः (बृहदारणयक ३-७-१-२) - यहाँ सवाल यह है कि इस वाक्य में अन्तर्यामी प्रधान है जीव प्रधान है या ब्रह्म प्रधान है?

स परमात्मैव स्यात् नान्य इति - कुतः तद्धर्मव्यपदेशात् । तस्य हि परमात्मनः धर्मा इह निर्दिश्यमाना दृश्यन्ते । पृथिव्यां तावदधिदैवतादिभेदभिन्नं समस्तं विकारजातमन्तस्तिष्ठन् यमयतीति परमात्मनः यमयितृत्वं धर्म उपपद्यते। सर्वकारणत्वे सति सर्वशक्त्युपपत्तेः ।

(वह अन्तर्यामी परमात्मा ही है, दूसरा नहीं, किसलिए? परमात्मा के धर्मों को कहने से । वहाँ परमात्मा के धर्म निर्देशित हैं और दिखायी देते हैं, अन्तर्यामी जो है अंदर रहता हुआ, अधिदैव आदि भेदों से भिन्न, सारे पृथिवीआदि विकारों को नियमित करलेता है । इसलिए यमयितृधर्म परमात्मा में जो है वह उचित है सारे कार्यों के कारण जो है उन के अंदर सब शक्तियों का रहना स्वाभाविक है)

शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनैनमधीयते (ब्रह्म सू १-२-२०) इस के शंकरभाष्यवाक्य इस तरह है :-

नेति पूर्वसूत्रादनुवर्तते, शारीरश्च नान्तर्यामीष्यते - कस्मात्? यद्यपि द्रष्टृत्वादयस्तस्य सम्भवन्ति । तथापि घटाकाशवदुपाधिपरिच्छिन्नत्वात् न कार्त्स्न्येन पृथिव्यादिष्वन्तरवस्थातुं नियन्तुं च न शक्नोति । अपि चोभयेऽपि हि शाखिनः काण्वा माध्यन्दिनाश्च अन्तर्यामिणो भेदेनैनं शारीरं पृथिव्यादिवदधिष्ठानत्वेन नियम्यत्वेन च अधीयते । यो विज्ञाने तिष्ठन् इति काण्वाः स आत्मनि तिष्ठन् इति माध्यन्दिनाः (नकारपूर्वसूत्र से यहाँ लागू होता है, जीव भी अन्तर्यामी के रूप में माना नहीं जाता है । भले ही द्रष्टृत्व आदि धर्म जीव में संपन्न होते हैं, फिर भी जीव जो है परिच्छिन्न है परिमित है सीमित है जैसे घड़े के अंदर आसमान है, इसीलिए पूर्णरूप से, वह पृथिवी आदियों में रहने केलिए नियंत्रित करने केलिए भी सक्षम नहीं । काण्व और माध्यन्दिन दो शाखावाले अन्तर्यामी को पृथिवी आदि के बराबर अधिष्ठान के रूप में नियन्त्रितरूप में पढते हैं । काण्व कहते हैं 'जो विज्ञान में रहता है । माध्यन्दिन पढते हैं जो

आत्मा में (जीव में रहता है)

इस की व्याख्या श्रीदयानन्द के कलम से इधर है :- शरीरधारी जीव ब्रह्म नहीं, स्वाभाविक रूप से ब्रह्म और जीव अलग हैं (स.प्र. ३८८ पृ)

परिशीलन : श्रीदयानन्दसरस्वती 'एनमधीयते' इस का व्याख्यान नहीं लिखते। ऊपर सूत्र में जो जीव और ईश्वर का भेदभाव दिखायी देता है उस का जवाब श्रीशंकराचार्य इस तरह देते है :-

कथं तर्हि एकस्मिन् देहे द्वौ द्रष्टारावुपपद्येते, यश्चाय मीश्वरः अन्तर्यामी यश्चायमितरश्शारीरः? का पुनरिहानुपपत्तिः? नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा - इति श्रुतिवचनं विरुद्ध्येत । अत्रोच्यते - अविद्याप्रत्युपस्थापितकार्यकरणो पाधिनिमित्तोऽयं शारीरान्तर्यामिणोः भेदव्यपदेशः । न पारमार्थिकः एको हि प्रत्यगात्मा भवति, न द्वौ प्रत्यगात्मानौ संभवतः एकस्यैव भेदव्यवहारः उपाधिकृतः यथा घटाकाशो महाकाश इति ।

(एक ही शरीर में अन्तर्यामी और शारीर दो द्रष्टा कैसे रह सकते हैं? यहाँ अनहोनी बात है कहाँ? ''इस से बढकर दूसरा कोई द्रष्टा नहीं'' - इस तरह के श्रुतिवचनों का विरोध होता है। अब यहाँ उस का समाधान दिया जाता है)

शारीर और अन्तर्यामी का भेद, अविद्यानिमित्त शरीर और इन्द्रिय आदि उपाधिमिमित्तक है लेकिन वास्तविक नहीं। दो प्रत्यगात्मा नहीं हैं। घटाकाश, महाकाश जैसे उपाधि के आधार से निमित्त से दो नाम जैसे हैं ऐसा ही अन्तर्यामी और प्रत्यगात्मा हैं)

ऊपर सवाल का जवाब दे चुके हैं श्रीशंकरचार्यजी। उसके जवाब नहीं सुनते हुए व्यावहारिक भेद पर आधारित सूत्रों को ही दिखाकर अद्वैत को ठुकराना ठीक नहीं। श्रीशंकरचार्य भेदश्रुति अभेदश्रुतियों का समन्वय दिखाते हैं।

श्रीदयानन्दसरस्वती अभेदश्रुतियों का सही समन्वय दिखाते नहीं और

श्रीशंकराचार्यजी के जवाब को गलत साबित नहीं कर सकते, फिर अद्वैतमत का खण्डन कैसे कर सकते? तभी हम कहते हैं कि श्रीदयानन्दसरस्वती शारीरकसूत्रों में अद्वैतमत के समन्वय का खण्डन कर नहीं पायें ।

३१. अद्वैतखण्डन का परिशीलन

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामीजी अपने सत्यार्थप्रकाश में अद्वैतमतखण्डन करने का प्रयत्न कर चुके हैं। अभी हम उस का परिशीलन करने जा रहे हैं :-

अद्वैतमत - अद्वैती समझते हैं कि संसार, स्वप्न के बराबर है । रस्सी में सांप, सीपी में चांदी, रेगिस्तान में पानी भ्रान्ति से ही दिखायी देते हैं, इसी प्रकार ब्रह्म के ऊपर जगत् की भ्रान्ति होती है । बादलों में गन्धर्वनगर जैसा, इन्द्रजाल जैसा यह भ्रान्ति पनपती है । यह संसार असत्य है । एक ब्रह्म ही सत्य है ।

ब्रह्म सत्य है और जगत् सत्य नहीं - यही उन का मतलब । सत्य के ऊपर अर्थात् ब्रह्म के ऊपर असत्यजगत् का आरोप ही अध्यारोप कहलाता है। इस आरोप का अनादर करना अपवाद कहते हैं । अध्यारोप और अपवाद - दोनों से प्रपंचरहित ब्रह्म को जानना ठीक से समझना ही अद्वैतवाद है ।

खण्डन : दयानन्दसरस्वती इस प्रकार इस का खण्डन करते हैं :- आप लोग रस्सी को रस्सी जैसे समझते हो वैसे सांप को भी सांप ही समझ लो । सांप भी तो एक चीज़ है, भले ही वह रस्सी में नहीं, लेकिन दूसरी जगह पर है न । उस का संस्कार दिल में है, इसलिए सांप जो है असत्य नहीं (स.प्र.११ ३७५,३७६ पृ)

संसार, स्वप्न जैसा है - इस वाक्य का खण्डन इस तरह करते हैं :- स्वप्न में मन की भावना जहाँ है वहाँ वह चीज रहती है अर्थात् जहाँ कहीं रहती है । उस का संस्कार आत्मा में है । तभी हम कहते हैं कि स्वप्न जो है एक चीज पर दूसरी चीज का आरोप लगाना - नहीं है । (स.प्र. ११स. ३७६ पृ)

परिशीलन :

ड़ा

फूट गया तो फिर मिट्टी रह गयी है। इसी प्रकार परंब्रह्म से जगत् निकला है जगत् जब नष्ट होता है तब ब्रह्म ही बचता है। तभी हम कहते हैं कि ब्रह्म सत्य है। जगत् असत्य है। संसार को व्यावहारिक सत्य मानते हैं, परंब्रह्म को पारमार्थिक सत्य कहते हैं।

रस्सी में सांप की भ्रान्ति जब होती है तब रस्सी सत्य है। वहाँ रज्जु सांप दिखायी देता है वह असत्य है। और एक जगह पर सांप और दिल में संस्काररूप जो सांप है दोनों भले ही सत्य हैं रस्सी में भ्रान्ति से जो सांप दिखायी देता है वह सत्य कभी नहीं।

वैसा ही स्वप्न में दिखायी देती हैं जो चीजें वे कहीं हो सकती हैं लेकिन स्वप्न में जो दीखते हैं वह सत्य है तो शरीर में कैसे समाता है? इसलिए अद्वैतवेदान्ती जो रज्जुसर्प और स्वप्न दृष्टान्त देते हैं वे गलत नहीं हैं। पूर्वपक्ष कर सकते हैं कि मन में सूक्ष्मवासनाएँ हैं, स्वप्न में जो दीखती हैं वह संसार में जो चीजें हैं उनसे मिलती है (मेल खाती हैं) इसलिए वे सत्य नहीं। लेकिन सत्य जैसे प्रतीत होती हैं। तभी वेदान्ती कहते हैं कि वह भ्रान्तिमात्र है।

जीव जो है परंब्रह्म में प्रतीयमान जगत् को देखता है। ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जब अविद्या में होता है तब चित् का आभास ही जीव है। वह अज्ञानी है।

सूरज का प्रतिबिम्ब पानी में गिरता है। वह प्रतिबिम्ब चलित हो जाता

है । इस चलन से सूरज नहीं चलता है । इसी प्रकार चिदाभास के अज्ञान से सच्चिदानन्द ब्रह्म विकृति को (परिवर्तन को) नहीं प्राप्त करता है । जीव का अज्ञान जब मिट जाता है, तब प्रतिबिम्ब, बिम्ब के रूप में बच जाता है । उसी का नाम मुक्ति है ।

श्रीदयानन्दसरस्वती स्वामी कहते हैं कि अद्वैतमत में ब्रह्म का अज्ञान होता है (स.प्र. ३७७ पृ) । लेकिन वैसा नहीं, जीव का अज्ञान है लेकिन ब्रह्म का नहीं ।

श्रीदयानन्दसरस्वतीस्वामी का आक्षेप इस प्रकार है :-

एक जगह परंब्रह्म अपना स्वरूप अपने आप भूल जाता है तो वह अज्ञान सब जगह फैल जाता है न । (सं. ११स. ३७८ पु)

जवाब : अज्ञान या भूल जो है ब्रह्म का नहीं, ब्रह्मप्रतिबिम्ब जो जीव है उस का; यह जीव का लक्षण ब्रह्म को छूता नहीं । वेदान्तियों के मत में जीव का उपाधि जड या चेतन, सत्य या असत्य कहना मुश्किल है (स.प्र. ११स ३७८ पु) आगे बढकर श्रीदयानन्दसरस्वती, उस का खण्डन इस तरह करते हैं: (स.प्र. ११स ३७८ पृ) यह स्ववचनव्याघात (अपनी बात को अपने आप नहीं मानना) जैसा है । अविद्या को न जड कह सकते हैं, न चेतन कह सकते हैं, न सत्य कह सकते हैं तो हालत ऐसी है कि एक उदाहरण देते हैं - सोने का टुकडा एक दफा सुनार के पास लाया गया । तब सुनार कहता है कि इस को न सोना कह सकते हैं नहीं पीतल । इस में दोनों का मिश्रण है । (स.प्र. ३७८ पृ)

परिशीलन : उदाहरण में पीतल और सोना दोनों का मिलावट है; तब सुनार जो है वह बात कहता है ।

अविद्या जो है जिस का ब्रह्मज्ञान है उसकी मिटजाती है । इसलिए उसको सत्य नहीं कह सकते हैं । तीन काले में जो है वही नित्यसत्य है ।

अज्ञानी के साथ अविद्या है । इसलिए उसे 'नहीं' नहीं कह सकते हैं। उस मामले में आक्षेप का सवाल ही नहीं उठता है ।

महाकाश ही तीन तरह का होता है एक घटाकाश है एक मठाकाश है और एक मेघाकाश है । लेकिन असल में एक ही महाकाश है । इसी प्रकार ब्रह्म रजो है माया और अविद्या, समष्टि और व्यष्टि अन्तःकरण के उपाधियों में अज्ञानी पुरुषों को अलग अलग दिखायी देता है । लेकिन ब्रह्म एक ही है- यही अद्वैतवेदान्त का मतलब रहा इस प्रकार आक्षेप करते हैं (३७८ पृ)

खण्डन : ऐसा आप का कहना भी व्यर्थ है, क्यों कि आप घड़ा मठ और बादल जैसी चीजों को आसमान् से अलग पदार्थ मानते हैं, वैसा ही, कार्यकारणरूपी जगत् को और जीव को ब्रह्म से अलग मानना और ब्रह्म को भी जीव और जगत् दोनों से अलग मानना पड़ेगा । (स.प्र. ३७९ पृ)

परिशीलन : अद्वैतवेदान्ती श्रुति का प्रमाण लेकर जीव और ब्रह्म दोनों की एकता को मानते हैं ।

'तत्तमसि सर्वं खल्विदं ब्रह्म' - इत्यादि श्रुतिवाक्यों से ''जीव और ब्रह्म अलग नहीं । ब्रह्म सर्वव्यापक है, जगत् मिथ्या है'' - इतना जान पड़ता है । इस के सिलसिले में दृष्टान्तों को अद्वैती दिखाते हैं । घड़ा और मठ के पहले ही आकाश एक हैं । उन के बनने के बाद मठ में कई लोग वसने लगे । घड़े में थोड़ा सा पदार्थ रह सकता है । इस तरह इस दोनों के व्यवहार में भेद रहता है । घड़ा और मठ - दोनों को हटाया जाय एक ही आकाश है । इसी तरह अविद्या में प्रतिबिम्बत होने से जीव प्रतिबिम्ब है और ब्रह्म बिम्ब है - यह भेद उत्पन्न होता है । अविद्या को हटाने से ब्रह्म ही रहता है । तब जीव और ब्रह्म - दोनों का भेद मिट जाता है । - यही अद्वैतवादियों का कहना है ।

अनहोनी बात यह है कि श्रीदयानन्दसरस्वती वेदप्रामाण्य को मानते हैं फिर भी जगत् जीव और ब्रह्म - तीनों को अलग मानते हैं । उनको चाहिए

कि तत्त्वमसि आदि श्रुतिवाक्यों का समन्वय करें । वैसा नहीं करने पर उन वेदवाक्यों का प्रामाण्य वे मान नहीं सकते । फिर नास्तिक और उन में क्या फरक पड़ेगा जो तर्कबल से तत्व का निर्धारण करने को बैठते हैं ।

अद्वैतमत

एक ही सूर्य है, हजार घड़े हैं उन में पानी है । उस पानी में हजार प्रतिबिम्ब हो जाते हैं । सूर्य को कुछ नहीं होगा जब ये सारे घड़े फूट जाते हैं और पानी बहता है । ऐसा ही कई अन्तःकरणों में ब्रह्म का आभास होता है। उसी को चिदाभास कहते हैं । अन्तःकरण जब नष्ट होता है जीव, ब्रह्म बन जाता है । यही चिदाभास अपने ब्रह्मस्वरूप को भूल जाता है । इसी की वजह से कर्तृत्व भोक्तृत्व सुखदुःख, पाप, जनन, मरण सब होते हैं । जबतक आत्मा में (अपने में) इस सब को ला देता है तब तक संसार के बन्धनों से छुट्टी नहीं मिलती है ।

खण्डन : इस का खण्डन भी श्रीदयानन्दसरस्वती इस तरह करते हैं:- यह दृष्टान्त भी व्यर्थ है । सूर्य की सूरत रहती है । पानी के घड़े भी आकार रखते हैं । सूर्य, पानी से अलग हैं, पानी के घड़े भी सूरज से अलग हैं । इसीलिए सूरज की परछाइयाँ पानी में हैं । जब परमात्मा निराकार है तब प्रतिबिम्ब का गिरना स्वाभाविक नहीं । अर्थात् निराकार परमात्मा का कभी प्रतिबिम्ब नहीं बनता ।

परिशीलन : निराकारतत्व का प्रतिबिम्ब नहीं होता है । तभी जलसूर्यदृष्टान्त नामुमकिन है - यह आक्षेप ब्रह्मसूत्रभाष्य में है; वहाँ जवाब दिया गया है उस का सारांश इस प्रकार है :-

जलसूर्य दृष्टान्त नामुमकिन है । सूर्य इत्यादिवस्तुओं का प्रतिबिम्ब दूरप्रदेश में जहाँ पानी है वहाँ भी गिरता है वह ठीक तो है । आत्मा मूर्त (सूरतवाला) नहीं । उपाधियाँ आत्मा से दूर पर है ही नहीं । आत्मा सर्वगत

है सब से अभिन्न है । इसलिए जलसूर्यदृष्टान्त लागू नहीं होता है, तभी हम कहते हैं कि दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक - दोनों का एक ही अंश में तुलना होती है, सब तरह से वही है तो दृष्टान्त का मतलब ही नहीं रहता ।

बढावा और घटाना - वृद्धि और ह्रास तो हैं - इस की तुलना केलिए दृष्टान्त जमता है । जल में सूर्यबिम्ब तभी बढेगा जब पानी बढेगा, जल में सूर्यबिम्ब तभी घटेगा जब बढेगा जब पानी घट जायगा । जल जब हिलता है तभी वह हिलेगा इस तरह जल की तुलना जमती है - लेकिन असल में सूर्य का कुछ बढाव चढाव, उतार कुछ भी नहीं ।

उसी प्रकार वास्तव में भले ही परब्रह्म का कुछ भी विकार नहीं, एक ही सूप में हैं फिर भी देह आदि उपाधियों में रहने की वजह से उपाधिधर्म, वृद्धि ह्रास आदि जो हैं उस ब्रह्म के ही लगते हैं । इस तरह दृष्टान्त और दार्ष्टान्तिक - दोनों मेल खाते हैं तो, विरोध नहीं है ।

''पुरश्चक्रे द्विपदः पुरश्चक्रे चतुष्पदः पुरस्स पक्षी भूत्वा पुरः पुरुष आविशत् अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य'' इस श्रुतिवाक्य से प्रतीत होता है कि परं ब्रह्म ही शरीर आदि उपाधियों में प्रवेश कर गया है । ऊपर दिये हुए दृष्टान्त के अनुसार कई चिदाभास माया की वजह से पैदा होते हैं - इस बात को तो मानना पड़ेगा । (ब्र.सू. ३-२-१९,२०,२१) ब्रह्म भले ही निराकार हो माया की महिमा से प्रतिबिम्ब बन जाता है ।

यहाँ दयानन्दसरस्वती का आक्षेप इस प्रकार है :- व्याप्य और व्यापक पदार्थ दोनों पदार्थ भले ही परस्पर जुड़े हुए हैं हमेशा अलग अलग रहते हैं ।

जवाब : जगत् व्याप्त है और व्यापक परमात्मा है, जीव, व्याप्य है परमात्मा व्यापक है । जैसे घडा आसमान में है वैसा जगत और जीव परमात्मा में हैं । लेकिन माया के प्रभाव से परमात्मा नामक परदे के ऊपर जगत् नाम का चित्र दिखायी देता है । इसलिए परब्रह्म छोड़कर अलग से दुनिया नहीं है

। इसलिए यहाँ व्याप्यव्यापकसंबन्ध माया से ही बनगया है । इसलिए परमात्मा को छोड़कर अलग से दूसरा जगत् (संसार) है ही नहीं । इसलिए यहाँ व्याप्यव्यापकसंबन्ध माया से ही बनगया ।

जैसा एक मकड़ी अपने से धागा निकालकर जाल बनाता है फिर उस में प्रवेश करता है - वैसा ही परमात्मा अपनी मायाशक्ति से तरह तरह के शरीरों का निर्माण करके उन में अपने आप प्रवेश कर बैठा है । पहले एक मकड़ी ही था अब जब जाल बन गया उन में अपने आप घुसने का कुछ रुकावट नहीं है ।

यहाँ दयानन्दजी लिखते हैं कि व्याप्य और व्यापक एक ही चीज में नहीं रहते और उसका प्रमाण 'बृहदारण्यक उपनिषद्' कहते हैं । "वहाँ बृहदारण्यक अन्तर्यामिब्राह्मण अ-३ ब्रा-७ कां-२३" लिखा हुआ है । वहाँ का मन्त्र इस तरह है :- यो रेतसि तिष्ठन् रेतसोऽन्तरो यगॅं रेतो न वेद यस्य रेतः शरीरं यो रेतोन्तरो यमयति एष त आत्मान्तर्याम्यमृतः अदृष्टः अद्रष्टा अश्रुतः श्रोता अमन्तो मन्ता अविज्ञातो विज्ञाता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता, नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता, एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः अतोऽन्यदार्तम् ततो होद्दालक्क आरुणिरुप (जो रेतस्=शुक्रकण में है, शुक्रकण जिसको समझ नहीं पाता, उस आत्मा का रेतस्=शुक्रकण ही, शरीर है आत्मा, शुक्रकण में रहता हुआ नियमन करता है; वही तेरा आत्मा अन्तर्यामी है, वह किसी को दिखायी नहीं देता, वही द्रष्टा (देखनेवाला है) सुनायी नहीं देता है, वही सुननेवाला है, वह अमत है=मन से उनको समझते नहीं, मन्ता=खुद मन से चिन्तन करता है अविज्ञात है अर्थात् किसी की समझ में नहीं आता लेकिन खुद विज्ञाता जाननेवाला, इस से बढकर और कोई द्रष्टा श्रोता विज्ञाता नहीं है । वही तेरा अन्तर्यामी है । अमृत है, उस से दूसरी चीज कुछ भी हो वह नष्ट हो जाती है) - इस में दयानन्दसरस्वती का वचन, दिखायी नहीं देता ।

''नान्योतोऽस्ति द्रष्टा, विज्ञाता एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः, अतोऽन्यदार्तम्'' इस से बढकर दूसरा कोई समझनेवाला नहीं, यही तुम्हारा आत्मा अन्तर्यामी, अमृत है इस से दूसरी चीज कुछ भी हो वह नष्ट हो जाता है - इन वाक्यों से जीव, ब्रह्म - दोनों की एकता ही यहाँ स्पष्ट होती है ।

अन्तःकरणरूपी उपाधि से ब्रह्म को जीव मानते हैं । आप का वचन, छोटे बच्चों की बात जैसी है । अन्तःकरण चलता है खण्डित है परिच्छिन्न है । ब्रह्म, अखण्ड और अचल है । ब्रह्म को और जीव को अलग नहीं मानते तो अन्तःकरण जहाँ जहाँ चलता है वहाँ, ब्रह्म अज्ञानी, और वह छोड़कर जाता है वह ज्ञानी बनता है कि नहीं? इस का जवाब आप क्या देंगे? यही दयानन्दसरस्वती का सवाल है ।

जवाब : अन्तःकरण के उपाधि में प्रतिबिम्बित चिदाभास का अन्तःकरणधर्म चलन आदि धर्म (अन्तःकरणदोष) होते हैं । लेकिन वे दोष ब्रह्म को छूते तक नहीं । जैसे प्रतिबिम्बदोष बिम्बभूत सूर्य को नहीं छूते, चिदाभास के दोष ब्रह्म को छूते नहीं । इसलिए ब्रह्म का अज्ञानी होना असंभव है ।

आक्षेप : अगर कहते हैं कि ब्रह्म अलग है और प्रतिबिम्ब अलग है तब किसी को भी अपने आप जो कुछ पहले देखा, जो कुछ पहले सुना, वह स्मरण में नहीं आता है ।

जवाब : ब्रह्म का प्रतिबिम्ब जो जीव है वह (चिदाभास) अविद्या से बने हुए शरीर का इन्द्रियों को और मन को अपने रूप में एकता की भावना से पालता है, पालने की क्षमता है व्यवहार चलाने में सक्षम होता है और दिल के अंदर ईश्वर, याद दिलाता रहता है, इसलिए आक्षेप, निराधार है, स्मरण का अनुभव हर एक का है ।

आक्षेप : अगर आप कहेंगे कि चूँकि ब्रह्म एक ही है तभी स्मरण हो

रहा है, एक जगह जो दुःख और अज्ञान है वह फैलता है तो सारा ब्रह्म (अ) ज्ञानसहित हो जायगा (३८१ पृ)

ऊपर अज्ञान शब्द का इस्तेमाल करने से यहाँ भी 'अज्ञान' ही होता है। 'ज्ञानशब्द' भूल से लिखने में गलती से होगा ।

जवाब : ब्रह्म एक ही है । चिदाभास का पूर्वस्मरण जो होता है उस का कारण यह है कि उस का मन पहले अनुभव प्राप्त कर चुका है । फिर अज्ञान और दुःख चिदाभास के होते हैं जो शरीर को इन्द्रियों को और मन को भी अपने रूप में मानता है ब्रह्म के कभी नहीं ।

आक्षेप : ऐसे दृष्टान्त से नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव ब्रह्म को तुम लोगों ने अनित्य अशुद्ध अज्ञानी बद्ध आदि दोषयुक्त किया, और अखण्डब्रह्म को खण्ड खण्ड करके छोड़दिया ।

जवाब : अविद्या में प्रतिबिम्बित चिदाभास के ही अनित्यत्व, अशुद्धत्व, अज्ञानित्व, बद्धत्व आदि दोष हैं, वे दोष तब तक हैं जब तक अनेकत्वज्ञान नहीं होता है, ज्ञान जब प्राप्त होता है तब ये दोष हट जाते हैं । सूर्यप्रतिबिम्ब के दोष जैसे सूर्य को नहीं छूते हैं वैसे ही चिदाभास के दोष परब्रह्म को नहीं छूते । कई उपाधियों में रहने से चिदाभास ही अनेक खण्डों में विभक्त जैसा लगता है, वास्तव में नहीं । जब घडे नहीं हैं तब प्रतिबिम्ब भी नहीं हैं । सूर्य ही बचता है । वैसे अज्ञान जब मिट जाता है तब ब्रह्म ही रह जाता है । इसलिए ब्रह्म को दोषयुक्त करने का सवाल ही नहीं है ।

योगवासिष्ठ में अद्वैतवेदान्त, स्पष्ट रूप से प्रतिपादित है ।

आक्षेप : योगवासिष्ठ के रचयिता वाल्मीकि नहीं और सुनानेवाला वासिष्ठ भी नहीं । श्रीरामचन्द्र भी श्रोता नहीं थे । क्यों कि वे सब वेद के अनुयायी थे । वेदविरुद्धविषयों को वे कभी लिखते नहीं, कभी सुनते भी नहीं।

जवाब : ''मन्त्रब्राह्मणयोः वेदनामधेयम्'' - आपस्तम्बमुनि का धर्मसूत्र

है । ब्राह्मणग्रन्थ के अन्तर्गत आरण्यकों में उपनिषद् हैं । एक ईशोपनिषद् संहिता में है । उपनिषद्द्वारा जो ब्रह्मतत्त्व, प्रतिपादित है, वही योगवासिष्ठ में मिलता है । वह कभी वेदविरुद्ध नहीं हो सकता । इसलिए स्वामीजी का आरोप झूठ ही है, यह नहीं कहना चाहिए था कि उसे वाल्मीकिमुनि ने नहीं रचा और वशिष्ठमुनि ने श्रीरामजी को नहीं बताया । स्वामीजी अपनी बात को साबित कर नहीं सकते ।

परमेश्वर, आसमान जैसा सर्वव्यापक है, इसलिए ब्रह्म से अलग किसी चीज को समझना, ब्रह्म से अलग किसी चीज का रहना नामुमकिन है । सत्यार्थप्रकाश (स.प्र. ३८० पृ)

लेकिन आश्चर्य की बात है कि स्वामीजी खुद लिखते हैं कि कार्य जो है जगत् और जीव है, वह कारण जो है ब्रह्म, उस से अलग है । एक कभी दो नहीं हो सकते (स.प्र. ३७९ पृ) इसलिए ब्रह्म से किसी दूसरी चीज का होना नामुमकिन है । लगता है कि अद्वैतमत के अनुसार एक होना असंगत है - यही दयानन्दसरस्वती का इरादा हो सकता है । अद्वैती जो है भलेही माया को नित्यसत्य नहीं मानते फिर भी माया को मानते ही हैं । माया में ईश्वर का प्रतिबिम्बत होना अस्वाभाविक नहीं । अघटनघटनापटीयसी माया (मायापञ्चकम्) जो हो नहीं सकता इसे करके दिखाती है माया, तब मायाशक्ति से ब्रह्म का अविद्या में प्रतिबिम्बित होना भी मानने योग्य है ।

निश्चलदासजी का अभिप्राय : निश्चलदासजी अपने वृत्तिप्रभाकर नामक ग्रन्थ (द्वितीयप्रकाशवृत्ति-२९) में, जीव और ब्रह्म के बारे में उनकी एकता को मानते हुए लिखते हैं कि 'जीवो ब्रह्माभिन्नः चेतनत्वात्' अर्थात् चेतन होने के नाते जीव ब्रह्म से अलग नहीं । चूँकि वह चेतन है, ब्रह्म जीव से अलग नहीं है । (वृत्तिप्रभाकर ३८३ पृ)

खण्डन : यह भी एक अनजान अनपढ आदमी का वचन है । क्यों

कि एक समानधर्मता से ही एक दूसरे के साथ अभिन्न नहीं होते । उन दोनों में जो विधर्म है वही दोनों को अलग कर देगा । जैसा कि पृथ्वी जलाभिन्ना जडत्वात् - अर्थात् भूमि जो है वह जल से अभिन्न है (एक ही) जड होने की वजह से । - यह भी गलत है ही, ऐसा ही निश्चलदास का लक्षण भी व्यर्थ है; क्यों कि अल्पता, अल्पज्ञत्व, भ्रान्तिमत्व आदिधर्म ब्रह्म से अलग जीव में हैं, ब्रह्म में सर्वगतत्व सर्वज्ञत्व भ्रान्तिरहितत्व आदि धर्म ब्रह्म में हैं । इसलिए निश्चलदासजीके मत में ब्रह्म और जीव अलग हैं । फिर निश्चलदास के मत का खण्डन श्रीदयानन्दसरस्वती खुद करते हैं । (स.प्र. ३८४ पृ)

परिशीलन : वेदान्ती, श्रुति को सब से प्रधान प्रमाण मानते हैं । ''नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा'', नान्योऽतोऽस्ति विज्ञाता (इस ब्रह्म से दूसरा कोई अलग से जाननेवाला नहीं है ।

श्रुति के विषय के ऊपर जोर देने केलिए अनुमान प्रमाण को भी हमारे लोग मानते हैं । निश्चलदासजी का मत इस मामले में काम में आता है कि उपाधियाँ अगर नहीं हो तो जीव, व ब्रह्म एक ही हैं - और इस सिलसिले में अनुमानप्रमाण काम में आता है । ''श्रुतिमतस्तर्कोऽनुसन्धीयताम्'' (वेद के अनुसार जिसको मानते हैं उस की मदद लेते हुए अनुमान (तर्क) प्रमाण को भी मान सकते हैं)

तर्क के बल पर वेदप्रोक्त विषयों का खण्डन करना बिलकुल गलत है । वेद को मूर्धन्यप्रमाण जो मानते हैं वे लोग कभी ऐसा नहीं करेंगे । इसलिए कि तर्काप्रतिष्ठानात् (ब्रह्मसूत्र १-११) (तर्क जो है खुद टिकता नहीं)

इस का निदर्शन रघुनाथशिरोमणि का यह वाक्य है :-

श्लो. विदुषां निवहैरिहैकमत्यात् यददष्टं निरटंकि यच्च दुष्टम्
मयि जल्पति कल्पनाधिनाथे रघुनाथे मनुतां तदन्यथैव

(जिस के सारे विद्वान् दोषरहित मानते हैं साबित करते हैं उसको मैं रघुनाथ

जो हूँ साबित करूंगा कि यह दोषसहित है गलत है, जिसको सारे विद्वान् दोषसहित (गलत) मानते हैं साबित करते हैं उस को मैं साबित करूंगा कि यह निर्दुष्ट है)

तर्कबल से जो वादविवाद करते हैं उस में जिस का बुद्धिबल ज्यादा है, वह जीत सकता है, जो जीतता है उस का वचन ही सत्य होना जरूरी नहीं है । वह असत्य भी हो सकता है ।

अल्पत्व (छुटपन) अल्पज्ञत्व, भ्रान्तिमत्ता - ये तीन लक्षण चिदाभास के होते हैं क्यों कि, वह अविद्योपाधिक हैं । सर्वगत्व,सर्वज्ञत्व, भ्रान्तिरहित जो हैं ईश्वर के हैं, जिस की उपाधि माया है । उपाधि अलग हैं लेकिन ब्रह्म एक ही है ।

श्रीदयानन्दसरस्वती स्वामीजी अद्वैतपक्ष में पहला अज्ञान ब्रह्म का मानते हैं, इस बात को, वे, नवीन वेदान्ती से कहलवाते हैं (स.प्र. ११स. ३७७ पृ) अज्ञान चिदाभास का होता है न कि ब्रह्म का । ब्रह्म न सर्वज्ञ है न अल्पज्ञ है क्यों कि अल्पज्ञत्व सर्वज्ञत्व लक्षण उपाधि के हैं परब्रह्म के नहीं । - इस बात को भी नये वेदान्ती से स्वामीजी ने कहलवाया । चूँकि उपाधि के साथ ब्रह्म ही है, ब्रह्म ही अल्पज्ञ और सर्वज्ञ हैं । तब सवाल उठाया कि ब्रह्म को न सर्वज्ञ, न अल्पज्ञ क्यों कहा? (स.प्र. ११स. ३८२ पृ)

जवाब : मायोपाधिक ब्रह्म ही ईश्वर है । वह सर्वज्ञ हैं । अविद्योपाधिक ही जीव होता है । यह अल्पज्ञ है । इस तरह उपाधिरहित परंब्रह्म अल्पज्ञ भी नहीं सर्वज्ञ भी नहीं ।

आक्षेप : उपाधि को कल्पित या मिथ्या कहेंगे उस को कल्पना करनेवाला ब्रह्म (परमात्मा) मिथ्या कल्पना कर नहीं सकता है अगर वह स्वरूपी हो, तो । (स.प्र. ११स. ३८२ पृ)

जवाब : चिदाभास का उपाधि अविद्या है । यह ब्रह्मज्ञान से मिटजाता है इसलिए मिथ्या है अनादि है । ब्रह्म ने इस की कल्पना नहीं की । मिथ्या

शब्द का 'असत्य' एक अर्थ है । 'असत्य' अर्थ यहाँ नहीं कहा है । इसलिए ब्रह्म, सत्यसन्ध ही रहता है कोई कमी नहीं ।

आक्षेप : अद्वैतियों के सिद्धान्त में सत्य और असत्य दोनों कल्पित हैं। मुह से बोलना भी मिथ्या है । सत्य और असत्य आत्मा में ही कल्पित हैं । आत्मा जो है वही सत्य और असत्य दोनों का आधार हैं, इसीलिए आप ही चोर हैं और ईमानदार भी हैं । तभी आप का वचन प्रामाणिक नहीं है ।

जवाब : व्यवहार में सत्य और असत्य दोनों हैं । ब्रह्मज्ञान होते ही वे नष्ट हो जाते हैं । मुह से बोलना भी इस के अंदर आ जाता है । ब्रह्म, नित्य सत्य है । सत्य और असत्य उसे नहीं छूते हैं । चलचित्र के पर्दे पर आग की लपटें उस पर्दे को नहीं छूती हैं । वहाँ नदीप्रवाह का जल आता है फिर भी गिला नहीं होता है । लेकिन, दोनों का आधार परदा ही है । परब्रह्म ऐसा ही है । इस तरह पर्दे को हम ईमानदार या चोर नहीं कह सकते । तभी हम कहते हैं कि प्रामाणिकता की कमी नहीं है ।

आक्षेप : जो चीज़ नहीं है अगर वह दिखायी देती हैं तो आप उस को माया कहते हो । वस्तु नहीं है तो उस का अस्तित्व प्रतिभासित होना, असंगत है; छान्दोग्य में ''सन्मूलाः प्रजाः सोम्येमाः प्रजाः'' इत्यादिवचन, आप के खिलाफ हैं । (स.प्र. ३८३ पृ)

जवाब : ब्रह्म, वही माया का आधार है, वही सद् वस्तु है, इसीलिए वेदान्ती जो कहते हैं वह छान्दोग्य के खिलाफ नहीं ।

श्रीदयानन्दसरस्वती का आक्षेप ऐसा है :- वेदान्ती के उपक्रम और उपसंहार भी संगत नहीं, असंगत है टिकते नहीं । ऐसा है कि उपक्रम माने ब्रह्म से ही आरंभ है । उपसंहार माने ब्रह्म में ही विलीन होना । उत्पत्ति और प्रळय ब्रह्म के धर्म हैं अगर दूसरी किसी चीज को नहीं मानते । ब्रह्म जो है उत्पत्तिविनाशरहित है वेद और शास्त्र के अनुसार। उन को ब्रह्म (परमात्मा को)

नवीनवेदान्ती के प्रति गुस्सा आता होगा । परमात्मा जो है विकाररहित है परिणामी नहीं, शुद्ध और सनातन है भ्रान्तिरहित है; फिर उस में विकार, उत्पत्ति और अज्ञान इत्यादि कभीभी नहीं हो सकते । उपसंहार या प्रळयकाल में ब्रह्म के कारणात्मक प्रकृति जो जड है और जीव भी विद्यमान हैं । इसलिए उपक्रम और उपसंहार और नवीनवेदान्तियों की कल्पना भी मिथ्या ही है ।

जवाब : किसी एक ग्रन्थ का तात्पर्यनिर्णय करने में मददगार हैं षट् (छे) लिङ्ग - वे हैं :- उपक्रम=ग्रन्थ का आरम्भ, उपसंहार=ग्रन्थसमाप्ति, अभ्यास=उद्दिष्टविषय को वारंवार दुहराना, अपूर्वता=नवीनविषयप्रतिपादन, उपपत्ति=उद्दिष्ट विषय का युक्तियुक्त निरूपण - ये, छे, किसी ग्रन्थ का तात्पर्यनिर्धारण करने के काम में आते हैं । जब ऐसी बात है श्रीदयानन्दसरस्वती कौन सा नवीनवेदान्ती क्या बोला? किस ग्रन्थ को वे लोग देखते हैं? अपनी मर्जी से उपक्रम और उपसंहार के अर्थ लगाते हैं, और असली अर्थ को जानने की कोशिश नहीं करते हैं । और उन का खण्डन करते हैं ।

"उपक्रम माने ब्रह्म से आरंभ, उपसंहार माने ब्रह्म में ही प्रलय" । ऐसा अर्थ लगाते हैं जो वेदान्तपरक है, लेकिन ग्रन्थ के तात्पर्यनिर्णय के काम में नहीं आते हैं । अच्छा होता अगर स्वामीजी कह देते कि अमुक ग्रन्थ के अनुसार यह अर्थ लगाया ।

उपनिषदों में "तस्मात् एतस्मादात्मन आकाशस्सम्भूतः" - इस वाक्य से शुरू करके सृष्टिक्रम बताया गया । स्वामीजी ने इस का व्याख्यान किया :- "सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत" (यह सारा विश्व ब्रह्म ही है, ब्रह्म से ही पैदा हुआ, ब्रह्म में ही जिन्दा रहता है, ब्रह्म में ही लीन होता है - इस तरह शान्त होकर इस का ध्यान करना चाहिए) इस तरह जगत् के सृष्टिस्थितिसंहार - तीन, ब्रह्म में ही संपन्न होते हैं । ब्रह्म ही तीन कालों में अबाधित सत्य है; संसार मिथ्या है, यह सृष्टि के पहले प्रलय के बाद नहीं

रहता । जो चल रहा है वह केवल व्यावहारिक सत्तामात्र है ।

इसलिए श्रीदयानन्दसरस्वती की गलतफहमी हुई कि उत्पत्ति और प्रलय ब्रह्म के धर्म हैं - यह वेदन्ती लोगों का वचन नहीं है । श्रुति कहती है, वही प्रलय है । ''असद्वा इदमग्र आसीत्'' (यह संसार सृष्टि के पहले अव्यक्त रहा - अर्थात् नाम और रूप दोनों व्यक्त (विस्पष्ट) नहीं थे । सृष्टिकाल में वह व्यक्त हुए । अगर प्रलयकाल में भी व्यक्त रहते, फिर प्रलय का अर्थ ही नहीं रहता । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' - ऐसे वाक्यों का अर्थ कैसे लगाते?

श्रीशंकराचार्य, अपने बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य में कहते हैं कि उपनिषद्, ब्रह्म ही को बता रही हैं ।

'उपक्रमोपसंहाराभ्यां च सर्वासु ह्युपनिषत्सु पूर्वमेकत्वं प्रतिज्ञाय दृष्टान्तैः हेतुभिश्च परमात्मनो विकारांशादित्वं प्रतिपाद्य पुनरेकत्व मुपसंहरति ।'

(उपक्रमोपसंहार - दोनों से उपनिषद्वाक्यों का जीव और ईश्वर दोनों की एकता में ही तात्पर्य है । सारी उपनिषदों में पहले जीव और ईश्वर दोनों की एकता का प्रतिपादन करके दृष्टान्तों से हेतुओं से संसार, परमात्मा का विकार, अंश, आभास - इत्यादि समझाकर आखिर में फिर से एकता को बताकर समाप्त हो जाती हैं) बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्यम् २अ १ब्रा आखिरी भाष्य ११० पृ) श्रीदयानन्दसरस्वती स्वामीजी के कथनानुसार जो उपक्रमोपसंहार हैं, अद्वैतवेदान्तग्रन्थों में कहीं नहीं हैं । इसलिए उन का विमर्श असंगत है ।

श्रीदयान्दसरस्वती स्वामीजी से कियाहुआ विमर्श अर्थात् अद्वैतवेदान्तखण्डन का प्रयास ठीक नहीं है, जमता नहीं - यही सारांश है ।

उपर दिये हुए परिशीलन से साबित होता है कि श्रीदयानन्दसरस्वती स्वामीजी से किये हुए प्रतिमाराधनाखण्डन भी ठीक नहीं है ।

३२. प्रमाणग्रन्थों का विषय

इस ग्रन्थपरिशीलन के संदर्भ में सिर्फ वेद और आर्षग्रन्थों का ही नहीं, बल्कि दूसरे ग्रन्थों को भी प्रमाणित किया (प्रमाण के रूप में दिखाया) । उस को गलत नहीं समझना ।

श्रीदयान्दसरस्वतीस्वामीजी लिखते हैं कि ''ऋषिप्रणीत ग्रन्थों को ही पढना है । ऋषियों से अलग दूसरे लोग पक्षपातबुद्धिवाले होते हैं । अल्पशास्त्रज्ञानवाले होते हैं । उन के ग्रन्थ भी ऐसे ही हैं । इसलिए उस को नहीं पढना चाहिए'' । (सत्यार्थप्रकाश ११स. ८८ पृ)

लेकिन श्रीदयान्दसरस्वती चित्तौढगढ से निकलती हुई हरिश्चन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका नामक पत्रिकाओं को आर्यावर्तदेशीयराजवंशावलि को समझने केलिए, प्रमाणित करते हैं । श्रीदयानन्दसरस्वती लिखते हैं कि हमारे आर्य सज्ञन, इतिहासों को विद्याग्रन्थों को खोज करके प्रगट करेंगे तो बहुत फायदा होगा (सत्यार्थप्रकाश ११स. ५३५ से ५४२ पृ तक)

इसलिए समुचितविषय को प्रस्तुत करने केलिए ऋषिमुनियों के अलावा दूसरे लोगों से रचित ग्रन्थों से भी लिया गया ।

३३. ग्रन्थकर्ता की प्रार्थना

मं. यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः
ब्रह्मराजन्याभ्यागँ्‌ शूद्राय चार्याय च
स्वीयाचारणाय च प्रियो देवानाम्‌
दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं ते
कामः सध्द्यता मुपमा दो नमतु

(उद्वेग के बिना कल्याणमयी वाचा को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रों को आत्मीयों को दूसरों को भी, मैं बोल रहा हूँ । इस से मैं देवताओं को दाताओं को प्यारा बन जाऊ । यह मेरी कामना पूर्ण हो जावें । ये सब मेरे प्रतिकूल नहीं होकर प्रीति को पैदा करें ।) शुक्लयजुर्वेद - २६-२

वेदें के सायणाचार्यभाष्य पर अद्वैत पर श्रीमद्भागवत आदि पुराणों पर जो प्यार रखते हैं, विग्रहाराधना जो करते हैं वे लोग सत्यार्थप्रकाश को पढकर उपरोक्तग्रन्थों का खण्डन देखकर दुःखी होते हैं । वे सब हिन्दूधर्मसत्यार्थप्रकाश को पढकर प्रसन्न हो जावें । मेरी इस रचना से देवता भी संतुष्ट होकर मेरे प्रति कृपालु रहें । सद्गुरु और जगद्गुरु हम को आशीष से अनुगृहीत करें ।

संसार में आस्तिकता घट गयी है । अविनीति और अनाचार प्रबल हो गयें । भारत महान्‌ धार्मिक देश था, वह आजकल अविनीतिपारायण देशों में अग्रगण्य माना जाता है - इस बात पर हम बहुत लज्जित है । देश के नेता भी अविनीति के दलदल में फसे हुए हैं । हमारा प्यारा भारतदेश इस से कब बाहर

निकलेगा - समझ में नही आता । स्वार्थप्रयोजनों केलिए आस्तिकवेषधारी, स्वार्थ केलिए ही धार्मिकसाधनाओं को काम में लानेवाले ही ज्यादा हैं । धार्मिकग्रन्थों पर विश्वास कम हो गया है, इस के कई कारण हैं ।

फिर भी कुछ आस्तिक लोग धार्मिकचिह्नों के साथ बचे हैं । ऐसे लोग जो नित्याग्निहोत्री हैं वे एक लाख में दस भी नहीं हैं । अमेरिका जैसे देशों में अनुमति के बिना अगर हवन करते हैं तो धुआ की वजह से पुलिसकेस हो जाती है । इसलिए इस जमाने में जब, स्थल बहुत महँगा बन गया तब अग्नि में होम करना सामान्य लोगों के वश में नहीं है ।

ऐसे आस्तिकों के आचारों की निन्दा न करें जो दूसरों को नुकसान नहीं करते हैं । अगर निन्दा करें, आचार के साथ आस्तिकता के नष्ट होने का डर है । पौधे को पानी डालना बढाना बहुत मुश्किल है, जड़ से उखाड़ देना आसान है ।

अपनी परम्परा से संप्राप्त बाह्यचिह्नों के साथ आंतरंगिक साधना और एकता की भावना भी बहुत जरूरी है । हमारी भारतभूमि अनेकसुगुणसंपन्न है, फिर भी दुश्मनों के वश में जा रही है - इस का कारण हिन्दुओं में एकता की भावना नहीं है - यही प्रधानकारण है । इस बात को हम कभी न भूलेंगे ।

अपने बाह्यचिह्नों के अलावा दूसरे बाह्यचिह्नधारण करनेवालों की निन्दा, अपनी साधना का प्रतिबन्धक है । इस बात को समझना और मान्यता देना बहुत जरूरी है । भगवान् को सब जगह पहचानना बहुत जरूरी है इन की आराधना और जरूरी है ।

बाह्यचिह्नों को केवल धारण करके जो लेग सदाचार का पालन नहीं करते और लोगों को धोखा देते हैं, उन से सतर्क रहना है बचना है । एकता के साथ धार्मिकसाधना में तत्पर रहना, भगवान् के कृपापात्र होना, धार्मिकलोगों के जन्मसाफल्य का विषय है । दूसरों की साधना में गुण हैं तो स्वीकार कर सकते हैं, लेकिन दूसरे धार्मिकसाधनाओं की निन्दा करना और धर्मसंबंधित झगड़ा उठाना गलत है - इस से जन्म बेकार होता है ।

–रचयिता

३४. उपयुक्तग्रन्थसूची

१. अथर्वणवेदसंहिता -कृष्णदास एकाडमी चौक चित्रा सिनिमाबिल्डिंग - मुद्रण १९८९, वाराणसी-२२१००१

२. अन्वितार्थप्रकाशिका - श्रीमद्भागवतम् श्रीगंगासहाय, चौखम्बा - मुद्रापक पं. रामतेज पान्डेय संस्कृतप्रतिष्ठान - दिल्ली, १९९६

३. अमरकोश (संस्कृतान्ध्रव्याख्यासहित) वाविळ्ळ प्रेस - मद्रास

४. आन्ध्रमहाभागवतमु, पोतन तेलुगुविश्वविद्यालय हैद्राबाद

५. आन्ध्रमहाभारतमु नन्नय तेलुगुविश्वविद्यालय हैद्राबाद

६. आपस्तम्बधर्मसूत्रम् आपस्तम्बमुनि, धर्माधिकारि चक्रवर्ति अयंगार विद्यातरंगिणी मुद्राक्षरशाला, मैसूरु, १८९६

७. उपनिषत्संग्रहः -मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, १९८०

८. उव्वटभाष्यम्-शुक्लयजुर्वेदसंहिता मोतिलाल बनारसीदास दिल्ली, १९८७

९. ऋग्वेददादिभाष्यभूमिका-वैदिकपुस्तकालय, दयानन्द आश्रम, अजमेर्

१०. ऋग्वेदः -चौखम्बाविद्याभवन - वाराणसी, २००३

११. ओक योगि आत्मकथा - परमहंस योगानन्द, योगदा सत्संग सोसैटी आफ इन्दिया दक्षिणेश्वर २००३, कोलकटा

१२. कठवल्ली-कठोपनिषद्-ईशादिनौउपनिषद् गीताप्रेस गोरखपूर ७वा मुद्रण सं - २०६६

१३. काव्यप्रकाश-मम्मट, संस्कृतभाषाप्रचारसमिति(२००९)अविड्स् हैद्राबाद

१४. कूर्मपुराण-व्यासमहर्षि, खेमराजश्रीकृष्णदास, लक्ष्मीवेंकटेश्वरस्टीम्प्रेस् खेतवाडी मुंबई

१५. केनोपनिषद्, ईशादि नौ उपनिषद् गीताप्रेस् गोरखपूर संवत् २०६६
१६. चन्द्रालोक - जयदेव, विद्यातरङ्गिणी १८८९ मैसूर
१७. छान्दोग्योपनिषद् - गीताप्रेस् गोरखपूरु संवत् २०१९
१८. ज्योतिषरत्नावलि-कूनपुलि शेषावतारशास्त्री श्री.पी.यस्. शर्मा ललितनगर हैद्राबाद १९७१
१९. तैत्तिरीयारण्यकम् - गोमठम् श्रीनिवासजोस्यर मैसूर
२०. तैत्तिरीयोपनिषद्-ईशादि नौ उपनिषद् गीताप्रेस् गोरखपूरु-सं-२०६६
२१. दुर्गासप्तशती-मार्कण्डेयपुराणम् व्यासमहर्षि श्रीवेंकटेश्वर आर्षभारती ट्रस्ट अशोकनगर हैदराबाद १९८९
२२. धर्मसिन्धुः -काशीनाथोपाध्याय निर्णयसागर प्रेस् मुंबई १९३६
२३. निरुक्तम् - यास्कमुनिः, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली १९८९
२४. नृसिंहहृदयम् - ओरुगंटि नरसिंहयोगि, ओरुगंटि माणिक्यांब २००५ वेंकटनगर काकिनाड
२५. बृहज्जातकम्-वराहमिहिराचार्य गोल्लपूडि वीरास्वामि सन्स् राजमंड्रि १९८६
२६. ब्रह्मसूत्रशङ्करभाष्यम् - श्रीशंकराचार्य, जयकृष्णदास हरिदासगुप्त दि चौखम्बा संस्कृतसीरीस् प्रेस् बनारस् १९८६
२७. मनुस्मृति - मनु - वाविळ्ळ प्रेस् मद्रास १९४२
२८. महाभारतम् - गीताप्रेस् गोरखपूरु
२९. महान्यासादि-बोधायनोक्त महान्यासखण्ड, गोमठम् रामानुज ज्योतिषिक, कारोनेषन् प्रेस् मैसूर १९८१
३०. मायापञ्चकम् - श्रीशंकरभगवात्पाद श्रीशंकरग्रन्थावळि - ११ संपुट श्रीवाणीविलास मुद्रायन्त्रालय, श्रीरंगम्
३१. मार्कण्डेयपुराणम् - व्यासमुनि, श्रीवेंकटेश्वर आर्षभारती ट्रस्ट १९८९ अशोकनगर हैदराबाद - २०

३२. मुहूर्तदर्पणम् - वाविळ्ळ प्रेस् (२००२) चेन्नयी

३३. योगदर्शनम् - पतञ्जलि, वेदव्यास मुद्रणालयमु चित्तूरु, १९४६

३४. लिङ्गपुराणम् - व्यासमहर्षि, श्रीकृष्णदास् खेमराज, श्रीवेंकटेश्वर स्टीम प्रेस्, मुंबई

३५. विष्णुमहापुराणम् - पराशरमहर्षि, श्रीवेंकरटेश्वर आर्षभारती ट्रस्ट अशोकनगर हैदराबाद-२०

३६. शब्दार्थकल्पतरुवु - मामिडि वेंकटाचार्य, श्रीवासवीग्रन्थप्रचारसमिति (१९६१) मचिलीपटनम्

३७. शिवमहापुराणम् - व्यासमहर्षि, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, श्रीवेंकटेश्वरप्रेस्, शक-१८४७ मुंबई

३८. श्रीमद्भगवद्गीता - निर्णयसागर प्रेस् (१९१२) मुंबई

३९. श्रीमद्भागवतम् - अन्वितार्थप्रकाशिकासहित, चौखम्बा संस्कृतप्रतिष्ठान

४०. श्रीमदग्निपुराणम्-श्रीवेंकटेश्वर आर्षभारती ट्रस्ट गुरुकृपा अशोकनगर हैदराबाद-२०

४१. श्रीमद्रामायणम्-वाल्मीकि, वाविळ्ळप्रेस् चेन्नपुरि १९१५

४२. श्रीविद्यासपर्यापद्धति - श्रीसुब्रह्मण्यार्यः, ब्रह्मविद्याविमर्शिनी सभा बालमनोरमा मुद्रणालयम् मैलापूर मद्रास १९३८

४३. श्रीसायिसच्चरित्र - हेमाद्पंत् तेलुगु मिस्.यम्. मणि सद्गुरु शायिबाबा मन्दिर, किषन्बाग् हैद्राबाद-६४, २००५

४४. श्रीसायिसच्चरित्रमु - श्रीपत्ति नारायणरावु श्रीशायिबाबा संस्थानमु षिरिडि, १६ मुद्रणमु - २०००

४५. श्रीकृष्णयजुर्वेदीयतैत्तिरीयसंहिता - आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावळिः पूने १९६६

४६. संस्कृतवाङ्मयचरित्र-द्वितीयसंपुटम् मल्लादिसूर्यनारायणशास्त्रि

आंध्रसारस्वत
परिषत्तु, तिलकरोड १९८२ हैदराबाद

४७. सत्यार्थप्रकाशमु (तेलुगु) महर्षि स्वामि दयानन्द सरस्वती आर्यप्रतिनिधि सभा, सुल्तान बजार हैदराबाद-१

४८. स्मृतिरत्नमहोदधि-नित्यकर्माष्टकमु स्वधर्मप्रकाशिनीग्रन्थप्रचुरणसंस्था, न्यू नल्लकुंट हैदराबाद, ६वा मुद्रण २००२ (४९ पृ)

४९. संस्कृतसाहित्यचरित्र - डा. मुदिगोंड गोपालरेड्डि डा. मुदिगोंड सुजातारेड्डि, पोट्टि श्रीरामुलु तेलुगु विश्वविद्यालयमु हैदराबाद - १९९७

३५. अनुबन्ध

श्रीकरपात्रस्वामीजी विरचित वेदार्थपारिजात के दूसरे खण्ड में दयानन्दमतखण्डन नामक शीर्षिका के अंदर उल्लेखित विषयों की सूची :-

१. अथ ब्रह्मविद्याविषयः	२. अथ वेदोक्तधर्मविषयः
३. सृष्टिविद्याविषयः	४. पृथिव्यादिलोकभ्रमणविषयः
५. आकर्षणानुकर्षणविषयः	६. प्रकाश्यप्रकाशकविषयः
७. गणितविद्याविषयः	८. ईश्वरस्तुतिप्रार्थना
९. उपासनाविषयकविचारः	१०. मुक्तिविचारः
११. सौविद्याविमानादिविषयो विचारः	१२. तारविद्यामूलविचारः
१३. वैद्यकमूलविचारः	१४. पुनर्जन्मविषयविचारः
१५. विवाहविषयो विचारः	१६. नियोगविचारः
१७. राजप्रजाधर्मविचारः	१८. वर्णाश्रमधर्मविचारः
१९. पञ्चमहायज्ञविचारः	२०. श्राद्धविचारः
२१. स्वर्गो मनुष्यलोकात् भिन्नः	२२. मूर्तिपूजासमर्थनम्
२३. अधिकारानधिकारविषयः	२४. पठनापाठनविषयः

हरप्पा रुद्रदेव

चित्र के नीचे हरप्पा के अवशेषों में जो पशुपति देव की मुद्रिका मिली थी उसी की तस्वीर है । उस की स्पष्टता केलिए यहाँ दी गयी है। इस के दो सींग और तीन शिर हैं चरित्रकारों के लेखन के अनुसार । लेकिन इस में वे नहीं हैं ।

तैत्तिरीय यजुर्वेद में जो नमक मन्त्र हैं और शिवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र में जिस रुद्ररूप का वर्णन मिलता है वही यहाँ दिखायी देता है । कृ.प.द्र.

रचयिता का संक्षिप्त परिचय

माता, पिता : व्याकरणवेदान्तविशारद
की.शे.चिर्‍रावूरि अनन्तपद्मनाभशास्त्रीजी और सुब्बलक्ष्मम्म

नाम : चिर्‍रावूरि शिवरामकृष्णशर्मा

पत्नी : श्रीमती कृष्णवेणी

जननस्थलम् : ऐ भीमवरमु

प्रमाणपत्र : भाषाप्रवीण, एम्.ए.(संस्कृत) एम्.ए.(तेलुगु) पीहेच.डि.

विद्याएँ : कृष्णयजुर्वेद, सायणाचार्यभाष्य, वेदान्तव्याकरणशास्त्र,

कृषि : महाभारत आदि सौ ग्रन्थों का प्रवचन(करीब पचाससाल तक) नेत्रावधान, अक्षरावधान आदि सांकेतिकावधान श्रीमद्भागवतसप्ताहप्रवचन

रचनाएँ : ३५ ग्रन्थ मुद्रित और प्रकाशित
२०६ निबन्ध मुद्रित और प्रकाशित
आन्ध्रकाव्यार्णवोडुपमु, ताळपत्रग्रन्थपरिष्कारमु २०१३ करुणश्री भावोद्यानम् - चैतन्यभारती - सम्पादकत्व मोतीनगर हैदराबाद
२०१३ जातीय - अन्तर्जातीयसभाओं में पत्रसमर्पण

स्मान : आन्ध्रप्रदेशप्रभुत्वराष्ट्रस्थायि उत्तमाध्यापकपुरस्कार
आन्ध्रसारस्वतसमिति पुरस्कार, मचिलीपटनम्, काशीनाथुनि नागेश्वरराव पंतुलु पुरस्कार, एलकुर्‍रु

बिरुदावली : १. विद्यालंकार (पुष्पगिरि शंकराचार्य पीठ द्वारा)
२. परिशोधनप्रवण (फैन आर्टस् एकादमी एलूरु द्वारा)
३.ज्योतिर्वास्तुविज्ञानशेखर(हैद्राबाद ज्योतिर्वास्तुविद्यासंस्थाद्वारा)

पदवी : रीडर् तेलुगुविभाग आन्ध्रजातीयकलाशाला मचिलीपटनम्
३९ संवत्सरकाल के बाद विश्रान्त ।।

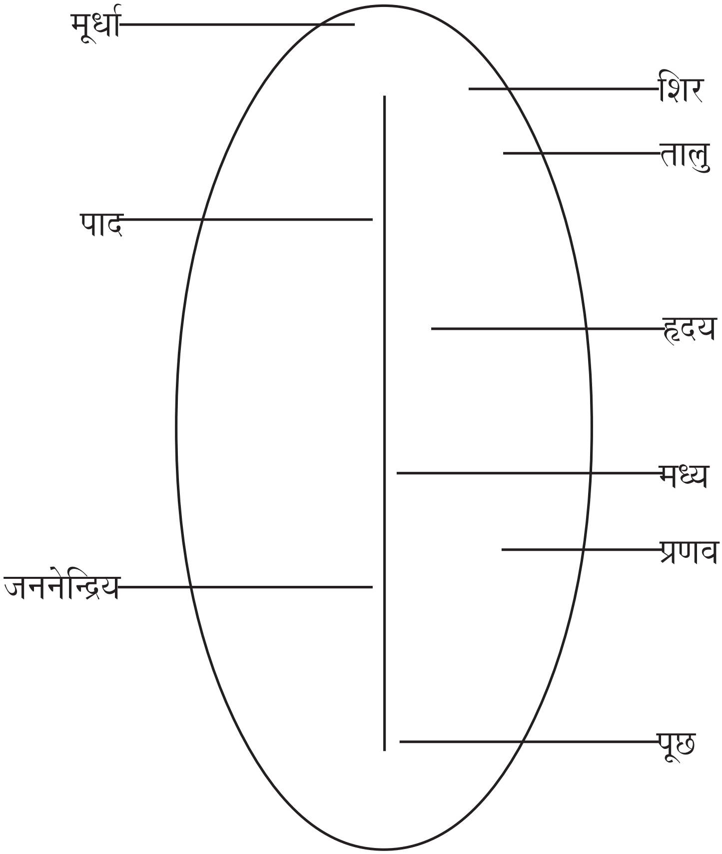

विश्वचित्र

२०१० जुलै ५ वे तिथि पर अन्तरिक्षसंस्था (यूरोपियन् स्पेस् एजन्सीस) ने इस विश्वचित्र का आविष्कार किया। यह चित्र जो है बहुत ही अनमोल और अपूर्व है। उपग्रह के ऊपर प्लांक टेलिस्कोप को लगाकर एक साल तक केमेरा में लिया हुआ चित्र यह है।

इस में लिंगपुराणप्रोक्त विश्वरूपशिवलिङ्ग तैत्तिरीयराण्यकप्रोक्त शिशुमार विष्णु और उपनिषदों में प्रशंसित प्रणव (ओंकार) सब दिखायी देते हैं।